पूँजीवाद समाजवाद ग्रामोद्योग

लेखक,

डा० भारतन् कुमारप्पा

प्रथमावृत्ति] १९४६ [मूल्य ५)

मुद्रक,

महतावराय,

ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी

प्रस्तावना

डाक्टर भारतन कुमारप्पाने अपनी इस पुस्तकके "ग्रामोद्योग" शीर्षक अध्यायमे साधारण पाठको तथा गाँवोमे काम करनेवाले उन कार्यकर्ताओके लिए—जिन्हे अर्थशास्त्रकी पुस्तके पढ़नेका अवसर नहीं मिला है—आधुनिक आन्दोलनके तुलनात्मक अध्ययनकी सामग्री प्रस्तुत की है, जो आन्दोलन पूँजीवाद तथा समाजवादके नामसे प्रसिद्ध है। इस अध्ययनमे उन्होंने मार्क्सवाद तथा समष्टिवादका भी समावेश किया है। मेरी समझमें अपने विषयके प्रतिपादनमें उन्होने जो प्रस्ताव उपस्थित किये है उनसे उन्होंने यह भलीभाँति सावित कर दिया है कि हमारे युगके विगत दोनो विश्व-युद्धोने इस तरहकी आर्थिक व्यवस्थाका दिवालियापन सावित कर दिया है। इसी प्रसङ्गमे युद्धने युद्धका अर्थात् हिंसाका दिवालियापन भी प्रकट कर दिया है। ये दोनो युद्ध सभ्य कहलानेवाले राष्ट्रोद्वारा चलाये गये थे, महज इससे इसकी हिंसक प्रवृत्तिको घटाकर नहीं आँका जा सकता। अभी इस बातकी जाँच बाकी है कि अहिंसा हिंसाका स्थान ग्रहणकर विश्वमे स्थायी शान्ति कायम करनेमें सफल हो सकेगी। लेकिन इतना तो निश्चित है कि जबतक मनुष्य भौतिकवादकी

ओर पागलोंकी तरह दौड़नेवाली प्रवृत्तिका शिकार बना रहेगा और अमीर-गरीबका शोषण करता रहेगा तबतक मानव नाशकी ओर ही कदम बढ़ाता रहेगा। यह सभी धर्मोंकी घोषणा है। डाक्टर भारतन्‌ने यह साबित करनेका प्रयत्न किया है कि हिन्दुस्तानमे ग्रामोद्योगका प्रयोग जिस तरह किया जा रहा है, वह मनुष्यके सर्वनाशको रोकनेकी क्षमता रखता है। यदि हम विश्वको सर्वनाशसे बचाना चाहते है तो हमे डाक्टर भारतन्‌की इस पुस्तकसे व्यावहारिक शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये जिसे उन्होने अपने हालके जेल-जीवनमें लिखा है।

—मो० क० गांधी

लेखककी भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक अंग्रेजीमें "कैपिटलिज्म, सोसलिज्म ऐण्ड विलेजिज्मके नामसे लिखी गयी है जिसका यह हिन्दी रूपान्तर है। इस पुस्तकके लिखनेका एकमात्र उद्देश्य यह दिखलाना है कि खादी तथा ग्रामोद्योग-आन्दोलनका क्या अभिप्राय है। इसलिए पूँजीवाद तथा समाजवादके मुकाबले इसका नाम ग्रामोद्योग रखा गया है। पूँजीवाद पूँजीपर अवलम्बित है और समाजवाद समस्त समाज तथा उसकी आवश्यकताको लेकर चलता है। लेकिन ग्रामोद्योग आन्दोलन गाँवोंके कल्याणको ही अपना मुख्य ध्येय मानता है। देशके आर्थिक जीवनका उत्थान वह गाँवोंकी दशा सुधारने, उन्हें शक्तिशाली तथा आत्म-निर्भर बनानेमे ही मानता है। इसका आधार गाँववालोंका परस्पर सहयोग और सहकारिता है। एक दूसरेकी सहायता तथा परस्पर आदान-प्रदान-द्वारा गाँव तथा उसके निवासी सुखी और सम्पन्न बनाये जा सकते हैं। इस ग्रामोद्योग व्यवस्थाको सफल बनानेके लिए कई गाँवोको मिलाकर एक इकाई बनायी जायगी। सुविधा और अभिधानके लिए उस इकाईका नाम इस पुस्तकमें गाँव ही रखा गया है।

समाजवाद समस्त नागरिकोंकी एक इकाई मानकर राष्ट्रका

उत्थान करना चाहता है। इसके प्रतिकूल ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्था एक गॉव या कई गॉवोके समूहको इकाई मानकर उसका तथा उसमे बसनेवाले छोटे-से-छोटे प्राणीके उत्थान और विकासके लिए यत्न करता है। पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनो केन्द्रित आर्थिक प्रणालीका प्रतिपादन करते है। इनके प्रतिकूल ग्रामोद्योग यथासम्भव केन्द्रित आर्थिक प्रणालीसे दूर रहकर, व्यक्तिके उत्थानका मुख्य साधन विकेन्द्रित आर्थिक प्रणालीको मानता है। ग्रामोद्योग आर्थिक प्रणालीकी सार्थकता सिद्ध करनेके लिए पूँजीवादी तथा समाजवादी आर्थिक प्रणालीका विवेचन आवश्यक और अनिवार्य था। इस पुस्तकमे साम्राज्यवाद, नाजीवाद तथा फासिस्टवादपर भी प्रकाश डालना आवश्यक समझा गया क्योकि इन्ही रूपोमे वर्तमान युगमे पूँजीवाद हमारे बीच प्रकट हुआ है।

प्रस्तुत पुस्तक उन लोगोके लिए लिखी गयी है जो गॉवोमे काम करना चाहते है तथा जो लोग ग्रामोद्योग-आन्दोलनके अन्तर्गत सिद्धान्तोकी मुख्य बातोको समझना चाहते है, इस लिए इस पुस्तकके लिखनेमे यह बात मान ली गयी है कि उन लोगोको आर्थिक समस्याका कोई ज्ञान नही है। यही कारण है कि उन विषयोका भी यहॉ सविस्तर विवेचन किया गया है जिसे लोग प्रायः जानते हैं और ग्रामोद्योग आर्थिक प्रणालीवाले चौथे अध्यायको लिखते समय गॉवोमे काम करनेवालोके सीमित साधनपर ध्यान रखकर ही योजनाऍ तैयार की गयी है। इस तरहकी कोई योजना उनके सामने नही रखी गयी है

जिसे शासन ही पूरा कर सकता है क्योंकि अभीतक शासन हमारे हाथमे नहीं है। इस नये अर्थशास्त्रके दृष्टिकोणके अनुसार अर्थात् गॉवोकी आर्थिक दशा सुधारनेके लिए सरकारको क्या करना चाहिये, इसकी इण्डस्ट्रियल सर्वे कमेटी आफ दि गवर्मेण्ट आफ सेण्ट्रल प्राविन्सेज ऐण्ड बरार की रिपोर्टमे सिफारिशें की गयी है। (देखो भाग १ तथा २) श्री जे० सी० कुमारप्पाने अपनी पुस्तक 'ए प्लैन फार दी इकनामिक डेवलपमेंट आफ दी नार्थ वेस्ट फ्रांटियर प्राविंस' तथा श्रीमन्नारायण अग्रवालने अपनी पुस्तक 'दी गॉधीयन प्लैन'मे भी इसका वर्णन किया है। जो लोग इस विषयकी विशेष जानकारी हासिल करना चाहते हैं उन्हे इन पुस्तकोमे काफी सामग्री मिल सकती है।

ग्रामोद्योग-आन्दोलनके भीतर जो फिलासफी है उसका व्यावहारिक प्रकटीकरण अखिल भारतीय चर्खासंघ, अखिल भारतीय ग्रामोद्योग तथा हिन्दुस्तानी तालीमी संघके कामोमें हो गया है जो ग्रामोद्योगके भिन्न-भिन्न क्षेत्रोमे भिन्न-भिन्न रूपसे अपना काम कर रही है। इन संस्थाओके बारेमे विशेष जानकारी वर्धासे प्राप्त हो सकती है।

इस पुस्तकमें जिन सिद्धान्तोपर विचार किया गया है उनका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए 'दी इकनामिक आफ खादी' तथा 'सेण्ट पर सेण्ट स्वदेशी' तथा बी० सी० कुमारप्पाकी "ह्वाई दी विलेज मूवमेण्ट" नामक पुस्तके पढ़ना चाहिये।

महात्मा गांधीने इस पुस्तककी प्रस्तावना लिखनेकी कृपा

उत्थान करना चाहता है। इसके प्रतिकूल ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्था एक गॉव या कई गॉवोके समूहको इकाई मानकर उसका तथा उसमे बसनेवाले छोटे-से-छोटे प्राणीके उत्थान और विकासके लिए यत्न करता है। पूॅजीवाद तथा समाजवाद दोनो केन्द्रित आर्थिक प्रणालीका प्रतिपादन करते है। इनके प्रतिकूल ग्रामोद्योग यथासम्भव केन्द्रित आर्थिक प्रणालीसे दूर रहकर, व्यक्तिके उत्थानका मुख्य साधन विकेन्द्रित आर्थिक प्रणालीको मानता है। ग्रामोद्योग आर्थिक प्रणालीकी सार्थकता सिद्ध करने-के लिए पूॅजीवादी तथा समाजवादी आर्थिक प्रणालीका विवेचन आवश्यक और अनिवार्य था। इस पुस्तकमे साम्राज्यवाद, नाजी-वाद तथा फासिस्टवादपर भी प्रकाश डालना आवश्यक समझा गया क्योकि इन्ही रूपोमे वर्तमान युगमे पूॅजीवाद हमारे बीच प्रकट हुआ है।

प्रस्तुत पुस्तक उन लोगोके लिए लिखी गयी है जो गॉवोमे काम करना चाहते है तथा जो लोग ग्रामोद्योग-आन्दोलनके अन्तर्गत सिद्धान्तोकी मुख्य बातोको समझना चाहते है, इस लिए इस पुस्तकके लिखनेमे यह बात मान ली गयी है कि उन लोगोको आर्थिक समस्याका कोई ज्ञान नही है। यही कारण है कि उन विषयोका भी यहॉ सविस्तर विवेचन किया गया है जिसे लोग प्रायः जानते हैं और ग्रामोद्योग आर्थिक प्रणाली-वाले चौथे अध्यायको लिखते समय गॉवोमे काम करनेवालोके सीमित साधनपर ध्यान रखकर ही योजनाऍ तैयार की गयी हैं। इस तरहकी कोई योजना उनके सामने नही रखी गयी है

जिसे शासन ही पूरा कर सकता है क्योंकि अभीतक शासन हमारे हाथमे नहीं है। इस नये अर्थशास्त्रके दृष्टिकोणके अनुसार अर्थात् गॉवोकी आर्थिक दशा सुधारनेके लिए सरकारको क्या करना चाहिये, इसकी इण्डस्ट्रियल सर्वे कमेटी आफ दि गवर्मेण्ट आफ सेण्ट्रल प्राविन्सेज ऐण्ड बरार की रिपोर्टमे सिफारिशे की गयी है। (देखो भाग १ तथा २) श्री जे० सी० कुमारप्पाने अपनी पुस्तक 'ए प्लैन फार दी इकनामिक डेवलपमेट आफ दी नार्थ वेस्ट फ्रांटियर प्राविंस' तथा श्रीमन्नारायण अग्रवालने अपनी पुस्तक 'दी गॉधीयन प्लैन'में भी इसका वर्णन किया है। जो लोग इस विषयकी विशेष जानकारी हासिल करना चाहते हैं उन्हे इन पुस्तकोमे काफी सामग्री मिल सकती है।

ग्रामोद्योग-आन्दोलनके भीतर जो फिलासफी है उसका व्यावहारिक प्रकटीकरण अखिल भारतीय चर्खासंघ, अखिल भारतीय ग्रामोद्योग तथा हिन्दुस्तानी तालीमी संघके कामोमे हो गया है जो ग्रामोद्योगके भिन्न-भिन्न क्षेत्रोमे भिन्न-भिन्न रूपसे अपना काम कर रही है। इन संस्थाओके बारेमे विशेष जानकारी वर्धासे प्राप्त हो सकती है।

इस पुस्तकमें जिन सिद्धान्तोपर विचार किया गया है उनका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए 'दी इकनामिक आफ खादी' तथा 'सेण्ट पर सेण्ट स्वदेशी' तथा बी० सी० कुमारप्पाकी "व्हाई दी विलेज मूवमेण्ट" नामक पुस्तके पढ़ना चाहिये।

महात्मा गांधीने इस पुस्तककी प्रस्तावना लिखनेकी कृपा

की है, इससे मैं उनका अतिशय कृतज्ञ हूँ। जेलके अपने अनेक साथियों, खासकर श्री विनोबा भावे, काका कालेलकर तथा श्री एच० पी० कामतका मैं अनुगृहीत हूँ जिन्होंने इस पुस्तकके लिखनेमें मुझे अनेक तरहकी सलाह दी।

यह पुस्तक १९४४में ही तैयार हो गयी थी लेकिन मेरे जेलमें रहनेके कारण यह प्रकाशित नहीं हो सकी। १९४५में जेलसे छूटनेके बाद मैंने दो-चार संशोधन इसमें किये हैं।

मई, १९४६ —भारतन् कुमारप्पा

पूँजीवाद समाजवाद

ग्रामोद्योग

१

पूँजीवाद

परिभाषा—हमारे उद्देश्यके लिये पूँजीवादकी परिभाषा केवल इतनी ही मात्र पर्याप्त होगी कि वह ऐसी आर्थिक व्यवस्था है जहाँ मालका उत्पादन तथा वितरण व्यक्तियों या समूहोंद्वारा होता है जो अपने संग्रहीत धनके भण्डारका उपयोग अपने लिये अधिक धन कमानेके हेतु करते है। इस परिभाषाके अनुसार पूँजीवादके दो प्रधान अंग हैं—निजी पूँजी और निजी लाभ।

१—पूँजीवादका प्रयोग

(क) केन्द्रीकरण—पूँजीवादके प्रयोगके लिये अतुल धनराशि-की आवश्यकता है जिसे वह मशीन और कच्चे मालके खरीदनेमें लगाकर उनसे इतने बड़े पैमानेपर माल तैयार करता है कि उत्पा-दनका खर्च असंख्य वस्तुओंपर बँट जानेके कारण कम पड़ता है और इसलिये छोटे पैमानेपर उत्पादित वस्तुओंकी अपेक्षा वे बाजार-में सस्ते दरपर बेंची जा सकती है। जितना बड़ा कारोबार होगा चीजे उतनी ही सस्ती बेंची जा सकेंगी और उतनी ही सफलतापूर्वक

प्रतिद्वन्द्वीका मुकाबला किया जा सकेगा। इसलिये पूँजीवादी झुकाव हमेशा कारोबारको बढ़ानेकी ओर ही रहता है। आजकल व्यवसायका विस्तार इतना बड़ा हो गया है कि किसी एक व्यक्तिके लिये—चाहे वह कितना ही समृद्धशाली क्यो न हो—अकेले मालिक बने रहना असम्भव हो गया है और व्यवसाय ट्रस्टी, कारपोरेशन तथा गरोहके हाथमे होता जा रहा है जो कोठियोके रूपमे मजबूत सङ्गठन है और इस उपायसे ये देशके ही नही बल्कि उस प्रकारके समस्त व्यापारपर अधिकार जमाते है। दूसरे शब्दोमे इसे यो कह सकते है कि पूँजीवादी व्ययसायमे केन्द्रीकरणकी ओर अधिकाधिक प्रवृत्ति होती है अर्थात् जो व्यवसाय स्वतन्त्र उत्पादकोके एकाकी प्रयासका फल होता उसे किसी केन्द्रीय व्यवस्थाके अन्दर ला देना पूँजीवादका मुख्य उद्देश्य है। इस व्यवस्थामे अनेक उत्पादकोका अन्त होकर उनके स्थानपर एक केन्द्रीय उत्पादक मण्डल खड़ा हो जाता है जो समस्त व्यवसायको अपने लिये अपने अधीन कर लेता है।

(ख) पूँजी—इस तरहके केन्द्रित व्यवसायके लिये अतुल पूँजीकी जरूरत होती है। इस तरह इसे चलानेके लिये अतुल पूँजी या साखकी आवश्यकता होती है। जो लोग इतनी पूँजी प्रदान कर सकते है उन्हे पूँजीपति या महाजन कहते है। इनका व्यवसायपर बहुत अधिक प्रभाव रहता है। ये चाहे तो पूँजी देना बन्दकर व्यवसायको खत्म कर सकते है अथवा जरूरत पड़नेपर पूँजी देकर उसे बढ़ा सकते है। जिनके पास पूँजी नही है या थोड़ी पूँजी है उन्हे अपना कारोबार बन्दकर इन बड़े पूँजीपतियो की वैतनिक नौकरी करनी पड़ती है। पूँजीपतिकी

उत्तरोत्तर बढ़ती होती है और वह चैनकी जिन्दगी बिताता है। उनका केवल मात्र व्यापार है रुपया लगाना और माटा नफा कमाना।

(२) मशीनरी—चूँकि उत्पादनका केन्द्रीकरण हो जाता है और यदि विश्वव्यापी नहीं तो देशव्यापी मांगको पूरी करनेका उद्योग रहता है इसलिये माल तो बढ़िया और तेजीसे तैयार करनेके सभी उपायों और साधनोका अध्ययन किया जाता है और इस कामको सम्पन्न करनेके लिये तरह तरहकी मशीनो और उत्पादनके साधनोंका आविष्कार किया जाता है। इस तरह उत्पादनके यंत्र बहुत विशाल और जटिल हो जाते हैं और चूँकि इन मशीनों और यंत्रोके बिना उत्पादनका काम सफलता पूर्वक नहीं हो सकता और साथ ही इतने बड़े पैमानेपर मशीनोंका आयोजन करना किसी एक व्यक्तिके लिये असम्भव है, इसलिये जिस तरह सारी पूँजी चन्द व्यक्तियोंके आधिपत्यमें आ जाती है उसी तरह उत्पादनके यंत्र भी कारीगरोका साथ छोड़ देते है और कारखानोकी इन वृहदाकार मशीनोमें उनका लोप हो जाता है।

इतनी विशालकाय मशीनोंमें बेशुमार पूँजी तभी सार्थक हो सकती है जब उत्पादन बड़े पैमानेपर हो; क्योंकि छोटे पैमाने-पर उत्पादन करनेके लिये इतनी ज्यादा पूँजी लगानेमें हमेशा घाटा होता रहेगा और जब बेशुमार उत्पादन होगा तभी आम-दनीका बहुत बड़ा भाग मालकी खपतके लिये बाजार खोजने, उसे कायम रखने, पोद्दार नियुक्त करने, माल भेजनेका किराया, पैकिंग, तथा विज्ञापनबाजीमें व्यय किया जायगा और साथ ही

साथ कारखानेकी इमारत और मशीनोंकी मरम्मत आदिमे भी खर्च कया जायगा।

(४) मजूर—ऊपर दिखाया गया है कि विस्तृत पैमानेपर उत्पादनमें खर्च बहुत ज्यादा बढ़ जाता है। इसका परिमाण यह होता है कि मजूरोको कमसे कम वेतन देकर मजूरीको हमेशा घटानेकी चेष्टा रहती है। इसके लिये मजूरोकी संख्या घटा दी जाती है अथवा पुरुषोके स्थानपर कम वेतनपर सन्तुष्ट रहनेवाले लड़को और स्त्रियोको रखा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि पुरुषोमे बेकारी बढ़ने लगती है। इस बढ़ती बेकारीके अन्य कारण भी है। बढ़ती बेकारीका परिणाम यह होता है कि मजूर सस्ते हो जाते है, मजूरीका दर गिरने लगता है, पूँजीपतियोको सौदा करनेका मौका मिलता है और वस्तुओकी भाँति मजूरोका भी मोल भाव होने लगता है और आमद और माँगके अनुसार इनका भी मूल्य यानी मजूरी निर्धारित की जाती है अर्थात् इस हालतमें मजूरीका मापदण्ड मजूरकी आवश्यकता नही रह जाती बल्कि भूखो मरनेसे बचनेके लिये वह कमसे कम जो वेतन स्वीकार कर सकता है वही उसकी मजूरीका मापदण्ड हो जाता है।

(५) संगठन—विस्तृत पैमानेपर उत्पादन करनेके लिए अनेक तरहके संगठनकी आवश्यकता पड़ती है जैसे, पूँजीके लिए, कच्चे मालके लिए, उत्पादन तथा माल बेचनेके लिए। जहाँ उत्पादन अनेक व्यक्तियोके हाथमें रहता है वहाँ वे लोग स्वतन्त्र रूपसे अपना-अपना इन्तजाम करते हैं और किसी संगठनकी आवश्यकता नहीं पड़ती लेकिन उत्पादनका केन्द्रीकरण

होते ही भिन्न-भिन्न स्रोतोंसे पूँजी बटोरनेकी आवश्यकता पड़ती है, भिन्न-भिन्न देशोंसे कच्चा माल इकट्ठा करना पड़ता है, उत्पादनके भिन्न भिन्न कार्योंके लिए असंख्य काम करनेवालोंकी जरूरत पड़ती है, और मालकी खपतके लिये उसे भिन्न भिन्न देशोंमें भेजना पड़ता है। इस अवस्थामें पहुँचकर व्यवसाय व्यक्ति-विशेषकी वस्तु नहीं रह जाता बल्कि किसी संगठनके अन्दर आ जाता है जो एक इकाईके रूपमे काम करता है। इस तरह पूँजीवादने बहुत बड़ा संगठन खड़ा कर दिया है जिसके अन्दर कहीं कहीं संसारभरकी शक्तियाँ काम करती हैं। संगठनका मतलब है केन्द्रीकरण। इस तरह पूँजीवादी व्यवस्थामे प्रबन्धकी सारी व्यवस्था कतिपय चुने हुए व्यक्तियोंके हाथने आ जाती है और कारोबारकी सारी देखभाल यह छोटा गरोह करता है।

कहा जाता है कि पच्छिमवालोंमें इस तरहके संगठनका माद्दा बहुत अधिक है। इसका मतलब यही है कि वहाँकी आर्थिक व्यवस्थाने ऐसा रूप धारण कर लिया है कि इस तरहका केन्द्रीकरण अनिवार्य हो गया है। इसलिए व्यक्तिगत रूपसे काम न कर वे किसी संगठनके अन्दर काम करनेके आदी हो गये हैं और उसीको आर्थिक दृष्टिसे पसन्द करते है। जब उनके सामने कोई समस्या आती है तो वे उसके हलके लिए संगठन कर लेना ही ज्यादा पसन्द करते है और इस तरह वे उसपर संगठित रूपसे विचार करते हैं। लेकिन इसका मतलब यह कभी नहीं हो सकता कि इस तरहका माद्दा केवल उन्हीं लोगोंकी विशेषता है। हमारे देशकी जाति-प्रथा हमारे पूर्वजोंकी संगठन-योग्यताका अपूर्व उदाहरण है। इससे स्वयं व्यक्त हो जाता है कि संगठित

रूपसे काम करनेकी उनमे अद्भुत योग्यता थी । हमारे देशमे उस संगठनके अभावका कारण यह है कि हमारे देशकी व्यावसायिक प्रथाका विकास केन्द्रीकरणके आधारपर नही हो पाया है और इसलिए पच्छिमवालोकी तरह हमारे देशके लोग संगठित नही हो पाते ।

२—पूँजीवादके गुण

(क) उसके आधारके सिद्धान्तके अनुसार :—

(१) स्वार्थजनित प्रोत्साहन—पूँजीवादी प्रथाका सबसे बड़ा गुण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवसायको सफल बनानेके लिये जी जानसे मिहनत करता है । चूँकि वह इससे अधिकसे अधिक लाभ प्राप्त करनेकी आशा करता है और व्यवसायको अपने उद्योगका फल समझता है इसलिये अधिकसे अधिक परि-श्रम उसकी सफलताके लिए करता है । मानव जीवनमे निजी स्वार्थ सबसे प्रधान काम करता है । और जब इसका संयोग उत्पादनसे हो जाता है, जैसा कि पूँजीवादी प्रथामे है, तो यह उत्पा-दनको पूर्णतापर पहुँचा देता है । जो व्यक्ति अपने लाभके लिए काम करता है, उदाहरणके लिये एक बुनकर जो कपड़ा बुनकर बेचता है और उसका सारा नफा खुद पाता है, वह कभी भी बेकार बैठकर समय गँवानेकी कोशिश नही करेगा, और न अपने कपड़ेके तर्ज और उत्तमताके प्रति कभी लापरवाह ही होगा । लेकिन जिस बुनकरको वेतन या मजूरीपर रखा जायगा, वह इन बातोकी परवा नही करेगा । जिस बुनकरको नफाका कुल हिस्सा मिलनेवाला है वह हमेशा तर्जको सुन्दर, मालको ठोस

और बारीक बनानेका यत्न करेगा जिससे उसे ज्यादा नफा होता रहे। लेकिन जिसे वेतन या मजूरीपर रखा जायगा उसकी बराबर देखरेख और निगरानी करनी होगी ताकि वह काममे लगा रहे। उससे ठीक ठीक काम लेनेके लिए निरीक्षक या फोरमैन रखनेकी आवश्यकता बनी रहती है। इतनेपर भी उसके सामने ऐसा कोई प्रलोभन नही है जिससे वह पूरी मिहनतसे काम करे और बढ़िया माल तैयार करे। इसलिए जिस उत्पादनमे मजूरीके अलावा और कुछ मिलनेकी आशा नहीं है उसकी अपेक्षा व्यक्तिगत लाभकी आशा जहाँ रहती है वहाँ काम कहीं उत्तम और बढ़िया होता है। इस दृष्टिसे विचार करनेपर पूँजीवादका आधार बहुत ही दृढ़ और मजबूत सिद्धान्तपर कायम है।

(२) चढा-ऊपरी—पूँजीवादी प्रथामे चढ़ा उपरीका ख्याल सबसे अधिक रहता है। इसलिये पूँजीपतियोका ध्यान हमेशा उत्तम, सुन्दर और सस्ता माल तैयार करनेकी ओर रहता है। उदाहरणके लिये जिस कारखानेकी दियासलाई दूसरे कारखानेकी दियासलाईसे बढ़िया और सस्ती नहीं होगी, उस कारखानेके मालकी खपत बाजारमे नहीं हो सकेगी और उस कारखानेको अपना कारोबार उठा देना पड़ेगा। इसलिये प्रत्येक कारखानेदार उत्तमसे उत्तम माल तैयार करने तथा सस्तेसे सस्ते दरपर बेचनेकी कोशिश करता है। सस्ते दामपर माल तभी बेचा जा सकता है जब उत्पादनमे कम व्यय पड़े। इसके लिये उत्पादनके व्ययमे कमी करना आवश्यक है। यह तभी सम्भव है जब कारखाना आधुनिक यन्त्रोसे पूर्ण हो। इस तरह पूँजीवादी प्रथामें

चढ़ा उपरीके कारण उत्पादनमे पूर्णता और किफायतसारी लानेकी सदा कोशिश रहती है।

(३) स्वतन्त्रता—पूँजीवादी प्रथामे योग्य व्यक्तियो या समूहोको बड़ेसे बड़ा काम करनेका अवसर मिलता है। वे खुद-मुख्तार होते है और अपनी योग्यता और इच्छाके अनुसार काम कर सकते है। इस प्रथाका यह सबसे बड़ा वरदान है। व्यक्ति या दलको इस बातकी स्वतन्त्रता है कि वह अपनी इच्छा या योग्यताके अनुसार काम करे। किसी व्यक्तिको विश्वकी सम्पत्तिका मालिक बना दिया जाय लेकिन यदि इच्छानुसार उसे खर्च करनेकी स्वतन्त्रता नहीं रहती तो वह मालिकाना अधिकार निष्प्रयोजन है। पूँजीवादी प्रथाकी यही विशेषता है कि योग्य और अनुभवी व्यक्तियोको अपनी योग्यता और अनुभवके प्रयोगका पूरा अवसर मिलता है।

(ख) उपलब्धि या प्राप्तिके अनुसार—

विज्ञान और टेकनिकल ज्ञानकी सहायतासे पूँजीवादने देखते-देखते दुनियाकी काया पलट दी। हमलोगोकी दैनिक आवश्यकताकी चीजो—जैसे बिजलीकी रोशनी, रेडियो, किताब, कागज, सिनेमा, मोटरगाड़ी, बस, ट्राम, रेल, जहाज, वायुयान, बाइसिकिल, कपड़ा, सिल्क, ऊन, दरी, चूना, टेबुल, कुर्सी, बर्तन, खिलौना, तेल-साबुन, दवा-दारू, अनाज, मसाला, फल वगैरह—के लिये भी तो हमे पूँजीवादका ही मुँह जोहना पडता है। पूँजीवादने जनताको अनेक तरहकी सुविधाएँ प्रदान की हैं जिनका पुराने जमानेमे कोई स्वप्नतक नही देख सकता था और

दुनियाके कोने कोनेसे ऐसी ऐसी वस्तुएँ बटोरकर लोगोंको दी है जो राजाओंको भी उपलब्ध नहीं थीं। देहाती भी अब बाजारमें जाते है तो उनके सामने यह सवाल उठता है कि वे क्या खरीदें। इतनी चीजें उनके सामने आ जाती हैं कि उनके लिये कुछ स्थिर करना कठिन हो जाता है। आज बाजारोंमें जैसे रंग बिरंगे कपड़े मिलते है वैसे क्या एक पीढ़ी पहलेके लोगोको प्राप्त थे? आज तो 'दुनियाके कोने-कोनेसे अच्छा-अच्छा और सस्ता माल देहाती बाजारोंतकमें पहुँच जाता है। पूँजीवादी व्यवसायी लोगोके मनपसन्द माल तैयार करनेका यत्न करते है। इस तरह पूँजीवादने जो अद्भुत काम किया है उसकी प्राचीन युगमें कल्पनातक नहीं की जा सकती थी।*

(ग) इससे जो खूबी पैदा होती है—

(१) टीम स्पिरिट—पूँजीवादी प्रथाने सबसे बड़ी खूबी यह पैदा कर दी है कि लोगोंमें टीम स्पिरिट आ गयी है अर्थात् प्रत्येक दल अपनी सफलताके लिये दलके प्रत्येक व्यक्तिके साथ कन्धासे कन्धा मिलाकर काम करनेके लिये सदा उद्यत रहता है और किसी भी हालतमें पीछे पैर नहीं रखना चाहता। इसी लिये यह कहा जाता है कि इंगलैण्डके युद्ध तो ऐटनके खेलके मैदानमें ही जीते जाते है। बचपनमें ही जिन्हें मिल-जुलकर काम

---

* (क) और (ख) में जो खूबियाँ बतलायी गयीं है वे पूँजीवादकी कोई खास विशेषता नही है, बल्कि बडे पैमानेपर उत्पादनके कारण उसमें यह खूबी पायी जाती है। समाजवाद और साम्यवादमें भी यह खूबी सम्भव है।

करनेकी शिक्षा मिलती है वे जीवनमे प्रवेश करनेपर सहयोग करनेके लाभको खूब समझते है। इस तरहके सहयोगमे ही वास्तविक शक्ति है। ग्रेट ब्रिटेनकी सबसे बड़ी खूबी यही है कि संकटकालमें यहाँके निवासी व्यक्तिगत भेदभाव भूल जाते हैं और बिना किसी तरहकी आपत्तिके एक हो जाते है और एक नेताके अधीन काम करने लगते है।

(२) अनुशासन—किसी दलको ईकाईके रूपमे काम करने के लिये यह परम आवश्यक है कि उस दलके प्रत्येक व्यक्ति अनुशासनका पूरी तरह पालन करे। सामूहिक इच्छाके सामने दलके प्रत्येक व्यक्तिको अपनी व्यक्तिगत इच्छाका बलिदान करना अनिवार्य होगा। प्रत्येक व्यक्तिको दलकी आज्ञाके सामने सिर झुका देना पड़ता है। इसके लिये अनुशासनकी आवश्यकता है। पूँजीवादी प्रथाकी सबसे बड़ी विशेषता अनुशासन है।

हमलोगोके ऊपर सबसे बड़ा अभियोग यही लगाया जाता है कि हमलोगोमे अनुशासनकी कमी है और हमलोग एक दूसरेका पैर पकड़कर पीछे खीचनेका यत्न करते है। यही कारण है कि हमारे देशके उद्योग-धन्धोका केन्द्रीकरण नही होता है। अभीतक तो इस तरहके व्यावसायिक संगठनका अवसर हमारे देशमे नही आया था। अभीतक हमारे देशके कलाकार व्यक्तिगत हैसियतसे ही सारा काम-काज करते रहे है, इसलिये संगठन और अनुशासनकी आवश्यकता हमारे देशमें प्रतीत नही हुई लेकिन पूँजीवादी प्रथाकी तरह संगठित रूपसे काम होने लगेगा तो सारा काम नियमित तरीकेसे करना होगा, अन्यथा विशृंखलता और गड़बड़ी पैदा हो जायगी। इस तरह हम देखते है कि अनु-

शासनके साथ ही साथ पूँजीवाद जीवनमें एक तरहकी स्थिरता और कायदगी भी पैदा करता है अर्थात् इसने मनुष्यको तौर-तरीके तथा व्यवस्थित रूपसे काम करना सिखलाया है।

(३) समयकी पाबन्दी—इसका एक फल यह हुआ है कि लोगोमें समयकी पाबन्दी अर्थात् समयके मुताबिक काम करनेका भाव पैदा हो गया है। समयकी पाबन्दीकी भावना उसी आर्थिक व्यवस्थामे पैदा होती है जहाँ अधिक संख्यामें लोग एक साथ काम करते है। यदि वहाँ समयकी पाबन्दीका लोग ध्यान न रखें तो यह प्रथा ही टूट जायगी। व्यक्तिगत व्यवसायकी तरह, जब जी चाहा काम किया और जब इच्छा हुई छोड़ दिया, से यहाँ काम नही चल सकता। पूँजीवादी प्रथामें समयका बहुत बड़ा महत्व है और समयकी पाबन्दी एक आवश्यक योग्यता है। पूर्ण रूपसे उद्योगीकरण न होनेका ही फल है कि लोग सययकी पाबन्दीपर ध्यान नहीं देते।

(४) अन्योन्याश्रयिता—पूँजीवादी प्रथामे उद्योग-धन्धोंमे यह विशेषता उत्पन्न हो जाती है कि प्रत्येक काम दल-विशेषके हाथमे रहता है—जैसे कच्चा माल पैदा करनेवाले, पूँजी लगाने वाले, इञ्जीनियर, फैक्टरी मनेजर, क्लर्क, मजूर, माल भेजनेवाले, एजेण्ट, विज्ञापनदाता, विक्रेता, उपभोक्ता वगैरह—इसलिये व्य-वसायमें इन लोगोको एक दूसरेपर निर्भर रहना पड़ता है; निर्भरताका यह भाव एकदेशीय नहीं होता बल्कि विश्वव्यापी हो जाता है। एक गाँवका कच्चा माल पैदा करनेवाला किसान जापान, जर्मनी, अमेरिका और ब्रिटेनके व्यापारके साथ बँधा हुआ है। उसके कच्चे मालकी [illegible] वहाँके निवा[illegible]

साम्पत्तिक अवस्थापर निर्भर करती है और तैयार मालके लिये उसे उन लोगोका मुँह जोहना पड़ता है। आस्ट्रेलिया, मिस्र तथा कनाडाके बाजार-भावका असर भारतके बाजारपर पड़ता है और पौंड अथवा डालरके दरमें लेशमात्रकी घटती बढ़तीके फल-स्वरूप हमारे देशके व्यापारियोको लाखोका नुकसान या नफा हो जाता है। एक दूसरेपर निर्भर रहनेका यह भाव पूँजीवादी प्रथाकी देन है क्योकि पूँजीवादी प्रथाका कारोबार अन्तर्राष्ट्रीय है। सन्तो और धर्माचार्योने हमे यह पाठ पढ़ाया था कि "वसुधैव कुटुम्बकम्" लेकिन पूँजीवादी प्रथाने इसे सच करके दिखला दिया। कमसे कम आर्थिक क्षेत्रमे तो यह पूर्ण रूपसे लागू है।

३—पूँजीवादी प्रथाके दोष

(क) सामान्य

आरम्भिक—पूँजी प्रथाकी खूबियोका उल्लेख ऊपर किया गया है। लेकिन इस प्रथाके दोषोपर भी दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है। पिछली सदीमे जब यह प्रथा अपनी जवानीपर थी, अपनी सफलताके चकाचौंधमे इसने संसारको मोह लिया। व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका यह आधार माना गया था और इस भावनाके फलस्वरूप फ्रांसकी क्रान्तिके युगमे लाखो व्यक्ति फाँसीपर झूल गये। आर्थिक व्यवस्थाको व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका आधार बनानेका परिणाम ऐसा आकर्षक हुआ कि लोगोको इसने मोह लिया। लेकिन सदी समाप्त भी नहीं होने पायी थी कि इसका पर्दा खुलने लगा। पूँजीपतियोंने अपना असली रूप प्रकट कर दिया और विश्वव्यापी युद्धके बादल मँडराने लगे।

उसके बाद तो युद्धपर युद्ध हुए, उसके बाद व्यावसायिक प्रति-स्पर्धा, मन्दी, बेकारी और फिर युद्ध जिसके फन्देमे हमलोग पड़े है। उससे यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि वर्तमान आर्थिक दुरवस्थाकी सारी जिम्मेदारी पूँजीवादी प्रथापर है और यदि मानवता और सभ्यताकी रक्षा करना है तो इस प्रथाको समूल नष्ट करना होगा या इसमे आमूल परिवर्तन करना होगा। विगत सदी-के लोगोकी अपेक्षा वर्तमान सदीके लोग पूँजीवादकी बुरा-इयोका अन्दाजा भली भाँति लगा सकते है क्योंकि उस समय-तक पूँजीवादी प्रथाका विकास इतना अधिक नहीं हुआ था। इस प्रथासे सबसे अधिक लाभ ब्रिटेनहीको हुआ है क्योंकि बड़े पैमानेपर कारोबार सबसे पहले ग्रेट-ब्रिटेनमे ही आरम्भ हुआ था। अब अन्य देशोमे उद्योगीकरण हो जानेके फलस्वरूप ब्रिटेनका बाजार दबता जा रहा है और अब प्रत्येक देश इसी धुनमे है कि वह इतना ज्यादा माल पैदा करे जिससे अपने देशकी आवश्यकता पूरी करनेके साथ ही साथ वह संसारभरके बाजारोपर कब्जा कर ले। इसका फल यह होता है कि माल आवश्यकतासे ज्यादा तैयार होने लगता है, आर्थिक उथल-पुथल मच जाती है, बेकारी बढ़ने लगती है, युद्धके काले बादल मँड-राने लगते हैं और रक्तपात आरम्भ हो जाता है।

(१) स्वार्थपरता—हम ऊपर दिखला आये हैं कि पूँजी-वादी प्रथाका प्रथम सूत्र अपने लिये अधिकसे अधिक धन कमाना है। समझमे नहीं आता कि इस आर्थिक व्यवस्थामें ही इस नीच मनोवृत्तिका दर्शन क्यो होता है क्योंकि इस तरहकी संकुचित मनोवृत्तिका परिचय अन्य किसी क्षेत्रमें नहीं मिलता। जो डाक्टर,

वैद्य या हकीम, शासक या शिक्षक केवल रुपयेके लिये काम करता है उसे लोग आदरकी दृष्टिसे नहीं देखते। शायद यही कारण है कि डाक्टरों, शिक्षकों, सैनिकों और धर्माचार्योंकी अपेक्षा व्यवसायीको अनेक देशके लोग नीची निगाहसे देखते हैं क्योंकि व्यवसायीकी अपेक्षा उन लोगोंमें निःस्वार्थता और सज्जनता किसी हदतक ज्यादा पायी जाती है। लोगोंकी यही धारणा है कि सौदागर हद दर्जेका स्वार्थी होता है। धन और निजी स्वार्थके अतिरिक्त उसका ध्यान और किसी बातपर नहीं रहता। लेकिन किसी भी समाजके लिये यह अवस्था वाञ्छनीय नहीं है क्योंकि एक सौदागर भी अन्य लोगोंकी भाँति समाजका अंग है और अन्य लोगोंकी तरह समाजको भी उसकी उतनी ही आवश्यकता है। यदि उसके उद्देश्यपर सामाजिक नियन्त्रण रखा जाय और सेवाके भावका उसमें संचार कर दिया जाय तो उसका काम भी समाजमें सौम्य समझा जा सकता है। लेकिन पूँजीवादी प्रथामें इसकी सम्भावना नहीं है। इस प्रथाने व्यक्तिगत लाभको प्रश्रय देकर उद्योग और व्यवसायकी मर्यादाको ही नष्ट कर दिया है। जिसमें व्यक्तिगत लाभकी जितनी ज्यादा क्षमता हो उतना ही ज्यादा हाथ-पैर वह फैला सकता है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रतामें किसी तरहके हस्तक्षेप न होने देनेकी आड़में उसने स्वार्थ और लाभको अनियन्त्रित प्रश्रय दे दिया है। इसका फल यह होता है कि इस प्रथाके अन्दर लोगोंमें स्वार्थ और लोभकी नितान्त वृद्धि हो गयी है।

(२) लूट—समाजमें यदि एक व्यक्ति दूसरेकी वस्तुका अपहरण करे तो उसे चोर कहते हैं। लेकिन पूँजीवादी प्रथामें

जब यही काम संगठित रूपसे किया जाता है तो ऐसा करनेवाले लोग समाजके आदरणीय व्यक्ति समझे जाते है यद्यपि उनका अपराध कही ज्यादा संगीन होता है क्योंकि व्यवस्थित रूपसे जान बूझकर ये लोग अनेकोंकी रोजीका अपहरण करते हैं। न्यायकी दृष्टिसे तो व्यवसायका लाभ हिस्सेके मुताबिक उन सभी लोगोंको मिलना चाहिये जो इस लाभके पैदा करनेमें सहायक होते है, जैसे, पूँजीपति मजूर और कार्यकर्ता। लेकिन वास्तविकता क्या है। एक ओर तो पूँजीपति या उद्योग-पति दिनोदिन धनी होता जा रहा है और दूसरी ओर मजूर दिनोंदिन निर्धन होता जा रहा है। इससे यही प्रकट होता है कि पूँजीपति नफेका कुल अंश खुद ले लेता है और मजूरको कुछ भी नही देता। पूँजीपति अपना फाजिल रुपया कारोबारमे लगाता है और हाथ-पैर हिलाये बिना ही बेहिसाब नफा कमा लेता है और जो मजूर चोटीका पसीना एँड़ीतक बहाकर रात दिनके कड़े परिश्रमसे माल तैयार करता है उसे पेटभर भोजन-तक नही दिया जाता। इस दृष्टिसे पूँजीवादी प्रथामे घोर अन्याय होता है और इसे निःसंकोच जायज लूट कह सकते हैं। यूरोपमे इसका उदय सामन्तशाही प्रथाके आधारपर हुआ। सामन्तशाही युगमें शक्तिशाली जमींदार (बैरन लोग) अपने किलों-से निकलते थे और अपने वैभवकी वृद्धिके लिये आस-पासके गाँवोंमें लूटपाट मचाते थे। जो किसान इस लूटपाटसे बचना चाहते थे वे उन्हे कर देते थे। मशीनोंके आविष्कारके फल स्वरूप जब यूरोपमें औद्योगिक क्रान्तिका उदय हुआ और भारत-से प्रचुर सम्पत्ति लूटकर यूरोप पहुँचायी गयी, तब इन सामन्त-

शाहोका स्थान उद्योगपतियोने ग्रहण किया । इन उद्योग-पतियोने उसी तरहका संगठन नये रूपसे खड़ा किया और नफाके रूपमे जनताको लूटना आरम्भ किया । दोनोका अव्य-वसाय एक ही था, केवल दोनोके रूपमे अन्तर था । सामन्त लोग अपने बलसे साधारण जनताको लूटते थे, उद्योगपति अपने धनकी प्रभुतासे नफाके रूपमे जन-साधारणको लूटने लगे ।

(३) अन्तःकलह—लेकिन इस तरहकी लूट बेरोकटोक निरन्तर जारी नहीं रह सकती । मजूर तभीतक दबा रह सकता है जबतक वह अज्ञानी है, गरीब है और असंगठित है । लेकिन एक समय आवेगा जब वह उतना ही स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं रहेगा जो पूँजीपति उसे देना चाहते है । वह अपने अधि-कारको प्रकट करेगा और व्यावसायिक क्षेत्रमे संघर्ष और द्वन्द्व उपस्थित हो जायगा। दो शक्तिशाली दलोमें द्वन्द्व मच जायगा—एक ओर पूँजीपति और दूसरी ओर मजूर। यह कलह ऐसा भयानक रूप धारण कर लेगा कि पूँजीवादी प्रथामे यह किसी भी प्रकार शान्त नहीं हो सकेगा ।

(४) साम्राज्यवाद—घरकी लूटसे सन्तुष्ट न होकर पूँजीपति कच्चा माल खरीदने तथा तैयार मालकी खपतके लिये दूसरे देशोकी तरफ अपनी लोलुप आँखें फेरते है। परिणाम यह होता है कि कोई न कोई बहाना निकालकर ये दूसरे देशोको हड़पने लगते है या अपनी पूँजीके प्रभावसे उन देशो और उनके शासकोपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेते है । इन अधिकृत देशोंसे वे कच्चा माल खरीदते है और अपने तैयार मालकी खपतके लिये इन देशोमें माल तैयार नहीं होने देते । इस तरह पूँजीवाद साम्राज्य-

वादको जन्म देता है और दुर्बल देशोंको अपना गुलाम बनाता है। इस क्रियामें नैतिक विचार ताखपर रख दिया जाता है और यदि कभी इस तरहके उद्गार प्रकट भी किये गये तो वे दिखावा-मात्र। वहाँ तो एकमात्र ध्यान नफापर रहता है।

(५) विद्रोह—लेकिन इस तरहकी लूट बेरोक-टोक जारी नहीं रहती। गुलाम प्रजा विद्रोह करती है। विदेशियोंद्वारा इस तरहका अनवरत शोषण वे स्वीकार नहीं करते। उनमें राष्ट्रीयताका उदय होता है और वे विदेशियोंको निकाल बाहर कर साम्राज्यवादका अन्त कर देना चाहते हैं।

(६) युद्ध—इसके साथ ही दूसरे देशोंके साथ भी संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। किसी देशपर एक राष्ट्रके अविच्छिन्न अधिकारको दूसरे व्यावसायिक उन्नत राष्ट्र बर्दाश्त नहीं कर सकते। परस्पर डाह पैदा होता है। उस देशके कच्चे माल बाजार तथा सस्ते मजूरमें हिस्सा पानेके लिये दूसरे राष्ट्र भी तड़फड़ाने लगते है। इसीका फल विश्व-युद्ध है। इन कमजोर देशोंपर प्रभुता कायम करनेके लिये बलशाली और व्यावसायिक उन्नत राष्ट्रोंमें युद्ध छिड़ जाता है और अपनी प्रभुता कायम करनेके लिये वे युद्धमे अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं। युद्धमें विजय पानेके लिये तथा जनसाधारणको युद्धमे संलग्न करनेके लिये ये साम्राज्यवादी राष्ट्र अनेक तरहके झूठे दावे पेश करते है, संसार-की आजादीको कायम रखनेकी झूठी घोषणाएँ करते हैं और इन उपायोंसे जनताकी आँखोंमे धूल झोंकनेका यत्न करते है। निरीह जनता देशकी आजादीके नामपर उन्मत्त हो उठती है और इन पूँजीपतियोंके लिये अपना सिर कटा देती है। पूँजीपतियोंको

अपनी सत्ता कायम रखनी है चाहे उसके लिए कितना भी भयानक रक्तपात क्यो न हो। इस तरह युद्धके वाद युद्ध होते रहते है और नर-संहारका क्रम जारी रहता है। सुख, शान्ति और सभ्यता खतरेमे पड़ जाती है। इससे स्पष्ट है कि यदि पूँजीवादका समूल नष्ट नही किया गया तो मानवताके लिए यह महान सकट उपस्थित करेगा।

अनियंत्रित स्वार्थ आर्थिक संगठनके लिए सवसे वडा खतरा है। इससे ववरताका राज्य कायम होता है। यह उस राक्षसी मायाका विस्तार करता है जहाँ अर्थ-लोलुप मानव पशुसे भी नीचे गिर जाता है और ठगी, धोखा, विश्वास, क्रूरतामे ही अपनी विजय मानता है और विश्वको रसातलमे भेजनेका यत्न करता है।

ऊपर जा कुछ कहा गया है उसे सिद्ध करनेके लिये यह आवश्यक है कि पूँजीके सञ्चालनपर प्रकाश डाला जाय और यह दिखलाया जाय कि उत्पादन तथा खपतके क्षेत्रमे उसका किस तरह प्रयोग होता है और मानव-जातिपर उसका क्या प्रभाव पड़ता है।

(ख) विशेष—

१—उत्पादन

(क) मजूर—

(१) दासता—पूँजीवादी प्रथामें उत्पादनका काम मशीनोद्वारा होता है। इन मशीनोको चलानेके लिये नौकर रखे जाते हैं। इस तरह उनके स्वतत्र व्यक्तित्वका अपहरण हो जाता है

और वे वेतनभोगी कर्मचारी मात्र रह जाते हैं। इन लोगोंके पास उत्पादनका कोई साधन नहीं है। यदि पूँजीपति इन्हे नौकर न रखे तो ये एकदम लाचार है। इस तरह इन्हें पूरा गुलाम बन जाना पड़ता है। यदि इन्हे अपने पदपर कायम रहना है तो इन्हें झुककर रहना पड़ेगा। कल-कारखानोके मालिक दो ही चार है इसलिये बाकी सबको मजूर या कर्मचारीके रूपमें रहना पड़ता है और अपनी हरतरहकी स्वतन्त्रताको तिलाञ्जलि देकर दास बन-कर दूसरोके इशारेपर चलनेके लिये बाध्य होना पड़ता है।

(२) लाचारी और अनिश्चितता—उत्पादन छोटे पैमानेपर था तबतक लोगोंको अपनी बुद्धिकी विशेषता प्रकट करनेका अवसर मिलता था। प्रत्येक व्यक्तिकी सफलता उसके परिश्रमपर निर्भर करती थी। लेकिन वर्तमान औद्योगिक युगमे छोटे पैमानेपर उत्पा-दन करनेवाला बड़ी शक्तियोका खिलवाड़ बन गया है जिसके लिये कोई चारा नहीं है। कभी कभी तो उसे आशातीत सफलता मिल जाती है जिसकी वह स्वप्नमे भी कल्पना नहीं करता लेकिन कभी विना किसी व्यक्त कारणके वह एकदम बर्बाद हो जाता है। पुराने जमानेमें अकाल, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, बाढ़, भूकम्प आदि दैवी प्रकोपके कारण मनुष्यके नियमित साधारण जीवन यापनमें व्यवधान पड जाता था और उन्हे सङ्कटका सामना करना पड़ता था लेकिन उस युगमे तो बंकोका दिवाला, कम्पनियोका दिवाला, व्यवसायकी तेजी मंदी उससे कहीं भयानक संकट उपस्थित करते रहते है। वर्तमान आर्थिक नीति और पूँजीपतियोकी स्वार्थपरताका यह परिणाम है। इस युगमें कोई भी व्यक्ति अपने भविष्यके लिये निश्चिन्त नहीं रह सकता।

व्यक्तिकी हालत नदीकी धारामे बहते पत्तेके समान है जो डूबता और उतराता है तथा किसी भी क्षण विलीन हो सकता है। व्यक्ति चाहे कितना ही ईमानदार परिश्रमी और किफायतसार क्यो न हो, लेकिन भविष्यके लिये उसे सदा शंकित बना रहना पड़ता है। इस तरह वह सदा लाचारी और अनिश्चितताका अनुभव करता रहता है और परिश्रम करनेके लिये उसे कोई प्रेरणा नहीं मिलती।

(३) बेकारी—बडे बड़े कारखानोके मजूरोकी हालत कभी अच्छी नहीं रहती। मांगकी कमी, रोजगारकी मन्दी, उत्पादनकी अधिकता आदि ऐसी घटनाएँ है जिनके कारण कारखाने किसी समय बन्द हो जाते है और मजूर बेकार हो जाता है। यदि इनमेसे कोई बात भी न हुई तो एकाध नयी मशीनका ही आविष्कार हो जाता है और उसकी जरूरत नहीं रह जाती। अब यह तर्क नहीं पेश किया जा सकता कि बड़े पैमानेपर कारोबारके फलस्वरूप नित नये कारखाने खुलते रहते है इससे एक जगहसे काम छूट जानेपर उसे दूसरे कारखानेमे काम मिल जायगा। व्यावसायिक विकार निरन्तर जारी नही रह सकता। उसकी भी सीमा है। आज व्यावसायिक विकास अपनी चरम सीमापर पहुॅच गया है और संसारके सभी क्षेत्रोमे हर तरहके माल का उत्पादन भी अपनी चरम सीमाको पहुॅच गया है। इसलिये नये यन्त्रोका आविष्कार मजूरोमे बेकारी उत्पन्न कर देता है और उन्हे कहीं ठॉवठौर नहीं मिल सकता। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन है। एशियाके अनेक खण्ड, दक्षिण अफ्रीका तथा दक्षिण अमेरिकामे अभी भी पूरी तरह व्यावसायिक

विकास नहीं हो पाया है। तो भी अमेरिका और ब्रिटेन बड़े बड़े कारखानोंके होते हुए भी अपने यहाँके सभी मजूरोको काम देनेमें असमर्थ है। १९३४ में अमेरिकामें बेकारोकी संख्या १ करोड़ १० लाख थी और बेकारीका भत्ता उन्हे देनेके लिये अमेरिकाकी सरकारको १ करोड़ ७० लाख डालर व्यय करना पड़ा था। उसी साल ब्रिटेनमे बेकारोकी संख्या तीन करोड़ थी। १९४० में युद्धके कारण बेकारोकी संख्या निश्चित ही घट गयी होगी तो भी ब्रिटेनको बेकारोकी सहायताके लिये २ करोड़ २० लाख पौंड व्यय करना पड़ा था।* आज जब यह हालत है तब उस समय क्या हालत होगी जब संसारके सभी देश व्यावसायिक दृष्टिसे समृद्ध हो जायँगे। प्रत्येक देशमे जब बड़ी बड़ी मशीनोसे काम होने लगेगा तब तो निश्चय ही बहुत कम मजूरोकी जरूरत पड़ेगी और यह व्यवस्था उत्पन्न हो जानेपर पूँजीवादका पतन अनिवार्य है।

(४) गरीबी—पूँजीवादके विकासका फल यह होता है कि गरीब दिनोदिन गरीब होता जाता है क्योकि सबको काम न मिलनेसे बेकारी बढ़ती जाती है और अमीर दिनोदिन धनी होता जाता है क्योकि मशीनोके आविष्कारसे मजूरी आदिके रूपमे उसे खर्च कम करना पड़ता है और नफाका अधिकाधिक भाग उसकी जेबमे जाता है। मजूरोकी संख्या बहुत अधिक है और पूँजीपतियोकी कम। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि सम्पत्ति चन्द लोगोके हाथमे हो जाती है और अधिक संख्या-

---

* स्टेट्समैन ईयर बुक १९४१ पृ० ३३

को मुश्किलसे पेटभर अन्न मिल पाता है। सोशल सिक्योरिटी वार्ड-के अनुसार १९४० के अप्रेलमे १७९३०,०० व्यक्ति (अर्थात् अमेरिकाकी जन-संख्याका प्रायः सातवॉ हिस्सा) सार्वजनिक कोपसे सहायता पाते थे।* पिछले युद्धके पहले अमेरिकाकी आबादीकी १ फी सदीको राष्ट्रीय आयका २० फी सदी, १० फी सदीको ३० फी सदी और गरीब २५ फी सदीको केवल ३½ फी सदी मिलता था। इंगलैण्डके बारेमे कोलिन क्लर्कका हवाला देते हुए सर रिचार्डने कहा है कि १९३४ मे १½ फी सदी आबादीको राष्ट्रीय आयका २० फी सदी, ८½ फी सदीको २५ फी सदी और बाकी ९० फी सदीको राष्ट्रीय आमदनीके ५० फी सदीपर जीवन यापन करना पड़ता था। १९३४ का यह ऑकड़ा १९१३ के ऑकड़ेसे कही खराब है। इससे यही अनुमान किया जाता है कि पूँजीवादी प्रथाका ज्यो ज्यो विकास होता जायगा त्यो त्यो सम्पत्तिका अधिक हिस्सा चन्द लोगोके हाथमे इकट्ठा होता जायगा और अधिकाधिक लोग गरीब होते जायॅगे।

हम पीछे दिखला आये है कि बड़े पैमानेपर उत्पादनका यह फल होगा कि बड़े बड़े कारखाने आपसमे मिलकर छोटे छोटे कारखानोको हड़प लेगे। इससे सम्पत्तिका बॅटवारा और भी विषम हो जायगा। कहा जाता है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका-के दो करोड़पति परिवार अर्थात् मार्गन और राकफेलर परिवार-का सम्मिलित अधिकार ११२ बंको, रेलवे, बीमा तथा अन्य

---

* स्टेट्समैन ईयर बुक १९४२ पृ० ५०२

कम्पनियोंपर था और इनके अधिकारमें २२,२४५,०००,००० डालर पूँजी थी और संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाका सारा कारोबार ११ आदमियोंके अधीन था।* इतनी अतुल सम्पत्ति न्यूयार्क शहरके चन्द कोठियोके अधीन थी तो भी युद्धके आरम्भ होनेके ठीक पहले न्यूयार्ककी सड़कोपर हजारो व्यक्ति जीविकाकी तलाशमे मारे मारे फिरते थे। हालत यहाँतक खराब हो गयी थी कि करोड़पतियोके इस न्यूयार्क नगरका नाम 'मरभुखोका नगर'' पड़ गया था। एक ओर तो चन्द व्यक्तियोके हाथमे अतुल सम्पत्ति थी और दूसरी ओर हजारो व्यक्ति भूखे मर रहे थे। एक तरफ लोग खा खाकर मरते थे और दूसरी तरफ लोग खानेके अभावमें मरते थे।

ऊपरका विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण समझा जायगा क्योंकि एक बात सच है कि उद्योगीकरणके पहलेकी अपेक्षा व्यवसाय सम्पन्न देशोमें मजूरोकी रहन-सहनका मापदण्ड कहीं ऊँचा हो गया है। पहलेकी अपेक्षा आज मजूरोको आरामके अनेक उपकरण प्राप्त करनेका साधन प्राप्त है। इंगलैण्डके मजूर भारतके धनिकोकी अपेक्षा कहीं आरामकी जिन्दगी बिताते हैं। ऐसी हालतमे यह कहना कहाँतक उचित होगा कि उद्योग-धन्धोके विकासने दरिद्रताको जन्म दिया है ? क्या हमारे ही देशमे इस बातकी चेष्टा नही की जा रही है कि व्यावसायिक उन्नति-द्वारा अनेक तरहके माल यहाँ सस्ते दरपर पैदा किये जायँ

---

* जेम्स ट्रस्लो ऐडम्स : दी एपिक आफ अमेरिका १९४०, पृ० ३४४

ताकि वे जन-साधारणको सुलभ हो सके और बेकारोंको काम मिल जाय।

इस प्रश्नका समुचित उत्तर देनेके लिये यह आवश्यक है कि उद्योगीकरणके प्रभावको अच्छी तरह समझनेके लिये हम उन देशोंकी उस दशापर दृष्टिपात करें जब वहाँ औद्योगिक विकास नहीं हुआ था।

पहली बात तो यह है कि हजारों कारीगरोंके मुँहसे रोटीका जरिया छीनकर यदि गिने-गिनाये मजूरोंने २ या ३ रुपया पैदा ही कर लिया तो उसका क्या महत्व है? जिस सम्पत्तिको हजारों कारीगर कमा सकते थे उसे छीनकर चन्द मजदूरोंको अधिक वेतन दिया जाने लगा है और मिल-मालिकोंकी जेब भरी जाने लगी है। जहाँतक जन-साधारणका सम्बन्ध है इससे उनके बीच गरीबी और बेकारीका प्रादुर्भाव हुआ है। क्योंकि कारखानोंमे चन्द-को काम भले ही मिल जाता है लेकिन हजारोंको जीविकाके साधन-से वञ्चित किया जाता है।

दूसरी बात यह है कि यदि इंगलैण्डके लोगोंको आरामके अनेक साधन उपलब्ध हैं तो इसका प्रधान कारण यह है कि उत्पादनपर एकाधिपत्य कायम कर उन्होंने व्यवसायको अपनी मुट्ठीमें कर लिया है और हमारे देशको दरिद्र बना दिया है। वहाँकी जनता तथा अन्य व्यवसाय समृद्ध देशोंकी जनताको ऊँची रहन-सहनकी सुविधा केवल इसलिये प्राप्त है कि उन्होंने पिछड़े हुए देशोंको दोनों हाथोंसे लूटा और नोचा है। पूँजीवादी व्यवस्थामें अपने पड़ोसीको लूटे बिना कोई सम्पन्न नहीं हो सकता।

तीसरी बात यह है कि केवल रहन-सहनका मापदण्ड ऊँचा हो जाना ही जनताकी वास्तविक समृद्धिका लक्षण नहीं है। धनी और सम्पन्न उसीको कह सकते हैं जिसके पास जीवनकी सभी आवश्यकताओंकी पूर्तिके साधन मौजूद हैं। जहाँ मजूरोंको अधिक वेतन मिल रहा है वहाँ उनकी असली हालत क्या है। अप्राकृतिक साधनोंद्वारा उनके जीवनकी आवश्यकताएँ बढ़ा दी गयी है। वे जो कुछ पाते है उन्हींकी पूर्तिमे लगा देते है तो भी उन्हे पूरा नहीं पड़ता कि वे सभी आवश्यकताओंकी पूर्ति कर सकें क्योंकि उत्पादनके नये-नये साधनोंके कारण आकर्षक वस्तुओंके उत्पादनकी बहुत ज्यादा वृद्धि हो गयी है। एक देहातीके लिये ५०) रुपया महीना सुखी जीवन यापन करनेके लिये पर्याप्त है लेकिन बम्बई और कलकत्ता ऐसे शहरोंमे रहनेवालोंके लिये १५०) भी पर्याप्त नहीं है क्योंकि देहातकी अपेक्षा शहरोंमें आवश्यकताओंका रूप बहुमुखी हो जाता है। इस दृष्टिसे शहरोंमे १५०) रु० मासिक पानेवाला देहातके ५०) रु० मासिक पानेवालेकी अपेक्षा गरीबीसे दिन काटता है क्योंकि उसकी सारी आवश्यकताओंकी पूर्ति नही हो पाती। इसलिये किसी व्यक्तिके सुखमय जीवनकी कल्पना करनेके लिए केवल उसकी आमदनीपर ही दृष्टि नहीं रखनी चाहिये, और उसके पास जो सामान है उन्हे ही देखकर उसे समृद्ध नही मान लेना चाहिये। व्यापक उद्योगीकरणकी यह भी एक माया है। जो माल वह उत्पन्न करता है उसकी खपतको कायम रखनेके लिये वह लोगोमें अनेक तरहकी चीजें रखनेकी लालसा उत्पन्न कर देता है। इसलिये हमलोगोंको इस जालमे नही फँसना चाहिये। आप अपनी आव-

श्यकताको जितना ही बढ़ाते जायँगे, उनका उतना ही विस्तार होता जायगा। उनकी पूर्ति कभी नहीं होगी। समृद्धिका वास्तविक अर्थ तो यही है कि समस्त आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये आपके पास साधन मौजूद है। इसलिये आवश्यकताएँ जितनी ही कम होंगी उतना ही समृद्ध कोई व्यक्ति समझा जायगा। इससे हमारा अभिप्राय यह नही है कि हमलोगोको सन्त और सन्यासी बन जाना चाहिये या आदिम अवस्थामे चला जाना चाहिये। हमारा केवलमात्र इतना ही कहना है कि अनेक तरहके सामानोसे घिरा रहना समृद्धिका सच्चा लक्षण नही है।

पश्चिमके लोग जो विविध प्रकारकी वस्तुएँ हमलोगोको प्रदान कर रहे है उसके बिना ही हम सुखी, स्वस्थ और आनन्दमय जीवन बिता सकते है। इसलिये यह कहना गलत है कि ऊँची रहन-सहन सुखमय और समृद्ध जीवनका लक्षण है।

ऊपर जो बाते कही गयी है उनसे यह साफ प्रकट हो जाता है कि पूँजीवादके बड़े पैमानेपर उद्योगीकरणका फल यह हुआ है कि जनसाधारण अधिकाधिक दरिद्र हो गया है, और अनेकोको निर्धन बनाकर उसने चन्दको सुखी और समृद्ध बना दिया है और उन्हे अनेक तरहकी सुविधाएँ प्रदान कर दी है।

(५) रोग और कुटेव—बड़े-बड़े कारखाने शहरोमे ही खोले जाते हैं। एक कारखानेमे हजारो मजूर काम करते है। जगहकी कमी सदा बनी रहती है। मकानोका किराया ऊँचा रहता है। इसका फल यह होता है कि मजूरोको छोटी जगहोमे भेड़-बकरियोकी तरह रहना पड़ता है। कहीं-कहीं तो सिर्फ सोनेभरकी जगह किरायेपर मिलती है। उतनी जगहके लिये भी दो

किरायेदार रहते हैं। एक दिनको सोनेवाला और एक रातको सोनेवाला। ऐसे स्थान स्वभावतः अस्वस्थकर होंगे। अधिकांश मजूर अपने परिवारको गाँवोंमे ही छोड़कर कमानेके लिये शहरके कारखानोंमें भर्ती हो जाते हैं। इसका फल यह होता है कि उनमें अनेक तरहकी बुरी आदतें पड़ जाती हैं। वे शराब पीने लगते हैं, जुआ खेलने लगते हैं, चरित्रहीन हो जाते है, अनेक तरहके रोग इनके शरीरमे अपना घर बनाकर धीरे-धीरे इन्हे निकम्मा बना देते है। इस वातावरणमे जो बच्चे पाले-पोपे जाते हैं वे कैसे होंगे, इसका अनुमान सहजमें ही किया जा सकता है। सदाचार और शिष्टता इन्हें छू तक नहीं जाती और ये अपराधकी प्रवृत्तियोका शिकार हो जाते है।

(६) अपराध—इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता कि अपराध तथा अनैतिकताकी वृद्धि होने लगती है। व्यवसायकी दृष्टिसे अमेरिका संसारमें सबसे अधिक उन्नत देश माना जाता है। साथ ही अमेरिका अपराधोके लिये भी उतना ही बदनाम है। वहाँके संगीन अपराधोका वृत्तान्त पढ़कर सिहर जाना पड़ता है। व्यवसायियोके इस संगठित लूटका मुकाबला करनेके लिये अपराधियोंने अपना संगठित संगीन दल तैयार कर लिया है और वैज्ञानिक ज्ञानके नये नये उपायोंका अवलम्बन करने लग गये है। जिस तरह ये उद्योगपति विधान और नियमकी अवहेलना करते है उसी तरह ये डाकू और लुटेरे भी कानूनकी अवज्ञा करते है। उन लुटेरोकी दृष्टिमे कानून एक आडम्बर मात्र है जिसे धनियोने मजूरोको अपनी अधीनतामें रखने लिये और अपनी रक्षाके लिये बनाया है। इसलिये जब

कभी उसे अवसर मिलता है यह न्यायकी अवज्ञा करता है।

(७) जाति द्वेष—मजूर वर्ग इस बातको पसन्द नहीं करता कि धनी वर्ग अपने अधिकार और समृद्धिकी वासनाको तृप्त करनेके लिये उन्हे साधन बनावे। मजूर वर्ग सदा यह महसूस करता रहता है कि कठिन परिश्रमसे वह जो कमाता है उसका बहुत बड़ा भाग हाथ पैर न हिलानेवाले पूँजीपतियोंकी जेबमे चला जाता है और उसे केवल इतना ही मिलता है जिससे वह कठिनाईके साथ अपना और अपने परिवारका भरण पोषण कर सकता है। पूँजीपति जिस विलासिताका जीवन बिताते है—वस्त्र, भोजन, मकान, नौकर चाकर, क्लब सिनेमा, सैर सपाटा वगैरह—उन्हे वह डाहसे देखता है। इसलिये वह पूँजीपतियोंसे जो कुछ सम्भव है उसे जबर्दस्ती छीन लेनेके लिये संगठित होता है। कारखानोको पंगु बनानेके लिये वह हड़ताल-का आश्रय लेता है। मनुष्य मनुष्यका शत्रु बन जाता है और देशमे भेदभाव और शत्रुताका जन्म होता है। इस समस्याका समाधान पूँजीवादके अन्दर नही हो सकता क्योंकि जबतक पूँजीवाद कायम रहेगा तबतक लूटनेवाले और लूटे जानेवाले कायम रहेंगे। जैसा ऊपर दिखलाया गया है पूँजीवादका आधार लूट है। पूँजीपति अपने लिये अधिकसे अधिक धन बटोरना चाहता है। यह तभी सम्भव है जब वह दूसरोंको उससे वंचित करेगा। जो लूटा जायगा या वंचित किया जायगा वह निश्चय हो असन्तुष्ट रहेगा और बदला लेनेके अवसरकी ताकमे रहेगा।

(८) धनकी लिप्सा—पूँजीवादका आधार धन है। इस लिए उसने लोगोंके मनमे उत्कट और अनुचित धनकी लिप्सा

उत्पन्न कर दी है। जिसके पास धन है उसीकी प्रतिष्ठा है, उसी-का प्रभाव है और उसे सब कुछ प्राप्त है। इसलिये रुपया कमाना ही मनुष्यके जीवनका सबसे बड़ा आदर्श बन गया है। अन्य सभी विचार—धर्म, सदाचार, अध्यात्म—गौण हो गये है।

यही घातक परिणाम है जिसे पूँजीवादने मजूरोंकी नैतिक, मानसिक और आर्थिक दशामें उत्पन्न कर दिया है। आगे हम यह दिखलाना चाहते है कि पूँजीपतियोंपर इसका क्या प्रभाव पड़ता है।

(ख) मालिक

इसका एकमात्र ध्येय अपने लिये अधिकसे अधिक धन कमाना है। इसलिये वह बिना किसी विचारके अपने उद्देश्य-की सिद्धिके लिये सभी उपलब्ध साधनोंको काममें लाता है।

(१) फजूल खर्ची—

(क) मॉगपर दृष्टि न रखकर उत्पादन—लाभकी धुनमे वह मॉगपर ध्यान रखे बिना अपने मालकी पैदावार बढ़ाता जाता है। इसका परिणाम अनेक तरहसे घातक होता है। उदाहरणके लिए वह इतना कागज बनाता जाता है जितनी उसकी मशीने बना सकती है। इस कागजकी खपतके लिये वह जयज तथा नाजायज सभी तरीकोंसे बाजारमे काम लेता है। मूल्यका दर गिराकर वह अपने छोटे प्रतिद्वन्द्वियोका गला घोट देता हे और इस तरह बाजारपर कब्जा कर लेता है। आरम्भमे वह घाटे-की परवा नहीं करता क्योंकि उसे विश्वास है कि, बाजारपर

आधिपत्य जमाकर वह उसे पूरा कर लेगा। इस तरहका उत्पादन जिसका उद्देश्य प्रतिस्पर्धीका समूल नाश करना है, बर्बादी है। लेकिन अधिकाधिक नफा कमानेके उद्देश्यसे यही किया जाता है। इससे उत्पादनमे किसी तरहकी बढ़ती नही होती क्योकि प्रतिद्वन्दियोका इस तरह अन्त करके वह मालका मूल्य बढ़ानेके लिये उत्पादन घटाने लगता है। इतना ही नही, एक तरफ तो दुनियामे लाखो प्राणी अभावके कारण मर रहे है और दूसरी ओर मूल्य बढ़ानेके लिये पूँजीपति लाखो टन गेहूँ, कपास, चाय और काफीमे आग लगा देता है और न जाने कितना फल वगैरह समुद्रके अतल तलमें ढकेल देता है। एक तरफ वह तैयार मालका इस तरह नाश भी करता है और अन्य उपायोसे उत्पादनको रोकता है। मौजूदा माँगको पूरा करनेकी तरफ उसका जरा भी ध्यान नही रहता। जब मालकी धूम मची रहती है तब वह तेजीसे उत्पादन करता है। इससे बाजार मालसे पट जाते है। माँगसे पैदावार कई गुना बढ़ जाती है। परिणाम होता है कारखानोका बन्द होना, मजूरोकी बेकारी और सर्वनाश। इस तरहकी घटनाएँ प्रायः हुआ करती है क्योंकि उत्पादनका काम किसी व्यवस्थित ढंगपर नही किया जाता। एक बार बेशुमार उत्पादन करनेपर दूसरी बार उसे कारोबार बन्दकर हाथपर हाथ रखकर बैठना पड़ता है। लेकिन उसे इसकी परवा नही है क्योकि व्यक्तिगत हानि उसे होती नहीं और उसकी इस हरकतसे समस्त राष्ट्रको जिन संकटोका सामना करना पड़ता है उसकी वह परवा नही करता।

(ख) अनावश्यक उत्पादन—पूँजीपतिका एकमात्र उद्देश्य नफा

कमाना रहता है। इसके लिये वह अनावश्यक आकर्षक वस्तुएँ पैदा करता है और विज्ञापनद्वारा उनकी खपतके लिये बाजार तैयार कर लेता है। उत्पादनका वास्तविक उद्देश्य मौजूदा माँग-को पूरा करना होना चाहिये। मुझे चावलकी आवश्यकता है। पैदा करनेवाला भी वही पैदा करता है। हमे चावल मिल जाता है। किस्सा यही खतम हो गया। जबर्दस्ती बेचनेका प्रश्न नहीं उठता। लेकिन जब ऐसी चीजें उत्पन्न की जाती है जिनकी आवश्यकता नहीं है तब उनके उत्पादनका एकमात्र उद्देश्य धन कमाना हो जाता है। ऐसी चीजोकी माँग पैदा करनेके लिये इस तरहका प्रचार किया जाता है कि हम खामखाह उनके फन्देमे फँसकर शिकार हो जाते है। पैदा करनेवाला तो कमा लेता है लेकिन हमारा धन बर्बाद हो जाता है। इससे इस तरहकी वस्तुओंके उत्पादनका सारा अध्यवसाय बर्बादी है।

जहाँ उत्पादनका एकमात्र उद्देश्य नफा कमाना है वहाँ उत्पादक उन्ही लोगोंको दृष्टिमें रखकर उत्पादन करता है जिनके पास खरीदनेका साधन है और जो उन वस्तुओंको खरीद सकते है। वह उन गरीबोकी आवश्यकताकी पूर्तिपर जरा भी ध्यान नहीं देता जिसके पास पूँजी नहीं है। इस तरह उत्पादनका उद्देश्य हो जाता है विलासिताका सामान पैदा करना।

दूसरे देशोमें वह प्रचारकोद्वारा अपने मालकी खपतके लिए क्षेत्र तैयार करता है। प्रचारक मालका प्रचार न कर सभ्यताका प्रचार करते है। असभ्य देशोमे वह तौलिया, जूता, मोजा, कालर, नेकटाई, कोट, छुरी, तश्तरी और प्लेटका प्रयोग सिखाता है। गर्म देशोंके लिए इन वस्तुओंकी कभी

जरूरत नही पड़ सकती और इनके विना इन देशोका काम चल सकता है। लेकिन सभ्य बननेके लिए यदि वह 'असभ्य' इन चीजोका प्रयोग नही सीखता तो ये कारखानेदार अपने मालकी खपत किस तरह कर सकेंगे? इसलिए कहा यह जाता है प्रचारद्वारा असभ्य जातियोको सभ्य बनाकर उनकी रहन-सहनको सुसंस्कृत बनानेका यत्न किया जा रहा है। इन गरीब असभ्योके लिये जो माल तैयार किया जाता है वह देखनेमे लुभावना और आकर्षक होता है, दाम भी कम ही रहता है पर साथ ही वे टिकाऊ नहीं होते। इससे मालकी अधिकाधिक खपत होती है और कारोबार खूब चल निकलता है।

इस प्रकार उत्पादनका उद्देश्य हो जाता है आकर्षक पर साथ ही बेमतलबका माल तैयार करना और जनसाधारण इस तरहकी चीजोको खरीदनेके लिये पागल बना दिया जाता है।

(ग) प्राकृतिक साधनोंकी बर्बादी—अधिकाधिक नफा कमानेकी धुनमे वह देशके भविष्यकी परवा नही करता और उसके प्राकृतिक साधनोका हर तरहसे उपयोग करता है। उसे इस बातकी चिन्ता नही रहती कि इन साधनोकी भी सीमा है और इनकी समाप्तिपर देशकी क्या दशा होगी।

निजी लाभके अलावा पूँजीपतिका ध्यान अन्य किसी बातपर नही रहता। इसलिये व्यक्तिगत लाभके लिए जो उत्पादन किया जाता है उसे न तो आर्थिक दृष्टिसे उचित कहा जा सकता है और न योग्यता तथा निष्पत्तिका ही वहाँ प्रदर्शन होता है, जैसा कि ऊपर सैद्धान्तिक रूपसे बतलाया गया है। व्यावहारिक जगत्मे सारी बाते उसके एकदम विपरीत होती

है। इसमें बर्बादी बहुत ज्यादा होती है और पारस्परिक प्रति-स्पर्द्धाके कारण अनेक व्यक्ति एक ही वस्तुको पैदा करनेमें लग जाते हैं इससे समय और श्रमकी भी बहुत ज्यादा बर्बादी होती है क्योंकि जितने श्रम और समयमें दूसरा माल तैयार किया जाता है, उसका प्रयोग एक ही तरहके माल तैयार करनेमें होता है।

२—घूसखोरीका प्रचार

ऊपर कहा जा चुका है कि अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए पूँजीपति जायज, नाजायज सभी उपायोंसे काम लेता है। अपने लाभके लिए वह हर तरहके उपायोंसे काम लेनेमें जरा भी नहीं हिचकता। सद्भावना और सद्विचारसे उसे कोई मतलब नहीं क्योंकि व्यवसाय व्यवसाय ही है। व्यवसाय और सदाचारसे कोई खास सम्बन्ध नहीं। इसलिए घूसखोरीको वह मामूली बात समझता है। धोखा, विश्वासघात, घूसखोरीका प्रयोग वह धड़ल्लेसे करता है। अपना मतलब साधनेके लिए वह सरकारी अफसरोंको घूस देकर अनेक तरहकी सुविधाएँ प्राप्त करता है। आवश्यक धन खर्च कर वह अपने आदमियोंको ऊँचे सरकारी पदोंपर पहुँचाता है जो उसके लाभपर सदा ध्यान रखते हैं।

३—प्रचारके साधनोंपर कब्जा

जनसाधारणमें अपने मतलबकी बातोंका प्रचार करनेके लिए वह अखबारों, शिक्षण संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, रेडियो,

स्टेशनो तथा धार्मिक संस्थाओतकपर अधिकार जमा लेता है और इनके द्वारा अपना प्रचार करता है और दूसरे प्रकारका प्रचार नही होने देता। पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्थामे अधिकांश काम करनेवालोको बुद्धिके विकासका अवसर नही मिलता क्योकि सारा काम रोटीनकी तरह चलता रहता है जिसमे बुद्धिकी जरूरत नही पड़ती। इसलिए पूँजीवादी प्रथामे मजूरोकी बुद्धि कुंठित हो जाती है और वह पूँजीपतियोके प्रचारोका शिकार बन जाता है। कारखानेके मजूर ही नही, बल्कि अन्य क्षेत्रोमे काम करनेवाले भी पूँजीपतिके गुलाम बन जाते है क्योकि अपने रुपयोकी बदौलत पूँजीपति उन्हे खरीद लेता है और उसकी मर्जीके खिलाफ वे कुछ नही कर सकते। किसी तरहकी दलबन्दी हर जगह पाप समझा जाता है लेकिन बुद्धिकी इस प्रकार दलबन्दी सबसे बड़ा पाप है क्योकि यहाँ मनुष्य अपनी सबसे मूल्यवान् वस्तु खो देता है। किसी भी राष्ट्रके लिए यह सबसे बड़ा अभिशाप है।

(४) राष्ट्रोपर आर्थिक नियन्त्रण—ऊपर लिखा जा चुका है कि पूँजीपति कर्ज देकर अतुल धन कमाता है। बड़े राष्ट्रो और उसके शासकोको रुपया कर्ज देता है और उनसे अपनी इच्छाकी पूर्ति करवाता है और वैसा न करनेपर उन्हे धमकी देता है कि वह अपना रुपया वापस लेकर उनकी हालत खराब कर देगा। इस तरह वह अपने देशपर ही नही बल्कि उन विदेशी राष्ट्रोपर भी अपनी प्रभुता जमा लेता है जो उससे कर्ज लेकर उसके फन्देमे फँस जाते है। यह एक नये तरहका साम्राज्य है जिसपर रुपयेके बलपर वैसा ही जबर्दस्त अधिकार

रखा जाता है जितना अस्त्र-शस्त्रके बलपर और इस तरह समूचे देशको गुलाम बनाकर उसे अपने अधीन कर लिया जाता है और देशके सुचारु शासनकी लेशमात्र भी चिन्ता न कर सदा उसे लूटा ही जाता है। वर्तमान युद्धके परिणाम-स्वरूप यही प्रकट हो रहा है कि संसारके सारे देश अमेरिकाके हाथों बिक जायँगे।

(५) अस्त्र-शस्त्रपर अधिक व्यय—पूँजीपतियोंके धन कमानेके अनेक रास्ते है। वह अस्त्र-शस्त्र तैयार कराता है, जहाज बनवाता है, हवाई जहाजका निर्माण कराता है। अपने इन व्यवसायोंको चालू रखनेके लिए वह सदा इस प्रयत्नमें रहता है कि निरस्त्रीकरणकी समस्या कभी हल न होने पावे और राष्ट्रोंके झगड़े समझौतेसे न निपट सकें। बल्कि वह तो सदा इसी धुनमें रहता है कि अनवरत लड़ाइयाँ होती रहें जिससे नर-संहारके उसके साधनोंकी खपत होती रहे और वह मनमाना धन कमाता रहे। इसके लिए वह अपने तथा शत्रुके देशमें देशभक्तिका नारा बुलन्द करता रहता है ताकि इन राष्ट्रोंका अधिकाधिक धन, अस्त्र-शस्त्रों तथा जहाजोंके खरीद और निर्माणमे व्यय होता रहे। इस तरह ये पूँजीपति अपनी जेब सोनेसे भरते है और इस तरह उनकी जेब भरनेके लिए देशके लाखो नवयुवकोंकी जानें जाती है और देशकी बर्बादी होती है। इस तरह सर्वनाशी शस्त्रोंको बनानेमें देशकी सम्पत्ति और वैज्ञानिक ज्ञानका प्रयोग होता है। बड़े पैमानेपर उत्पादनका यही अन्तिम परिणाम होता है। इससे साफ़ है कि बड़े पैमानेपर उत्पादनसे जनताको हानिके सिवा लाभ नहीं हो सकता।

(६) अपनी रक्षाके लिए सार्वजनिक धनका प्रयोग—विदेशी बाजारोंमे व्यवसाय बढ़ जानेके कारण उसे उस समुद्री मार्गकी रक्षा आवश्यक हो जाती है जिधरसे उसके जहाज जाते है। इसके लिए वह सुदृढ़ समुद्री बेड़ेपर जोर देता है और विदेशोंमे अपने माल तथा सम्पत्तिकी रक्षाके लिए सुदृढ़ सेना और हवाई सेना कायम रखनेकी आवश्यकता बतलाता है। इतनी बड़ी सेनाओंका एकमात्र उद्देश्य पूँजीपतियोंके व्यवसायोंकी रक्षामात्र रहता है लेकिन उनका सारा व्यय सार्वजनिक कोषसे होता है। व्यावसायिक स्वार्थोंकी रक्षाके लिए प्रत्येक सरकारको इतनी उदारता दिखलानी पड़ती है। इस तरह पूँजीपति इस वृहत् सेनाकी सहायतासे विदेशी व्यापारसे ही लाभ नही उठाता बल्कि इनके लिए हर तरहके अस्त्र-शस्त्रका निर्माण कर वह अतुल धन-राशि बटोरता है। इस तरह वह दोहरा नफा कमाता है। सार्वजनिक व्ययसे वह अपने व्यवसायकी रक्षा करता है और अपनी ही रक्षाके लिए आवश्यक अस्त्र-शस्त्र मुहय्या कर धन कमाता है।

(७) राष्ट्रोंमे युद्ध कराता है—ऊपर लिखा गया है कि पूँजी-पतिको अपने व्यवसायके क्षेत्रके विस्तारके लिए तथा अपनी आव-श्यकता—कच्चा माल, तैयार मालके लिए बाजार, सस्ते मजूर तथा पूँजी लगानेके लिए सुरक्षित बाजार—की पूर्तिके लिए उन राष्ट्रोंके साथ संघर्ष करना पड़ता है जिन्होने उन विदेशी बाजारोंपर अपना सिक्का जमा लिया है। विदेशके सभी पिछड़े बाजारोंपर किसी-न-किसी राष्ट्रका अधिकार हो गया है। अपने व्यवसायके विस्तारके लिए यह स्थिति उसके लिए

वाञ्छनीय नहीं है। पूँजीवादी व्यवस्थाका ज्यों-ज्यों विस्तार होता जायगा त्यों-त्यों संसारपर अधिकार करनेका लोभ बढ़ता जायगा अर्थात् स्थल, जल तथा हवाई मार्गपर अधिकार करना आवश्यक हो जायगा। पूँजीवादी व्यवस्था इतनी ज्यादा उन्नति कर गयी है कि वह अपने ही देशोंमे सीमित नहीं रह सकती और यदि उसे इसी तरह फलने-फूलने दिया गया तो यह आवश्यक हो जायगा कि प्रतिद्वन्द्वी व्यवसायियोंको हटाकर संसारके व्यवसायपर एकाधिपत्य कायम किया जाय। इसका फल विश्वव्यापी युद्ध होगा। यदि युद्धोंके इतिहासका अध्ययन किया जाय तो प्रकट होगा कि लोलुप व्यवसायी अपने व्यवसायको कायम रखने तथा नये बाजारपर अधिकार जमानेके लिए ही युद्धको प्रोत्साहन देते है।

बड़े पैमानेपर उत्पादनका फल यह होता है कि आवश्यकतासे अधिक माल पैदा हो जाता है। अगर इस मालकी खपत विदेशी बाजारोंमे नहीं होती तो कारखानोंको जारी रखनेका एकमात्र उपाय युद्ध है। क्योंकि युद्ध ही ऐसा गर्त है जिसमे असंख्य माल ढकेला जा सकता है। यदि युद्ध नहीं जगाया जा सका तो पूँजीवादी देशोंके कारखानोंका उत्पादन विदेशी बाजारके अभावमे घट जायगा, पूँजीपतियोंका नफा कम हो जायगा और मजूरोंमे बेकारी बढ़ जायगी अथवा कारखाने एकदम बन्द हो जायँगे और हजारों मजूर बेकार हो जायँगे। पूँजीपतियोंके जो कारखाने अस्त्र-शस्त्रके सामान तैयार करनेमे लगे है उनकी सफलता तो एकमात्र युद्धपर ही निर्भर करती है। इसलिए ये पूँजीपति सदा युद्धको भड़काते रहते है।

इसका परिणाम यह होता है कि पूँजीवादी सभ्यतामे युद्धने नियमित व्यवस्थाका रूप धारण कर लिया है। एक विश्वव्यापी युद्धकी समाप्तिके साथ ही दूसरे खूँखार और संगीन विश्वव्यापी युद्धका बीजारोपण हो जाता है और जबतक पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्थाके अन्तर्गत युद्धकी इस भावनाका बीज कायम रहेगा तबतक संसारमे शान्ति की स्थापना नहीं हो सकेगी। इससे यह साफ प्रकट हो जाता है कि आधुनिक युद्धका एकमात्र कारण पूँजीवादी उत्पादन-व्यवस्था है। इन युद्धोको चालू रखनेके लिए प्रत्येक राष्ट्रको करोड़ो रुपया प्रति-दिन खर्च करना पड़ता है, असंख्य जान-मालकी हानि शत्रुओ-द्वारा की जाती है। युद्धोमे यह असंख्य व्यय, जल, थल तथा हवाई सेनाको सदा कायम रखनेका खर्च, युद्धमे मरे तथा आहत हुए व्यक्तियोके पेशनकी रकम, युद्धऋणपर सूद, इन सबका हिसाब लगाया जाय तो पता लगेगा कि पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्थामे देशको कितनी ज्यादा क्षति उठानी पड़ती है। ऊपर खर्चके जिन मदोका हवाला दिया गया है उनका हिसाब ले लेनेके बाद यदि उसमे वह रकम जोड़ दी जाय—जिसे कल कारखानदारोको मिलोमे काम करनेवाले मजूरोकी सुख-सुवि-धाके लिए करना चाहिये—जैसे, रहनेको खुलासा जगह, खेलनेके मैदान, सफाई, स्वास्थ्य खतरा बीमा बीमारी, प्रसवकी छुट्टी, बुढ़ौतीके लिए पेशन, बेकारीकी सहायता—तो प्रकट होगा कि बड़े पैमानेपर उत्पादन संसारका सबसे बड़ा खर्चीला और महँगा कारोबार है। यह देखनेमे इसलिए सस्ता प्रकट होता है क्योंकि इसमे होनेवाले व्ययका बहुत बड़ा अंश नाजायज

तरीकेपर सार्वजनिक कोषसे दिया जाता है। इस दृष्टिसे देखने-पर आगे जो लोग बड़े-बड़े उद्योगपति होनेका दम्भ भर रहे हैं उन्हें भावी सन्तति सबसे बड़ा मूर्ख समझेगी।

जब हम यह देखते हैं कि जनसाधारणके युद्धका जीवनपर क्या प्रभाव पड़ता है तब हमें साफ प्रकट होता है कि जनताको अपनी अनेक आवश्यकताओंको दबाकर रखना पड़ता है। युद्धके जमानेमे तो इन आवश्यकताओंको और भी ज्यादा दबाना पड़ता है। भोजनकी समस्या अत्यन्त विकट हो जाती है। युद्धमें रत राष्ट्र इस तरह नाकाबन्दी कर देते हैं कि लोगोको अन्न मिलना कठिन हो जाता है। भोजनके आवश्यक पदार्थ भी उचित मात्रामें नहीं मिलते और राशनके अनुसार जो कुछ मिलता है उतनेहीसे सन्तोष करना पड़ता है। अधीनस्थ देशों-की क्या हालत हो जाती है इसका सबसे ज्वलन्त नमूना भारत-वर्ष है। युद्धसे भारतका कोई सम्बन्ध नहीं रहा लेकिन ब्रिटेनके अधीन होनेके कारण अन्नके अभावमें केवल बंगालमे १९४३ मे चालीस लाखसे ज्यादा प्राणी मर गये और युद्धके वाद भी १९४६ मे भयकंर अकाल समस्त भारतको ग्रसनेकी तैयारीमे है। इसके अलावा लोगोसे जबर्दस्ती काम कराया जाता है, चाहे वे इसे पसन्द करें या न करे।

सबसे बुरी बात यह होती है कि मनुष्यकी पाशविक प्रवृ-त्तिको बेरोकटोक नंगा होकर नाचने दिया जाता है। बेईमानी, क्रूरता, स्वार्थ, जातिद्वेष और परस्पर अविश्वासकी प्रधानता हो जाती है, मनुष्य मनुष्यको खाने दौड़ता है और देशभक्तिके नामपर पलक झॅजते सैकड़ों गॉवो और उनमें रहनेवाले निरीह

नर-नारियो तथा अबोध बच्चोका संहार कर डालता है। इस तरहकी बर्बरताका असर अस्थायी नही होता। लोगोके हृदयमे इससे जो जख्म होता है उसमे नासूर पैदा हो जाता है और जल्दी भरने या सूखनेका नाम नही लेता। पूँजीवादी व्यावसायिक प्रथाके अन्दर मानवने जिस शैतानियतका रूप धारण किया है उससे प्रचीन युगका जंगली कही ज्यादा सभ्य था। किस आधारपर आजका मानव यह दावा पेश कर सकता है कि बड़े पैमानेपर उत्पादनको केन्द्रीभूत करनेसे परस्पर सम्बन्ध तथा दया या क्षमाके मापदण्डमे वृद्धि हुई है। जहाँतक इस पहलूका सम्बन्ध है, यही कहना पड़ता है कि इसने हमे पशुसे भी नीचे ढकेलकर गिरा दिया है।

इस तरह हमने प्रत्यक्ष देखा कि जहाँतक मानवताका सम्बन्ध है वर्तमान उद्योगीकरण पूँजीपति और मजूर दोनोको नीचे गिराता है और समाजमे जघन्य स्वार्थ, विद्वेष, घृणाका बीज बोता है जिसका अन्तिम परिणाम संघर्ष, युद्ध और सहार है।

२—उपयोग

वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्थामे अनेक दोषोके होते हुए भी एक लाभ तो प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि उपभोक्ताओको भोगकी अनेक वस्तुऍ उपलब्ध होती रहती है। अब हम यह देखना चाहते है कि यह दलील कहाँतक सही है।

आरम्भमे ही हम यह कह देना चाहते है कि उपभोगकी अनेक वस्तुओकी उपलब्धि पूँजीवादी प्रथाकी बरकत नही,

बल्कि बड़े पैमानेपर उद्योगीकरणकी, जो साम्यवाद तथा समाजवादमे भी यह सम्भव और साध्य है।

(१) उर्वर शक्तिके प्रयोगका अभाव—प्रत्येक मनुष्यका विकाश उसकी अन्तर्हित योग्यताके प्रयोगपर निर्भर करता है। अपनी योग्यताका हम जितना प्रयोग करेंगे उतना ही ज्यादा हमारा विकास होगा। प्रकृतिका नियम है कि शरीरके जिस अवयवका ठीक-ठीक प्रयोग नही होता रहेगा वह सूखकर मर जायगा। लेकिन पूँजीवादी व्यवस्थाके अन्दर व्यक्तिगत बुद्धिके प्रयोगकी गुंजायश प्रायः नहीके समान है क्योंकि उसे तो अधिक-से-अधिक मात्रामे कायदेके अनुसार तैयार मालसे ही अपनी पसन्दको सन्तुष्ट और तृप्त करना है। उसे तो उन्हीं सामग्रियोंमेसे चुनना है जो तैयार होकर सामने आती है।

(क) प्रस्तुत भोजन—बाजारमे भोजनके अनेक तरहके तैयार सामान डब्बोमें भरकर आते हैं। बड़े पैमानेपर इनका उत्पादन होता है। पश्चिमी देशोमे यदि यही सामान कच्चा माल खरीदकर पकाया जाने लगे तो बहुत महँगा पड़ता है। यह निश्चित है कि इन सड़े गले सामानोमे पोषणकी मात्रा बहुत कम रहती है। साथ ही अपनी पसन्दके दायरेको भी फैलाया नही जा सकता। बाजारमे तैयार जो सामान मिलता है उसीसे हमे सन्तोष करना पड़ता है अर्थात् खाने-पीनेके मामलेमे भी हमे अपनी पसन्दको पूरा करनेकी गुञ्जायश नहीं है। हमे दूसरोपर निर्भर रहना पड़ता है। चाहे पोषणकी मात्रा उनमे कितनी ही कम क्यो न हो, उनका प्रयोग हानिकर ही क्यो न सिद्ध हो, लेकिन उनका बाहरी रूप इतना ज्यादा आकर्षक होता है

कि मनुष्य उनका शिकार हो ही जाता है । चावलकी चिकनाहट, आटेकी बारीकी, दालकी सफाई, दूधका सत्त, चीनीकी सफेदी, सभी तो आकर्षक है। लेकिन इन पदार्थोंकी उपयोगिता किस हदतक नष्ट हो जाती है इसकी तरफ उन लोगोका जरा भी ध्यान नही रहता जो इनमे चमक-दमक लाकर पैसा कमाना चाहते है । खरीदार इनकी बाहरी तड़क-भड़कपर मुग्ध हो जाता है और इनका प्रयोग कर अपना धन और शरीर दोनो गॅवाता है ।

(ख) तैयार वस्त्र—कपड़ोकी भी यही हालत है । व्यक्तिगत उद्योगोको नष्टकर बड़े पैमानेपर उत्पादनकी व्यवस्थाका चलन हो रहा है । हजारोकी संख्यामे विविध तरहके तैयार मालसे बाजार पाट दिये जाते है। मशीनोद्वारा ही काटने और सीने-पिरोनेका सारा काम होनेके कारण ये सस्ता पड़ते है । इस तरह कपड़े यदि आप अपने इच्छानुसार बाजारमे बनवाना चाहे तो महॅगे पड़ेगे। इसलिए आपको विवश होकर तैयार मालके सामने ही झुकना पड़ता है और अपनी पसन्दको उन्हीके अनु-कूल बनाना पड़ता है। अपनी पसन्द और रुचिको व्यक्त करनेकी स्वतन्त्रताकी गुंजायश नही है। जो बाजारमे तैयार मिलता है उसे ही आपको स्वीकार करना पड़ता है ।

(ग) तैयार मकान—यही बात मकानोपर भी लागू है। अमेरिकामे यदि किसीको घर बनवाना होता है तो उसे हमारे देशकी तरह मजूर रखकर अपने इच्छानुसार मकानके प्रत्येक भागको नही बनवाना पड़ता। वह कारीगरको आदेश दे देता है। कारीगर बड़े-बड़े कारखानोसे तैयार हिस्सोको

खरीदकर बातकी बातमें घर खड़ा कर देता है। ये तैयार माल प्रायः एक ही नमूने और आकारके होते है। इसलिए व्यक्ति-विशेषको मकान बनवानेमें भी अपनी रुचि और इच्छाको व्यक्त करनेकी गुञ्जायश नहीं है।

इस तरह हम अपनी घरेलू इच्छाकी पूर्तिके लिए भी बड़े-बड़े उत्पादकोंकी रुचिका ही अनुसरण करते है, अपनी व्यक्तिगत रुचिको काममे लानेका अवसर नही मिलता। उपभोग यंत्रवत् चलने लगता है और विचार-शक्तिका लोप हो जाता है।

२—उपभोक्ताको आकृष्ट करनेके तरीके

इन वस्तुओंकी ओर उपभोक्ताओंको आकृष्ट करनेके लिए उत्पादक प्रायः दो उपायोंसे काम लेता है—(१) विज्ञापन (२) फैशन।

(क) विज्ञापन—कारोबारी अपने मालकी खपतके लिए प्रत्येक सम्भव उपायसे काम लेता है। रेडियो, पत्र-पत्रिका, इश्तेहार, पोस्टर, साइनबोर्ड, सिनेमा, नोटिस आदि सभी साधनोंसे जनताको मालकी तरफ आकृष्ट करनेका यत्न किया जाता है। हर पहलूसे खरीदारके दृष्टिकोणका अध्ययन किया जाता है। माल तैयार करनेसे लेकर पैकिंगतक इस आकर्षक ढङ्गसे किया जाता है कि उसके आकर्षणसे अपनेको बचाना कठिन हो जाता है। लोग जितनी चीजे खरीदते है, सभी आवश्यक नहीं होतीं, कुछ तो आकर्षक विज्ञापनके कारण खरीदी जाती है और कुछ अपने मोहक रंग-रूपके कारण।

(ख) फैशन—चीजोंको खरीदनेके लिये नये नये फैशन चलाये जाते हैं। मनुष्यकी प्रकृति है कि वह अपने अड़ोस-

पड़ोसके लोगोकी दृष्टिमे ऊँचा बनना चाहता है। इसलिए फैशनकी दृष्टिसे वह अनेक चीजे खरीदता है। नये तर्जके जूते, नये तर्जके कपड़े, नये तर्जके गहने, नये तर्जके टेबुल और कुर्सियाँ, नये तर्जके बर्तन बाजारोमे रोज रोज देखनेमे आते है। नित्य बदलते हुए फैशनोका फल यह होता है कि अच्छी और इस्तेमालके योग्य भी नयी चीजे हटा दी जाती है और उनकी जगहपर नये तर्जकी चीजें खरीदी जाती है। आज चम्मच एक शकलका है और कल दूसरे शकलका चलने लगता है। यदि आपको समाजमे रहना और सभ्यताकी घुड़दौड़मे शामिल होना है तो जेब खाली कीजिये और इस नये तर्जके चम्मचको खरीदकर लाइये। यही बात सभी वस्तुओके लिये लागू है।

इसे सिवा फजूल खर्चीके और क्या कह सकते है। लेकिन जबतक लोग अपनी जेब खाली करके पूँजीपतियोकी जेब भरते रहेगे, तबतक इसका प्रचार बढ़ता रहेगा। एक ही चम्मच-से सब कुछ खाया और पिया जा सकता है तब प्रत्येक वस्तुके खाने पीनेके लिये भिन्न भिन्न तरहके चम्मच बनानेमें समय, धन और वस्तुका क्षय क्यो किया जाता है? इस प्रयासमे केवल राष्ट्रीय सम्पत्तिका ह्रास या विनाश ही नहीं होता बल्कि गृहिणीका काम बहुत ज्यादा बढ़ जाता है। इतने ज्यादा बर्तनोको साफ कर रखना तथा सम्हालना पड़ता है। लेकिन फैशनका यही तकाजा है कि प्रत्येक वस्तुके खाने पीनेके लिये अलग अलग चम्मच होना चाहिये। यदि यह न हो तो व्यवसायकी बढ़ती कैसे हो? इससे यह नहीं समझना चाहिये कि केवल चम्मच-की ही भरमार होती है बल्कि इसके साथ ही भोजनके सभी

बर्तनो, कपड़ों तथा अन्य सामग्रियोंमें भी वृद्धि होती है। जो लोग इसके चक्करमें नही पड़ते वे तो इस बातको भली भॉति समझ लेते है कि वह पूँजीपतियोका मायाजाल है, लेकिन जहॉ कोई एक बार भी उस फन्देमें फॅसा कि उसका छुटकारा नही हो सकता।

३—केन्द्रित बिक्री

(क) बडी दूकाने—अप्राकृतिक ढंगसे आवश्यकता पैदा करनेके बाद उनकी पूर्तिके लिए बड़ी बड़ी दूकानें खोली जाती है जिनमें सभी उपलब्ध सामग्रियोका संग्रह रहता है। इन दूकानोको छोटा बाजार ही समझना चाहिये। इस तरहकी दूकान और बाजारमे केवल मात्र इतना ही अन्तर रहता है कि बाजारमे अनेक दूकानदार रहते है और यह दूकान किसी एक व्यापारीकी होती है जो इतने दूकानदारोका नफा हड़पकर कम्पनीके हिस्सेदारोकी जेब भरता है।

(ख) दूकनोका तॉता—इस तरहकी बड़ी दूकानोके अलावा एक नये तरहकी दूकानदारी होने लगी है जिसे दूका-नोका तॉता कह सकते हैं। यहॉ केन्द्रीकरण एक कदम और बढ़ा हुआ है। इसका उदाहरण न्यूयार्ककी वूलवर्थस् कम्पनी है। इस कम्पनीकी हजारो शाखाएॅ भिन्न भिन्न शहरो या देशोमे है। एक ही शहरमें भी अनेक शाखाएॅ है। विस्तृत पैमानेपर माल तैयार किया जाता है और इन दूकानोमे विक्रीके लिए भेज दिया जाता है। इस उपायसे कुछ चुने हुए लोगोंके हाथमे केवल उत्पादन ही नही आ जाता बल्कि लाभका सारा हिस्सा

इन्हे ही मिलता है। यह कहना कठिन है कि इस तरहके एकाधिपत्यका कहाँ अन्त होगा लेकिन प्रवृत्ति यही हो रही है कि छोटे छोटे कारखानदारो और उत्पादकोका अन्त कर सारा लाभ हड़प लिया जाय।

४—जनसाधारणकी गुलामी

इस तरहके साधनोका उपयोग कर पूँजीपति अपने भिन्न-भिन्न मालोकी खूब खपत करता है। जनसाधारण आकर्षणके प्रलोभनमें फॅस जाते है और अपनी औक़ातके ऊपर सामान खरीदने लगते है। उनकी रहन-सहनका मापदण्ड बढ़ जाता है, विलासिता आवश्यकताका स्थान ग्रहण करती है और उसकी पूर्तिके लिए वह जी-तोड़ परिश्रम आरम्भ करता है। इस उपायसे भी पूँजीपतियोको दोहरा नफा होने लगता है। अधिक परिश्रम और अधिक समयतक काम करनेसे अधिक माल तैयार होता है और मजूर जो अधिक मजूरी इस तरह कमाता है उससे पूँजीपतिका माल खरीदता है। इसके साथ ही विलासिताका गुलाम बन जानेके बाद वह जल्दो नौकरी छोडनेके लिए तैयार नही हो सकता और न हड़ताल आदिके चक्करमे पड़कर अपने अधिकारोके लिए लड़नेका उसे साहस होता है। आवश्यकताओके बढ़ जानेके कारण उसकी स्वतन्त्र प्रवृत्तिका अपहरण हो जाता है और वह अपने मालिकका गुलाम बन जाता है। यही कारण है कि भारत-सरकारके मोटे वेतन भोगी भारतीय कर्मचारी आजादीकी लडाईमे देशका कभी साथ नही देते। उनकी रहन-सहनका मापदण्ड बहुत ऊँचा हो गया है और यदि प्रत्येक मास

सरकारी खजानेसे चाँदीके सिक्कोंकी गठरी उनके घर न आया करे तो उनके परिवारकी क्या हालत होगी ? इसलिए जब रहन-सहनके मापदण्डको ऊँचा करनेकी पुकार स्वार्थी उद्योगपतियो अथवा उद्योग-प्रधान देशोकी ओरसे हो तो हमारे कान खड़े हो जाने चाहिये। सादगी, स्वतन्त्रता और आत्म-सम्मानकी जिन्दगीका कोई मुकाबला नही कर सकता। मनुष्यको केवल अपनी अवस्थासे सन्तोष होना चाहिये। जिस व्यक्तिकी आवश्यकताएँ सीमित हैं और जो उन्हे अपने पुरुषार्थसे पूरा कर सकता है उसका मस्तक सदा ऊँचा रहेगा। वह न तो किसीका गुलाम बन सकता है और न किसीके सामने अपना सिर नीचा कर सकता है। लेकिन जिसने अपनी रहन-सहनको बहुत ऊँचा कर लिया है उसमे इस तरहकी सामर्थ्य नही है। अपनी विलासिताको वह ज्यो-ज्यों बढ़ाता जायगा त्यों-त्यो उसकी विचार-स्वतन्त्रता और कार्य-स्वतन्त्रताका ह्रास होता जायगा। सामानो और वस्तुओके ढेरसे लाभ ही क्या यदि उन्हें बटोरनेमें मनुष्य अपने शरीर और आत्माको बन्धनमे डाल देता है। पूँजीवादी उद्योगी देशोके निवासियोकी रहन-सहन बहुत ऊँची अवश्य है लेकिन उसे कायम रखनेके लिए वे अपनी आजादीको अधिकाधिक पूँजीपतियोके हाथ बेचते रहते है।

५—विनोदकी अधोगति

जिस तरह विस्तृत उद्योगोमें उत्पादन जनसाधारणके हाथसे निकल जाता है और वे उपभोगके लिए उद्योगपतियोके आश्रित हो जाते है उसी तरह पूँजीवादी व्यवस्थामें उनके विनोदके साधन

भी दूसरोंके आश्रित हो जाते है और व्यक्ति-विशेषकी आकांक्षा-की वस्तु वे नही रह जाते। कहनेके लिए तो कह दिया जाता है कि उत्पादनको केन्द्रित करनेसे मजूरोको पर्याप्त समय मिल जायगा और यदि उनका काम इस ढर्रेका हुआ कि उन्हे अपने मस्तिष्कके विकासका वहाँ अवसर नही मिला तो वह अपने फालतू समयमे यदि चाहे तो अध्ययन आदिसे अपना विकास कर सकता है। लेकिन यह "यदि" ही सारी खुराफातोकी जड़ है। जिस व्यक्तिको अपने पेशेमे पर्याप्त शारीरिक और मानसिक खूराक नही मिल सकती वह व्यक्ति अपने फालतू समयको साहित्य और कलाके अध्ययनमे कभी भी नही लगा सकता। शक्तिका विकास कामसे ही होता है। यदि वह ऐसे काममे लगा है जो यान्त्रिक है और वहाँ उसे मस्तिष्कके विकासका साधन नही मिलता तो यह असम्भव है कि वह घरपर उनके विकासके लिए श्रम उठावेगा। इस तरहके लोगोका फालतू समय बड़े-बड़े शहरोकी सड़कोपर चक्कर लगाने, दूकानोकी सजावट देखने, सैर सपाटा करने, सिनेमा थेटर देखने या जासूसी उपन्यासो और कहानियोके पढ़नेमे ही बर्बाद होता है। इतना ही नही इस तरहके लोग नशाखोरी, जुआ, अड्डेबाजी आदिके शिकार हो जाते है। जीवनके जिस अप्राकृतिक वातावरणमे उसे रहना पड़ता है वह उसके मनकी स्थितिको ही विकृत कर देता है।

प्रायः यही देखा जाता है कि बड़े-बड़े कारखानोमे काम करनेवाले मजदूरोका मानसिक विकास तो लेशमात्र भी नही होता, उलटे औसत दर्जेके व्यक्तिसे भी उनकी हालत गिरी

रहती है। लियोनार्ड उल्फने लिखा है— "प्रत्येक व्यक्ति एक ही तरहके स्कूलोंमें जाता है, एक ही तरहकी शिक्षा प्राप्त करता है, एक ही तरहका कपड़ा पहनता है, एक ही तरहकी किताबें पढ़ता है, बाजारोंमें हम जो चीजें खरीदते है वे बड़े-बड़े कारखानोंकी बनी प्रायः एकसी रहती हैं, अखबारोंमें भी हमें एक ही तरहके विचार मिलते है। इस तरहका समत्व लानेकी जो भावना बलवती होती जा रही है उसपर हमलोगोंको गौरसे विचार करना चाहिये। हमे तो डिमाक्रेसीका यह सबसे बड़ा अभिशाप प्रतीत हो रहा है, क्योंकि यह व्यक्तित्वका विनाश कर लोगोंको भेड़-बकरियोंकी भाँति एक दूसरेके अनुकरणकी सीख देता है और अपनी इच्छा-शक्तिके प्रयोगका अवसर नही देता। * इससे केवल इतना हुआ है कि उत्पादनमें तीव्रता आ गयी है, बढ़िया-से-बढ़िया यन्त्र बनने लगे है, सम्पत्तिकी वृद्धि हुई है, और विविध प्रकारके सामान तैयार होने लगे है। लेकिन इसका मूल्य कितना महँगा चुकाना पड़ा है? इनका सबसे बड़ा अभिशाप यह हुआ है कि वैयक्तिक विचारोंकी प्रगति रुक गयी है, मनुष्यका पतन हो गया है, दासता और दूसरोंपर निर्भर रहनेकी आदत पड़ गयी है। कहनेका मतलब यह कि जिन उपायोंसे व्यक्ति पूर्ण मानव बन सकता है वे मुर्दा कर दी गयी है।

४—पूँजीवादका अन्त

जो व्यवस्था मानव जातिका इतना अधिक अनुपकार और सर्वनाश कर सकती है वह कभी भी टिकाऊ नहीं हो सकती।

---

* दी मार्डन स्टेट पृ० ६२—६३—१९३३ का सस्करण

केवल उपर्युक्त-कारणोसे ही पूँजीवादका अन्त अनिवार्य नही है, बल्कि इसके बीचमे भीषण विरोधाभासका बीज है। हमने ऊपर यह दिखलानेका यत्न किया है कि पूँजीवादका विस्तार शैतानकी अँतड़ीके समान है और वह तबतक अपना पंख फैलाता जायगा जबतक वह सब कुछ हड़प नही लेगा। इस क्रियाको सम्पन्न करनेमे यह आवश्यक है कि मजूरी कम देनेकी नीयतसे वह मजूरोकी संख्या घटाता रहे और यन्त्रोसे अधिकाधिक काम ले। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि पूँजीपतिके लाभका अंश जितना ज्यादा बढ़ता जायगा जनसाधारणकी खरीदनेकी क्षमता उसी मात्रामे घटती जायगी। जिस दिन उपभोक्ताके पास वस्तु खरीदनेका साधन नही रह जायगा उसी दिन पूँजीवादी प्रथाका अन्त हो जायगा। इस तरह यह स्पष्ट है कि अपनी बरकतोसे ही पूँजीवादी प्रथा अपना सर्वनाश करेगी।

इसके साथ ही अन्याय और लूट-खसोट अधिक दिनतक बेरोक-टोक नही चल सकता। किसी-न-किसी दिन वह समय जरूर आयेगा जब शोषित और लूटे गये लोग उठ खड़े होगे और इस सर्वग्रासी प्रथाका अन्त कर देगे। यदि इसमे कुछ विलम्ब भी हुआ तो ईर्ष्या-द्वेश और प्रतिस्पर्धाके बवण्डरमे पड़कर पूँजीवादी देश अपना सर्वनाश आप ही करनेपर तुले है। यह प्रथा हिसापर आश्रित है, इसलिए यह अरक्षित है। इसकी विरोधी शक्तियाँ इससे भी ज्यादा हिसाका प्रयोग करनेके लिए जिस दिन संघटित हो जायँगी उसी दिन इसका अन्त हो जायगा।

यदि विस्तृत पैमानेपर उत्पादनको कायम रहना है और उसे

जनसाधारणके लिए उपयोगी सिद्ध होना है तो उसे अपना मार्ग बदलना पड़ेगा और नफाका बँटवारा उसे इस तरह करना होगा ताकि सभी काम करनेवालोंको अपने श्रम और योग्यताके अनुसार हिस्सा मिले। समाजवाद इसी उपायसे इस समस्याको हल करना चाहता है। इसपर विचार करनेके पहले हम पूँजी-वादके उस पहलूपर भी प्रकाश डालना चाहते है जिसके अनुसार वह राष्ट्रीयताका आश्रय लेकर अपनी गतिको बढ़ाना चाहता है। यह दो तरहसे सम्भव है :—(१) राष्ट्रको डिमाक्रेसीके आवरणसे र पहले अपने देशमें लूटपाट मचाया जाय और उसके बाद दुर्बल देशोंको लूटनेके लिए हाथ-पैर फैलाया जाय। साम्राज्यवादी डिमाक्रेसीने यही रास्ता ग्रहण किया है। (२) जनताके विरोधको राष्ट्रकी शक्तिके प्रयोगसे दबानेका यत्न करना। इस मार्गका आश्रय नाजीवाद और फासिस्टवादने ग्रहण किया था।

दूसरा अध्याय

साम्राज्यवादी लोकतन्त्र, फासिस्टवाद तथा नाजीवाद

१—साम्राज्यवादी लोकतन्त्र

यह स्वाभाविक है कि जिन लोगोको पूँजीवादी व्यवस्थासे लाखो कमाने और जमा करनेका अवसर मिला है वे लोग सहजमें इस प्रथाका निर्मूल नही होने देगे। वे तो उससे चिपके रहेगे ही। समाजवादके आचार्य कार्ल मार्क्सने लिखा था कि पूँजीवादी उद्योगोके पूर्ण विकासके बाद समाजवादका जन्म होगा जो उसका स्थान ग्रहण करेगा। लेकिन यह सही नही उतरा। पूँजीवादी उद्योग-प्रधान देश ज्यो-के-त्यो रह गये और उद्योगमे पिछडा देश रूस साम्यवादी बन गया। रूसमे पूँजी-वादका जाल उतना घना नहीं हो पाया था और उसे आसानीसे तोड-फोड़ डाला गया। लेकिन अमेरिका, इङ्गलैण्ड तथा जर्मनी आदि देशोसे पूँजीवादी उद्योगको उखाड़ फेंकना सहज नही होगा। इसने वहाँ अपनी जड़ जमा ली है, चाल चलनेमे दक्ष हो गया है इसलिए विरोधका दमन करनेमें वह राष्ट्रकी सारी शक्तिको विविध प्रकारसे लगानेमे जल्दी नहीं चूकेगा।

(क) लोकतन्त्र

ब्रिटेन और अमेरिकाके पूँजीपति लोकतान्त्रिक होनेका दावा करते हैं और यह प्रकट करना चाहते है कि इन देशोका शासन

जनसाधारणके इच्छानुसार होता है। लेकिन यदि वास्तवमें देखा जाय तो लोकतन्त्रकी आड़में चन्द पूँजीवादी राष्ट्रकी शक्तिका उपयोग अपने स्वार्थ-साधनके लिए ही करते है। देखनेमें तो यही प्रतीत होता है कि इन देशोंमे पूँजीवादपर राष्ट्रका पूर्ण नियन्त्रण है, क्योंकि पूँजीके सञ्चालनके लिए राष्ट्रकी ओरसे अनेक विधान और नियम बने हैं, जिनके अनुसार ही कल-कारखानोंको चलाना पड़ता है, जैसे मजूरोसे सप्ताहमें कितने घण्टे काम लेना हागा, दुर्घटनाका शिकार होनेसे उसकी किस-प्रकार रक्षा की जायगी, बीमा वगैरह। मजूरीके लिए भी कानून बन गये हैं और पूँजीपतियोंकी कृपापर इसे नहीं छोड़ा गया है। पूँजीपति और मजूरोके बीच कलह हो जानेपर राष्ट्र हस्तक्षेप करता है। बच्चोंको कामपर लगानेके लिए अलग कानून है। पहले इस तरहकी बहुधा शिकायत सुननेमें आती थी कि उत्पादनकी कोई व्यवस्थित योजना नही है। अब वह भी शिकायत दूर कर दी गयी; क्योंकि अब राष्ट्रकी ओरसे कमीशन बैठने लगा है जो अगले दो-तीन वर्षोंके लिए माल तैयार करनेके लिए एक नियत योजना बना देता है। राष्ट्र ऐसे उद्योगोंको रोकनेका यत्न करता है जिनकी देशको आवश्यकता नहीं है और ऐसे उत्पादनोंको अनेक उपायोंसे प्रोत्साहन देता हे जो देशके लिए आवश्यक हैं। राष्ट्रपति रूजवेल्टने अपने राष्ट्रपतित्वके अन्तिम वर्षोंमे अमेरिकाके औद्योगिक जीवनके नियन्त्रणका बहुत उत्तम उद्योग किया था। उनके इस प्रयत्नका ही फल था कि अमेरिकाका व्यवसाय जिन्दा रह सका अन्यथा उसका दम घुट रहा था। आज युद्धके कारण अनेक उद्योग जैसे, कोयला

तेल, लोहा, फौलाद, जहाज-निर्माण, हवाई जहाजका निर्माण तथा अस्त्र-शस्त्रका कारोबार सिर्फ राजके नियन्त्रणमे है। इसके साथ ही वर्तमान युगमे अमेरिका और इङ्गलैण्ड दोनो देशोमे प्रवृत्ति यह हो रही है कि व्यवसायको धीरे धीरे व्यक्ति-विशेषके हाथसे निकालकर वैतनिक कर्मचारियोद्वारा चलाया जा रहा है, जैसे, समाजवादमे होता है। उदाहरणके लिए बस चलाने या बिजली आदिका कारोबार जो पहले व्यक्ति-विशेषके हाथमे था, अब म्युनिसिपैलिटी और कारपोरेशनके हाथमे आ गया है। इन सब उदाहरणोको पेश करके यह कहा जाता है कि पूँजीवाद धीरे धीरे समाजवादकी तरफ अग्रसर हो रहा है अथवा पूँजीपतियोके हाथमें अनियन्त्रित रूपसे न रहकर जनताके कल्याणके लिए राजके नियन्त्रणमे आता जा रहा है।

राज भी अब धीरे-धीरे पूँजीपतियोद्वारा सञ्चित धनपर धावा बोलने लगा है। आमदनीपर कर लगाता है और किसी पूँजीपतिके मर जानेके बाद उसके उत्तराधिकारियोपर मृत्यु-कर लगाता है और गहरी रकम वसूल कर लेता है। इस रकमका उपयोग अनेक तरहके सार्वजनिक कामोमे होता है, जैसे, सफाई, स्वास्थ्य, सड़क, शिक्षा, अनुशीलन वगैरह। इस उपायसे पूँजीपतियोकी सञ्चित पूँजीसे कुछ अंश लेकर उस असमान बँटवारेकी क्षतिपूर्तिके लिए यत्न किया जाता है जो पूँजीवादकी देन है।

कुछ लोगोकी धारणा है कि राजके इस प्रकारके हस्तक्षेपसे धीरे-धीरे पूँजीवादकी बुराइयाँ दूर हो जायँगी और औद्योगिक विकाससे जो लाभ देशको होगा उसका समान रूपसे सब

उपभोग करने लगेगे । अमेरिका और इङ्गलैण्डमे यह और भी सम्भव है क्योकि इन देशोमे पूँजीपतियोकी अकड़ तोड़नेके लिए राजकीय यन्त्रोका प्रयोग हो सकता है और इस तरह जनताका कल्याण किया जा सकता है ।

सिद्धान्ततः तो यह बहुत अच्छा है, लेकिन अभी जन-साधारणकी अपेक्षा पूँजीपति कहीं ज्यादा शक्ति-सम्पन्न है । किसी-किसी मामलेमे वह राज-शक्तिके सामने झुक अवश्य जाता है लेकिन जैसा आगे दिखलाया जायगा, राजकी शक्तियोका अपने लाभके लिये अधिक उपयोग करनेके उद्देश्यसे ही वह झुकता है । इन देशोका लोकतन्त्र तो एक आवरणमात्र है जिसकी आड़मे पूँजीपति देशकी जनताको मनमाना लूटता है । अपनी पुस्तक 'एपुल्‌कार्ट'की भूमिकामें श्रीबर्नर्डशाने ब्रिटिश डिमाक्रेसीका बहुत सुन्दर वर्णन किया है । ब्रिटिश डिमाक्रेसी-का अध्ययन करनेके लिये आप कल्पना कीजिये कि वह एक बहुत बड़ा गुब्बारा है जिसमे गैस अथवा गर्म हवा भरकर ऊपरकी तरफ इस उद्देश्यसे उड़ा दिया जाता है कि आप ऊपरकी तरफ इसकी उड़ान देखनेमे उलझे रहें और इधर लोग आपकी जेब काट ले। जब प्रत्येक पाँच सालके बाद यह गुब्बारा जमीनपर उतरता है, तब आपको उसके पासतक चलनेके लिये निमंत्रण दिया जाता है कि यदि आपमें सामर्थ्य है तो उसमे बैठे हुए लोगोमेसे किसीको हटाकर आप स्वयं बैठनेकी चेष्टा कीजिये । लेकिन न तो आपके पास समय है और न साधन, साथ ही आप है ४ करोड़ और गुब्बारेमे बैठनेकी जगह है केवल ६०० की, इसलिए गुब्बारा प्रायः उन्हीं पुराने आदमियोंको

जनता फासिस्ट शक्तियोंकी सैनिक चढ़ाईका मुकावला करनेके लिए तैयार थी लेकिन वहाँ इन पूँजीपतियोंने ब्रिटिश सरकारका हाथ रोक दिया और १६३६ मे जब उन्होने यह देखा कि फासिस्ट शक्तियाँ उनकी साम्राज्य-नीतिके लिए घातक सिद्ध होने जा रही है, तब उन्होंने उनका मुकाबला किया ।

पूँजीपतियोंकी इस दुर्धर्ष ताकतके सामने मतदाताओंका विरोध अरण्य रोदनके समान है। पूँजीपति उस आवाजके सामने तभी झुकता है जब वह देखता है कि अपने स्वार्थोंकी रक्षाके लिए वैसा करना नितान्त आवश्यक है। अन्यथा उनकी पुकारकी अवज्ञाकर अपनी इच्छाके अनुसार चलने और अनेक तरहकी वहानेबाजीद्वारा जनताको यह दिखलानेमे कि वह उनके कल्याणके लिए ही वैसा कर रहा है, वह कभी नही चूकता। कामन्स सभाके ६ सदस्य (ब्रिटिश-कैबिनेट) गर्मागर्म बहस करेंगे, लम्बी-लम्बी बातें करेंगे, जनताका ध्यान आकृष्ट करेंगे लेकिन पर्देकी आड़मे वह अपनी लूट-खसोटकी नीति ही चालू रखेंगे ।

इन सब बातोंका प्रत्यक्ष अनुभव हमलोगोंको है जो ब्रिटिश डिमाक्रेसीकी प्रजा है और साथ ही ब्रिटिश नीतिके शिकार है। सिद्धान्ततः भारत सरकारकी नीतिकी सारी जिम्मेदारी ब्रिटिश जनतापर है। लेकिन व्यवहारमें ब्रिटिश साम्राज्यकी ४ करोड़ जनता भारतके सम्बन्धमे वास्तवमे कुछ नही जानती और भारतके शासनमे उनका कोई हाथ नहीं है। इतना ही नहीं, कामन्स सभाके ६ सौ सदस्य भी भारतके सम्बन्धमे कुछ नही जानते । भारत-सम्बन्धी समाचारोंको सेसरद्वारा दबा दिया जाता है औ ब्रिटेनकी जनता भारतके सम्बन्धमे केवल उतना ही

जानने पाती है जितना भारतमंत्रीके दफ्तरसे मालूम हो सकता है। भारतमंत्रीका दफ्तर उतना ही समाचार भारतके सम्बन्धमें प्रकट होने देता है जितना प्रकट करना वह ब्रिटिश पूँजीपतियोंके कल्याणके लिए आवश्यक समझता है।' ऐसी हालतमे क्या यह कहना उपहासास्पद नहीं है कि भारतके शासनकी सारी जिम्मेदारी उस ४ करोड़ ब्रिटिश जनतापर है जिसे भारतके बारेमे पूरा समाचारतक नही मिलता। क्या ऐसी हालतमे यह कहना अनुचित होगा कि डिमाक्रेसीके इस देशमे भी डिमाक्रेसी केवल दिखावामात्र है। कहनेके लिए तो यही कहा जा सकता है कि भारतके शासनके लिए ब्रिटिश जनता पूर्ण जिम्मेदार है लेकिन वास्तविकता यह है कि ब्रिटिश जनताको धोखा देकर वहाँके पूँजीपति भारतपर शासन करते है। भारतकी समस्यामे दिल-चस्पी रखनेवाली ब्रिटिश जनता गला फाड़कर भले ही चिल्लाती रहे कि भारतमे शीघ्र उत्तरदायी शासन स्थापित कर देना चाहिये लेकिन जबतक ब्रिटिश पूँजीपति यह नही चाहेंगे तबतक उनका शोरगुल मचाना अरण्य-रोदनके समान है। अनेक तरहकी बहानेबाजी निकालकर यह दिखलाया जायगा कि भारतके चन्द राजनीतिज्ञोंकी चिल्लाहटपर भारतको आजाद कर देना भारतके स्वार्थके लिए हानिकर है और ब्रिटिश जनताके मतकी अवज्ञा-कर इस प्रकार ब्रिटिश पूँजीपति भारतपर अपना अक्षुण्ण अधिकार कायम रखेंगे।

(ख)—साम्राज्यवाद :—

अपने देशकी जनताको लूटनेसे सन्तुष्ट न होकर पूँजीपति कमजोर देशोंपर भी अपना प्रभुत्व इस प्रकार जमाते हैं और

यह कहकर अपना शासन कायम रखते हैं कि जबतक उनमें अपने देशपर शासन करनेकी क्षमता प्राप्त नही हो जाती तबतक उनपर शासन करना उनलोगोका धार्मिक कर्तव्य है। इस तरह-की सदाशयताकी आड़मे अपनी स्वार्थमूलक प्रवृत्तियोको छिपाकर वह अपने स्वार्थ साधनके लिए उस देशके शासनको चलाता है। इसे और स्पष्ट करनेके लिए हिन्दुस्तानकी दशासे ही अनेक अवतरण दिये जा सकते है :—

(१) गैर ब्रिटिश मालका भारतमे आना रोकनेके लिए उन मालोपर बहुत अधिक आयात-कर या चुंगी बैठा दी गयी है, यद्यपि भारतवासियोके लिए ब्रिटिश या अन्य देशोका माल आना एक ही बात है। ब्रिटिश मालपर कम चुङ्गी लगानेका तो यही मतलब हुआ कि भारतमे कायम ब्रिटिश उद्योगपतियोको आर्थिक सहायता इसलिए दी जा रही है कि वे अन्य देशोके उद्योगपतियोका सफलताके साथ मुकाबला कर सकें।

(२) चुङ्गीके बोझसे बचनेके लिए, अपनी फाजिल पूँजीको उत्पादनके काममे लगानेके लिए तथा भारतके सस्ते मजूरोंसे लाभ उठानेके लिए ब्रिटिश पूँजीपति भारतमें कारखाने खोलने लग गये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि अपने साधनोकी बहुलताके कारण वे भारतीय उद्योगपतियोको निर्दयताके साथ मटियामेट कर रहे हैं। अपनी कम्पनियोके साथ 'भारत' शब्द जोड़कर या अपने मालपर 'भारतमे बना' शब्द जोड़कर वे स्वदेशीकी भावनापर कुठाराघात कर रहे हैं और उनके कल्याणकी कामनासे भारत सरकार इस बातकी छानबीन करना आवश्यक नहीं समझती कि इन कम्पनियोमें किसकी पूँजी लगी

है और भारतीय पूँजीसे चालू कम्पनियोंकी भाँति इन्हें भी वही संरक्षण प्रदान करती है। इस तरह विदेशी उद्योगपतियोंके स्वार्थोंकी रक्षा कर वह भारतीय उद्योगका सर्वनाश ही नहीं कर रही है बल्कि इस दिशामें उसने एक कदम और बढ़ा दिया है। भारतीय शासन-विधानमे उसने इनके संरक्षणकी भी व्यवस्था कर दी है। विदेशी कम्पनियोके प्रति इस तरहका उदार-भाव संसारके किसी भी देशमें देखनेमें नहीं आता।

इन कम्पनियोके बारेमें यह भी नहीं कहा जा सकता कि ये लोग भारतीय मजूरोसे काम लेते है और भारतका ही कच्चा माल काममे लाते है इसलिए इनसे देशको ही फायदा है। भारतीय मजूरोको जितना वेतन इनसे मिलता है उसकी अपेक्षा बहुत अधिक नफेकी रकम ये अपने देशको भेजते हैं। प्रथम विश्व युद्धके बादके वर्षोंमे केवल पाटकी मिलोसे मजूरीका आठ गुना लाभ इन्हें प्राप्त हुआ था, प्रत्येक १२ पौंडके लिए जो इन्होंने भारतीय मजूरोको वेतनके रूपमें दिया था इन कम्पनियोंने १०० पौंड स्काटलैंडके अपने फी हिस्सेदारको दिया था। इसका सबसे भयंकर परिणाम यह हो रहा है कि इन हरकतोसे ब्रिटिश पूँजीपतियोका भारतके लिए प्रेम और अनुराग इतना ज्यादा बढ़ता जा रहा है कि वह इसपरसे अपना प्रभुत्व हटानेके लिए तैयार नही हैं।

(३) ये उद्योगपति अपने व्ययसे प्रयोगशालाएँ स्थापित कर सकते है, तो भी सरकारी व्ययसे कृषि विद्यालय तथा प्रयोग-शालाएँ खोली जाती हैं जिनसे इन उद्योगोको सहायता मिलती है और किसानोकी खेतीकी दशा सुधारनेके लिए कोई भी

यत्न नही किया जाता । उसके लिए सरकारी फण्डमे रुपये नही है । इतना ही नही इन प्रयोगशालाओसे यदि किसानोकी हानि भी होती हो तो कोई परवा नही की जाती यदि इससे उद्योग-पतियोका लाभ होता हो । उदाहरणके लिए कृषिकालेजोमे लम्बे रेशेवाली रुईके उत्पादनके लिए अनुसन्धान किया जाता है क्योकि मिलवाले इसे चाहते है चाहे इस तरहके कपासका उत्पादन किसानोके लिए लाभकर भले ही न हो क्योंकि छोटे रेशेवाली रुईकी अपेक्षा लम्बे रेशेवाली रुईके उत्पादनमे समय ज्यादा लगता है और पैदावार कम होती है । इसकी पैदावारमें अधिक समय लगनेका फल यह होता है कि इसके लिए मजूरी ज्यादा खर्च करनी पडती है और साथ ही भारतके जलवायुके यह अनुकूल नही है क्योकि ज्यादा दिनतक खेतोमे रहनेके कारण वर्षा तथा कीड़ोसे हानिका इसमे खतरा ज्यादा रहता है । इसके साथ ही इस तरहकी रुईकी खपतके लिए उसे अन्तर्राष्ट्रीय बाजारपर निर्भर करना पड़ता है जिसके बारेमे वह कुछ नहीं जानता तथा जो उसकी पहुँचके बाहर है । इतना ही नहीं भारत सरकार व्यवसायके काममे आनेवाली वस्तुओके सुधारमें जितनी रुचि रखती है उतनी दिलचस्पी खाद्य वस्तुओके सुधारमे नही लेती । इसका परिणाम यह हुआ है कि व्यवसायके काममें आनेवाली वस्तुओका उत्पादन बढ़ता गया है और खाद्यसामग्री-के उत्पादनमे कमी आती गयी है । उदाहरणके लिए जहाँ कपास, पाट और गन्नेकी खेती २५,६२·५,७१·१ सैकड़े एकड़ भूमिमे हो रही है वहाँ धान, ज्वार और चनेकी खेती ५·१,०·५ तथा ०·४ सैकड़े एकड़ भूमिमे होने लगी है ।

(४) ब्रिटिश पूँजीपतियोंके लाभकी दृष्टिसे विनिमयकी दर बदलता रहता है। यह सभी लोग जानते हैं कि भारतीय उद्योग-पतियोंके घोर विरोधके होते हुए भी रुपयेकी दर १६ पेंससे बढ़ाकर १८ पेंस कर दिया गया। इस दरसे ब्रिटिश व्यापारियों-को बहुत अधिक लाभ हुआ है। उदाहरणके लिए नयी व्यवस्थामें ब्रिटिश उद्योगपति भारतमें एक कमीजका दाम १८ पेंस पाता है। विनिमयके नये दरके अनुसार इसका मतलब यह हुआ कि भारतीय खरीदारको एक कमीजका दाम १) रु० देना पड़ता है लेकिन विनिमयकी पुरानी दरके अनुसार उसे १=) आना देना पड़ता। इसका फल यह हुआ कि भारतीय बाजारमें पहलेकी अपेक्षा =) आना कम दरमें ब्रिटिश व्यापारी अपना एक रुपयेका माल बेच लेता है। भारतीय उद्योगपतिके मुकाबले ब्रिटिश उद्योगपतियोंको यह कम सुभीता नहीं हुआ है। भारत सरकार-की इस एक नीतिसे ब्रिटिश उद्योगपतियोंकी कितनी बड़ी ताकत भारतके बाजारमें बढ़ गयी है।

(५) भारत सरकारका सारा पुलिस मुहकमा पूँजीपतियों-की रक्षाके लिए तैयार रहता है। जनताको हर तरहसे दबाकर पूँजीपतियोंकी रक्षाके लिए दमन और शान्तिका स्वाँग रचा जाता है अर्थात् देशकी अधोगति भले ही होती रहे लेकिन ब्रिटिश पूँजीपतिको सुरक्षित रहना चाहिये और उसके लाभमें किसी तरहकी कमी नहीं होनी चाहिये।

(६) भारतीय उद्योगपति ब्रिटिश उद्योगपतियोंके प्रतिस्पर्धी न बन जायँ, इसके लिए भारतका उद्योगीकरण नहीं किया जा रहा है। भारतीय मजूरों तथा मध्यम श्रेणीके लोगोंको औद्यो-

उनका अभाव कैसे हो गया ? लेकिन दोनो देशोमे अन्तर यह है कि भारत गुलाम देश है और आस्ट्रेलिया स्वतन्त्र उपनिवेश है। आस्ट्रेलियामे गोरे बसते है और भारतमे काले। ब्रिटेनके व्यवसायके लिए कच्चा माल प्राप्त करते रहनेके उद्देश्यसे ब्रिटिश सरकार भारतको सदा कृषि-प्रधान देश बनाये रखना चाहती है यहॉ उद्योगोको पनपने नही देना चाहती। यदि भारत उद्योग-प्रधान देश बन जायगा तो ब्रिटिश मजदूरोको खाद्य सामग्री कहॉसे मिलेगी। ब्रिटिश मजूरोको कम वेतन देनेके लिए यह भी आवश्यक है कि उन्हे सस्ते दरपर भोजनकी सामग्री दी जाय। जबतक भारत कृषि-प्रधान देश बना रहेगा तबतक यह साध्य है।

(७) इतना ही नही रेल-महसूलकी भी इस तरह दर रखी गयी है कि भीतरसे कच्चा माल बाहर भेजनेमे सहूलियत हो और बाहरसे तैयार माल देशके अन्दर लानेमे सस्ता पड़े। भारतीय रेलवे कम्पनियोको ब्रिटिश पूँजीपतियोके लिए यहॉतक करना पड़ता है कि भारत-सरकारकी आज्ञासे वे विदेशी तैयार मालको भारतके बाजारोमे ले जानेके लिए कियायेकी दर गिरा देती है और देशी उद्योगपतियोके मालको ढोनेके लिए किरायेकी दर बढ़ा देती है। इसी तरह बन्दरगाहके लिए जो कच्चा माल रवाना किया जाता है उसका रेल महसूल कम लिया जाता है ताकि ब्रिटिश पूँजीपतियोको अधिक सस्ती दरपर कच्चा माल मिला करे। ब्रिटिश साम्राज्यवादकी प्रभुताका यह परिणाम है कि विदेशी पूँजी-पतियोके लिए भारतकी अपनी सन्तानको उन सुविधाओसे वञ्चित किया जाता है। क्या समानताका पद रखनेवाले देशोके बीच भी इस तरहकी बाते सम्भव है ?

(८) ब्रिटिश उद्योगपतियोंकी मददके लिए जो प्रबन्ध किया जाता है—जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है। उतनेसे ही सन्तुष्ट न होकर ब्रिटिश सरकार ऐसी नीतिका प्रयोग करती है जिससे भारतीय आपसमे ही लड़ते रहे और सङ्गठित होकर उस शोषणका मुकाबला करनेके लिए विद्रोह न खड़ा करें। 'भेद डालो और शासन करो' नीतिका आश्रय लेकर अनेक तरहके सामाजिक, धार्मिक और साम्प्रदायिक उलझनें पैदा कर दी जाती है ताकि वे उसीमें उलझे रहे और एक न हो सके। इस नीतिका प्रयोग इतना सफल हुआ है कि भारतके इतिहासमें इस तरहका भयानक विद्वेष कभी भी देखनेमें नहीं आया। भारतीय जनता आपसमें ही एक-दूसरेका गला काटनेके लिए सदा प्रस्तुत रहती है और शान्ति कायम रखनेके लिए ब्रिटिश सरकारका मुँह जोहती है। कहा जाता है कि भारतमें ब्रिटिश शासनका सबसे बड़ा वरदान एकता है। यदि एकताका अर्थ शासनकी यान्त्रिक एकता है तब वह इस देशको अवश्य ही प्राप्त हो सकी है। लेकिन जिन विविध जातियोसे भारतका निर्माण हुआ है यदि उनकी समीक्षा की जाय तो परस्पर विरोधका ऐसा दृश्य देखनेमे कभी नहीं आया। इन्हीं बातोंको लक्ष्य कर महात्माजीको भी अन्तमें यह स्वीकार करना पड़ा कि जबतक भारतमे ब्रिटिश-शासन कायम रहेगा तबतक हिन्दू-मुस्लिम एकता या इस तरहकी अन्य एकता कायम नहीं हो सकती। विदेशी शासनने अपने कल्याणके लिए देशमे भेद-भाव-का वह बीजारोपण किया है कि एकता नामकी कोई वस्तु रही नही गयी है। विदेशी शासनका इससे बढ़कर अत्याचार और क्या हो सकता है?

इसके उत्तरमे यह वतला देना अनुचित नही होगा कि वड़े लाटको विशेष अधिकार प्राप्त है और जहाँ ब्रिटिश स्वार्थके खिलाफ कोई बात की गयी तो वे चट उस विशेष अधिकारका प्रयोगकर ब्रिटिश स्वार्थोंकी रक्षा करते है।

दूसरे, रक्षा, अर्थ तथा यातायात आदि मुख्य विभाग केन्द्रीय सरकारके हाथमे है और वह केवलमात्र भारतमंत्रीके प्रति जिम्मेदार है, जनतासे उसका कोई सम्बन्ध नही है। इन विषयोंपर भारतीयोका कोई अधिकार न होनेके कारण प्रान्तके मन्त्रिगण अपने अधीन विषयोके लिए कोई वड़ा काम नही कर सकते क्योंकि हर वक्त उन्हे केन्द्रीय सरकारकी एतद्‌विषयक नीतिका मुँह जोहना पड़ता है जो सदा इनके रास्तेमे बाधक होकर खड़ी रहती है और एक भी ऐसा काम नही करने देती जिससे ब्रिटिश स्वार्थोंको धक्का पहुँचे।

बंगालके अकालका उदाहरण एक दम ताजा है। १९४३ में वंगालपर भीषण अकालकी छाया पड़ी। बंगालमे जनताके प्रतिनिधियो—मंत्रियों—का शासन था तो भी वे उसका सामना नही कर सके। अकालका कारण क्या था ? (१) बर्मासे चावलका आना बन्द हो गया (२) सेनाविभागके लिए वहुत अधिक अन्न बंगालसे खरीदकर बाहर भेजा गया (३) ब्रिटिश सरकार जो माल खरीदती थी उसकी अदायगीके लिए उसने इतनी ज्यादा तादादमें नोट जारी कर दिये कि वस्तुओंका मूल्य एकदम वढ़ गया (४) देहातोंसे जबर्दस्ती गल्ला खरीदकर सैनिक आवश्यकताके लिए कलकत्ता तथा अन्य स्थानोंमे जमा किया गया (५) यातायातकी सारी सुविधा जनतासे छीनकर सैनिक काममें

लायी जाने लगी। यदि प्रान्तीय सरकार सावधान होती तो वह पहले ही इस खतरेका मुकाबला कर सकती थी लेकिन ब्रिटिश सरकार तथा भारतीय सरकारकी सहायता बिना उसके लिए कुछ भी कर सकना असम्भव था और बंगालपर इस संकटको लानेके वे ही दोनो पूर्णतः जिम्मेदार थे।

तीसरे, जो भी भारतीय भारत सरकारकी सेवामें है चाहे वे नामजद हों या नियुक्त कर्मचारी हों, भारत-सरकारकी मर्जीके खिलाफ कुछ नहीं कर सकते क्योंकि वे ऐसा करके देशको लाभ तो पहुँचा नहीं सकते उल्टे अपनी नौकरीसे भी हाथ धो बैठते है। इसलिए वे चुपचाप उसकी आज्ञाओंका पालन करते रहना ही अलम् समझते हैं। इस तरह इन्हें शिखण्डी बनाकर भारत-सरकारने सामने खड़ा कर दिया है और इनकी आड़मे हर तरहका जुल्म और अत्याचार वह करती रहती है।

भारतमें ही यह कोई नया अनुभव या प्रयोग नही है। प्रत्येक देशकी प्रायः यही हालत है। उद्योगपति प्रभावशाली व्यक्तियोको इसी तरह खरीद लेते हैं, विघ्न बाधाको टाल देते है और निःशंक होकर लूटपाट करते रहते है। ऐसे लोगोंको मोटी मोटी तनखाहे देकर बड़े-बड़े ओहदोपर बैठा दिया जाता है। ये लोग भी पूँजीपतियो-के अङ्ग बन जाते हैं और उनकी व्यवस्थाका विरोध करनेवालो-का मुकावला करने लगते है। ब्रिटिश मजूरदलका इतिहास हमलोगोंके सामने है। शासनका भार उस दलके हाथमे आने-पर यही देखा गया कि अनुदार दलवालोंसे भी भयानक अत्या-चार उन्होंने जनतापर वर्षा किये। शासनको उदार कहनेके लिए और विरोधियोंका मुँह बन्द कर देनेके लिए इस तरहके लोग

शासनमें शामिल कर लिये जाते है और पूँजीपतियोके हितवाली नीति निःशंक बर्ती जाती है।

इस तरह हमलोग भलीभाँति समझ सकते है कि राजके हस्तक्षेपद्वारा पूँजीवादकी बुराइयोसे छुटकारा पानेकी लम्बी-लम्बी बाते अथवा साम्राज्यवादी शासनका भार धीरे-धीरे जनताके हाथमे सौप देनेकी चर्चा बहानामात्र है, कोई वास्तविकता उसमे नही है क्योकि शोषकोकी अवस्थामे किसी-तरहका परिवर्तन नही हो रहा है, बल्कि उनकी हालत दिनोदिन बिगड़ती जा रही है। उद्योग-प्रधान अथवा अधीनस्थ दोनो देशोकी हालत समान है। इसकी असली कसौटी तो यह है कि सरकारकी सहायतासे जनताकी हालतमे किस तरहका सुधार हुआ है? ऐसे कामोमे भी जहाँ व्यक्तिविशेपके हाथसे काम निकालकर म्युनिसिपैलिटी वा कारपोरेशनके हाथमे दे दिया गया है, वास्तविकता क्या है। म्युनिसिपैलिटीद्वारा बड़े-बड़े वेतनभोगी दो-चार कर्मचारी भले ही रख लिये गये हो, लेकिन जनताको किसी तरहकी सुविधा नही हो सकी है। इससे प्रत्यक्ष है कि शासनका यन्त्र जनताके कल्याणके लिए नहीं चलता। प्रत्येक देशमे मजूरोका शोषण उसी प्रकार हो रहा है। यदि मजूर-संघ और ट्रेड यूनियन न कायम हुए होते तो मजूरोकी हालत और भी खराब हो गयी होती। इन संस्थाओने पूँजीपतियोको बाध्य किया और मजूरोकी थोड़ी-बहुत आवश्यक माँग पूरी की जा सकी। लेकिन अब तो धीरे-धीरे मध्यम श्रेणीके लोग भी मजूरोमे ही परिणत होते जा रहे है क्योकि अपनी स्वाधीनता गँवाकर वे पूँजीपतियोके दास बनते जा रहे है और वे भी

अपर्याप्त और खराब भोजन, तथा निवासकी असुविधाका शिकार बन रहे हैं। १९११ की जनगणनाके अनुसार ब्रिटिश जनताके ८८·४ फी सदी मजूर थे और केवल ५·५ फी सदीके हाथमें उत्पादनका साधन था जो मजूरीपर लोगोंसे काम लेते थे। केवल ६ फी सदी लोग ऐसे थे जो अपनी इच्छाके अनुसार काम करनेवाले कहे जा सकते थे।* अधिकाधिक पूँजीवादी समाधिपत्यके साथ-साथ प्रगाढ़तम राष्ट्रीयताके प्रस्थापनका फल यह हुआ है, काम करनेवालोंकी संख्या दिनोदिन घटायी गयी है। परिणामस्वरूप बेकारोंकी संख्या दिन-दिन बढ़ती गयी है। उद्योगधन्धोंपर राष्ट्रका नियन्त्रण हो जानेपर भी इस समस्याके हलका कोई सुगम मार्ग नहीं दिखायी देता है, बल्कि हालत दिनोदिन बिगड़ती जा रही है और अमेरिकाके समान समृद्ध देशोंको भी यह समस्या सता रही है। १९३३ मे अमेरिकामे बेकारोंकी संख्या १४० लाख थी अर्थात् समूची आबादीका १०वाँ हिस्सा। इससे भारतके समान दरिद्र देशकी हालतका सहजमे अन्दाजा लगाया जा सकता है। जहाँ साम्राज्यवादी विदेशी सत्ताकी शोपणनीतिके कारण गरीबी दिनोदिन बढ़ती जा रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ कालके भीतर ही इस देशमें मध्यम श्रेणीके लोग नहीं रह जायँगे क्योंकि मध्यम वर्गके लोग मजूर बनते जा रहे है और किसानवर्ग अकाल और महामारियोंका शिकार होता जा रहा है जिसे हमलोग बंगाल तथा बिहार आदि प्रान्तोंमे प्रत्यक्ष देख रहे हैं। जबतक वह अपने प्रतिद्वन्द्वीका सफलतापूर्वक मुकाबला करता

* जान स्ट्रैची—ह्वाट आर वी टु डू पृ० १५

रहेगा तबतक साम्राज्यवादी शासनको इन बातोकी लेशमात्र भी परवा नही है ।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि साम्राज्यवादी डिमाक्रेसीसे यह समस्या हल होनेके बजाय दिनोदिन संगीन होती जायगी । संसारकी दो बड़ी डिमाक्रेसी—ब्रिटेन और अमेरिका—अपनी साम्राज्यवादी शक्तिके विस्तारकी ही धुनमे है और उपनिवेशोपर अपनी प्रभुता बढाना ही चाहती है । उपर्युक्त बात ब्रिटेनके भूतपूर्व प्रीमियर श्री चर्चिलके इस वक्तव्यसे स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटेनके अधीन जो कुछ है उसपर वह अपना पूर्ण अधिकार बनाकर रखेगा और उसके अधीनस्थ देशोकी समस्या ब्रिटेनकी घरेलू समस्या है और उनका उपयोग वह विश्वकी शान्ति बनाये रखनेमे करेगा और कमजोर देशोको औद्योगिक विकासके लिए ब्रिटेन, अमेरिका तथा रूसके बीच बॉट दिया जायगा और वे लोग अपने प्रतिद्वन्द्वियोको इस प्रकार पंगु बना देगे कि जो व्यवस्था ये लोग कायम करे उसमें बाधा उपस्थित करनेवाला कोई न रह जाय । और यह सब स्वाधीनता, सभ्यता, विश्वशान्ति और डिमाक्रेसीके नामपर कहा जाता है । साम्राज्यवादी लुटेरोका फौलादी पंजा ज्यो-ज्यों फैलता जायगा त्यो-त्यो उदार और मनोहर भावनाऍ व्यक्त की जायॅगी। उदार आदर्शोंके पीछे इनका खूँखार पंजा छिपा है । ऊपरसे तो उदारताकी आशापूर्ण घोषणा की जाती है लेकिन भीतर-भीतर लूट-खसोटकी नीतिको पुष्ट करनेका यत्न होता रहता है ।

पूॅजीपतियोकी इस साम्राज्यलिप्साको तृप्त करनेके लिए राष्ट्रकी संचित पूॅजी पानीकी तरह बहायी जाती है और देशके

नौनिहालोंको जबर्दस्ती रक्तपात करना और अपना सिर कटाना पड़ता है, चाहे वे उसे चाहे या न चाहे। भारतके समान गुलाम देशोके धन-जनका तो मनमाना उपयोग किया जाता है। भारतीयोसे पूछनेतककी आवश्यकता नहीं समझी जाती। यदि इसीको आजादी और डिमाक्रेसी कहते है तो फिर गुलामी क्या चीज़ है ?

सभी बातोपर विचार करनेपर इसी निष्कर्षपर पहुँचना पड़ता है कि प्राचीन युगका वैयक्तिक पूँजीवाद आधुनिक पूँजीवादसे कहीं अच्छा था, क्योकि वर्तमान पूँजीवाद डिमाक्रेसीके नामपर राष्ट्रके जन-धनके साथ सत्यानाशी खेलवाड़ कर रहा है। इसने ऐसा भयानक रूप धारण कर लिया है कि सरकारें उसके हाथकी कठपुतली बन गयी है और अपनेको दृढ़ तथा बलशाली बनानेके लिए वह राष्ट्रके सभी साधनोंका मनमाना प्रयोग करता है। सच बात तो यह है कि लोकतान्त्रिक देशोका शासन पूँजीपतियोंकी अधिनायकशाही है। इस शासनका आधार विश्वासघात, ठगी और हिंसा है। इसमें व्यक्तिगत लाभ-का प्रश्रय दिया जाता है, सार्वजनिक हितकी तरफ किसीका भी ध्यान नहीं रहता।

२—फासिस्टवाद

विकासवादकी एक अवस्थापर पहुँचकर पूँजीवाद अपना नकली आवरण उतारकर फेंक देनेका निश्चय करता है और अपना असली रूप प्रकट करता है। ऊपर कहा गया है कि

लोकतान्त्रिक राष्ट्रोंमें पूँजीवाद यह आवरण लेकर प्रकट होता है कि इसका संचालन जनताकी इच्छासे हो रहा है।

लेकिन हमलोग देख चुके है कि यह बहानामात्र है। व्यवहारमे तो उन लोकतन्त्रोमे भी पूँजीपतियोंका ही पूर्ण अधिकार राष्ट्रपर रहता है और बिना किसी विघ्नबाधाके वे राष्ट्रका प्रयोग अपने स्वार्थ-साधनके लिये करते है। फासिस्टवादमे जनताकी इच्छाका कोई मूल्य नही है। राष्ट्र सब कुछ है। इस तरह डिमाक्रेसीका आडम्बर भी हटा दिया जाता है और उसके स्थानपर अधिनायकशाही स्थापित हो जाती है जो निरंकुशताके साथ खुल्लमखुल्ला जनतापर जुल्म ढाहती है। पूँजीपतियोकी इस तरहकी अधिनायकशाही उन देशोमे कायम हो जाती है जहॉ जनताकी विरोध भावना उग्रतर होने लगती है और पूँजीपति भयभीत होकर उसका दमन करनेके लिए राष्ट्रकी शक्तिका प्रयोग करता है।

इस तरह समस्त उपकरणोके साथ पूँजीवादका एकाधिपत्य स्थापित हो जाता है और उसका आतंक सबपर छा जाता है। मजूर, शिक्षित समाज, मध्यम वर्गके लोग, छोटे व्यापारी तथा दूकानदार सभी त्रस्त हो उठते है क्योंकि इसके भयानक विस्तारका प्रभाव सबपर पड़ता है और सबकी जीविकाके साधनोका अपहरण होने लगता है, दूसरे, इस आर्थिक राष्ट्रीय व्यवस्थाके अन्तर्गत करोकी बेतहाशा वृद्धि होने लगती है और साधारण जनता इस असह्य बोझके भारसे दबने लगती है। इसका फैलाव अन्ततोगत्वा, भयानक हो उठता है। इस व्यवस्थासे असन्तुष्ट और क्षुब्ध सारी शक्तियॉ समाजवादकी तरफ दौड़ पड़ती है।

साम्राज्यवादी...
कोमल भावनाओंके जालसे वे ठगी नहीं जाना चाहतीं और इसका
मुकाबला करनेके लिए वे संगठित होने लगती हैं।

यह व्यवस्था उत्पन्न होनेपर पूँजीपति इन विद्रोही शक्तियोंको
उनके ही खिलाफ उभाड़कर प्रयोग करनेका रास्ता ढूँढ़ने लग-
ता है। शासन उन्हें रास्ता बतला देता है। वह राष्ट्रकी उन
शक्तियोकी पीठ ठोकने लगता है जिनका उपयोग वह उन्हे नष्ट
करनेमें कर सकता है। डिमाक्रेसीकी भाँति यहाँ भी मध्यम वर्गके
कतिपय लोगोंको ऊँचे ऊँचे पद देकर अपने वशमें किया जाता
है। इससे फासिस्टवादी राष्ट्रको जनतन्त्रका रूप मिल जाता है
और इनकी सहायतासे अमन और शान्तिके नामपर विद्रोही
शक्तियोपर अनवरत प्रहार होने लगता है और इस तरह जनता-
की विद्रोही भावना निर्दयताके साथ कुचल दी जाती है।

(क) ऐतिहासिक

फासिस्टवादका उदय इटलीमें मुसोलिनीके अधिनायकत्वमे
(१८८३–१९४५) में हुआ। प्रथम विश्व-युद्धके बाद जब सेना-
का विघटन होने लगा तब अधिकार लोलुप मुसोलिनीने इटली-
की बढ़ती बेकारी और दुर्दशाका लाभ उठाकर सैनिको और
क्षुब्ध निम्नश्रेणीके मध्यमवर्गके लोगोका सैनिक-सङ्गठन किया।
इन लोगोके पास किसी तरहकी सम्पत्ति नहीं थी। इसलिए वे
पूँजीपतियोके शत्रु थे और समाजवादियोके साथ मिलकर
इन्होने अपने पूँजीवादी-विरोधी नारे बुलन्द किये। इससे
असंख्य बेकार मध्यम श्रेणीके लोग इनके साथ हो गये। उन
किसानो तथा अन्य लोगोने भी इनका साथ दिया जो धनिको
और सम्पत्तिवालोके दुश्मन थे। लेकिन मुसोलिनी समाजवादका

कट्टर शत्रु था। आरम्भमे यह स्वयं समाजवादी था लेकिन प्रथम विश्व-युद्धके समय यह राष्ट्रवादी बन गया और युद्धमे इटलीके शामिल होनेका समर्थन करने लगा, इसलिए यह पार्टी-से निकाल दिया गया। इस तरह समाजवादका कट्टर शत्रु बन-कर उसने अपने सङ्गठनका प्रयोग उन समाजवादियोके संहारमे किया जो ट्रेड यूनियनोका पूर्ण सङ्गठनकर समाजवादी जनतन्त्र शासन कायम करनेके लिए क्रान्तिके पथपर थे। मजूरोकी इस बढ़ती शक्तिसे इटलीके पूँजीवादी घबरा उठे थे। उन्होने मुसोलिनीके आन्दोलनका समर्थन किया, उसे आर्थिक सहायता दी और उसके द्वारा मजूरो और समाजवादियोकी बढ़ती शक्तिके संहारका उपक्रम हुआ। इस तरह मुसोलिनीको धनिको और गरीबो दोनोसे मदद मिली। गरीबोके सहयोगसे दलकी शक्ति बढ़ी और इसने जन आन्दो-लनका रूप धारण कर लिया और धनिकोकी मददसे उसने अधिकार प्राप्त करनेकी अपनी लालसा पूरी की, शासनपर कब्जा कर लिया और अपने विरोधियो तथा समाजवादी मजूरोपर जुल्म ढाहना आरम्भ कर दिया।

फासिज्मके पास भविष्यके लिए कोई स्वतन्त्र आर्थिक नीति या फिलासफी नही है। तात्कालिक आर्थिक व्यवस्थाके सुधारके लिए उसके पास कोई समाधान नही है। वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्थाका ही वह हामी है। पूँजीवादके साथ केवल वह राष्ट्री-यता शब्द जोड़ देता है। फासिस्टवादके बारेमें स्वयं मुसो-लिनी ने कहा है फासिस्टवादका सम्बन्ध किसी स्थिर सिद्धान्त-से नही है, वह अनवरत एक ही आदर्शकी ओर आगे बढ़ता

है अर्थात् इटलीकी जनताका भावी कल्याण।" यह आदर्श इटलीके फासिस्टवादका कोई अनोखा आदर्श नहीं है। जो भी दल अधिकार प्राप्त करना चाहता है, वह यही नारा बुलन्द करता है। लेकिन फासिस्टोंके साथ यह नारा केवल वोट (मत) प्राप्त करनेके लिए नहीं था। यह दिली भावना थी। इसकी दृष्टि इटलीके अतीत इतिहासपर थी और प्राचीन रोम साम्राज्यके यशको वह पुनः प्रतिस्थापित करना चाहता था और प्राचीन रोमके निशानको (लट्ठोंका एक बण्डल और बीचमे कुल्हाड़ा) इसने अपना निशान बनाया था जो मजिस्ट्रेटों और सम्राटोंके आगे-आगे चलता था। इस निशानका अर्थ यह था कि जो लोग राष्ट्रके विरुद्ध किसी तरहका षड्यन्त्र रचेंगे उन्हे सख्त सजाएँ दी जायँगी और वे फाँसीपर लटका दिये जायँगे। अभिवादनके लिए भी उसने प्राचीन रोमका ही तरीका अख्तियार किया अर्थात् हाथ ऊपर उठाकर फैला देना। प्राचीन रोमका यह साम्राज्यवादी उपक्रम पूँजीपतियोको सर्वथा अभीष्ट था क्योकि इसी उपायसे वे उपनिवेशोकी स्थापना कर अपने अभीष्ट-को सिद्ध कर सकते थे। इसीलिए उन लोगोने मुसोलिनीकी सहायता की और अधिकार छीनकर वह इटलीका एकमात्र अधिनायक बन बैठा।

(ख) फासिस्टवादका रूप

(१) सामूहिकता—अधिनायक और उसके दलके लोग ही इसमे सर्वेसर्वा बन जाते है। विरोधिय और आलोचकोका मुंह बन्द कर दिया जाता है। इस तरहके राष्ट्रको सामूहिक राष्ट्र कहते है क्योकि अधिनायक और उसके समूहके लोग ही

शासन करते है। शासनके काममे प्रतिद्वन्द्वी दलका कहीं नामो-निशान नही रह जाता। विरोधी दल गैर-कानूनी करार दे दिया जाता है और उसकी स्थापनापर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है। विरोधी दलके नेताओंको गिरफ्तार कर लिया जाता है और उन्हे अनेक तरहके कठोर दण्ड दिये जाते है। शासनके विविध पद अधिनायकके समर्थकोको ही दिये जाते है और जो लोग विरोधी दलके साथ किसी तरहकी सहानुभूति प्रकट करते दिखायी देते है वे पदच्युत कर दिये जाते है और उन्हे कड़े दण्ड दिये जाते है। विरोधियोका पता लगानेके लिए देशमे खुफियोका जाल बिछा दिया जाता है। इस तरह विरोधी चुन चुनकर खत्म कर दिये जाते है और देशका शासन अधिनायकके इच्छानुसार चलता है। विरोध करनेका साहस किसीमे नही रह जाता और जनता भेड़ बकरीकी तरह आज्ञाओंका पालन करती है।

(२) स्वतन्त्रताका अपहरण :—मिलने-जुलने, बोलने, लिखने तथा संगठन करनेकी स्वतन्त्रताका अपहरण कर लिया जाता है और पूरी निरंकुशतासे काम लिया जाता है। जनता तबतक स्वाधीनताका उपभोग कर सकती है जबतक पूँजीवादपर किसी तरहका खतरा उसकी हरकतोंसे नही उपस्थित हो सकता, लेकिन खतरेका आभास मिलते ही हर तरहकी स्वतन्त्रता छीन ली जाती है और दमनका बाजार गर्म हो जाता है। यह सब इस सिद्धान्तके अनुसार किया जाता है कि १९वीं सदीका यह सिद्धान्त कि 'जनताके स्वतन्त्र मत ग्रहणद्वारा शासन करना चाहिये' मूर्खतापूर्ण सिद्ध हुआ है। राष्ट्रके प्रतिनिधि राजके हाथमे

व्यक्तिके ऊपर पूरा अधिकार होना चाहिये और व्यक्तिको राजमें पूर्णतः समा जाना चाहिये तभी वह राजके प्रति अपने कर्तव्यका पूरा पालन कर सकता है। राज ईश्वर है और उसकी वेदीपर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और अधिकारको बलि चढ़ा देना चाहिये।

(३) राष्ट्रीयता—डिमाक्रेसीकी भाँति यहाँ भी आदर्शवादकी दुहाई दी जाती है लेकिन स्वाधीनताके नामपर नहीं, बल्कि देशभक्तिके नामपर। क्योंकि हर तरहकी वैयक्तिक स्वाधीनताका तो अपहरण कर लिया जाता है, जनताके ऊपर नकली देशभक्तिका बोझ लाद दिया जाता है और इस तरह देशकी महत्ताका राग अलापा जाता है, देशके प्राचीन गौरवका राग अलापकर युवकोंको उत्तेजित किया जाता है और इस तरह उन्हें राज और अधिनायककी पूजाके लिए तैयार किया जाता है।

देशभक्तिको इस तरह जगाकर उसका दुरुपयोग किया जाता है और देशमें एक प्रकारका निरंकुश शासन कायम किया जाता है जिसका नाम आर्थिक राष्ट्रीयता रखा जाता है। इसके अनुसार राज कर्ज, सहायता तथा चुंगीके द्वारा पूँजीपतियोंकी सहायता करता है। इससे करमें वृद्धि होने लगती है, वस्तुओंका दाम बढ़ जाता है और जनताका उत्पीड़न होने लगता है लेकिन पूँजीपति इन सब बातोंकी ओर ध्यान नहीं देता।

(४) युद्ध—पूँजीवादके अन्तर्गत इस आर्थिक राष्ट्रीयताका फल यह होता है कि आर्थिक सङ्घर्ष आरम्भ हो जाता है और अन्तर्राष्ट्रीय कलहकी नौबत आ जाती है। जनताको युद्धके लिए प्रेरित करनेके निमित्त यह कहा जाता है कि उपनिवेशोंकी प्राप्ति

बिना देशका विस्तार नहीं हो सकता और देशके विस्तार बिना जनताके कष्ट दूर नहीं हो सकते। लेकिन इन युद्धोंका वास्तविक उद्देश्य रहता है कच्चा माल प्राप्त करनेके लिए, तैयार मालको खपाने तथा फाजिल पूँजीको लगानेके लिए बाजार प्राप्त करना। १९१४-१८ के प्रथम विश्व-युद्धके परिणामसे निराश होकर इटलीने यही किया था। लेकिन पूँजीपतियोंको लाभ पहुँचानेके लिए युद्धमे प्रवृत्त होकर कौन अपनी जान और अपना माल गँवानेका प्रयास करेगा? इसलिए यह प्रचार किया जाता है कि राष्ट्रके कल्याणके लिए नये उपनिवेशोंकी प्राप्ति आवश्यक और अनिवार्य है। इसके बिना देशका पतन अवश्यम्भावी है।

इटलीके सम्बन्धमे मुसोलनीने कहा था—इटलीकी जनसंख्या फ्रांसकी जनसंख्याके बराबर है लेकिन इटलीका विस्तार फ्रांसका आधा है, और फ्रांसके उपनिवेशोंके मुकाबले इसके पास १/१२ उपनिवेश है और ब्रिटेनके मुकाबले तो केवल १/१०० है। इसलिए अपनी फाजिल जनसंख्याको बसानेके लिए इटलीको नये उपनिवेश प्राप्त करना आवश्यक और अनिवार्य है। लेकिन कहाँसे और किस तरह? इटलीके वर्तमान साधन उसकी ४ करोड़की आबादीके लिए पर्याप्त नहीं है। ज्यों ज्यों इसकी आबादी बढ़ती जायगी त्यों त्यों उसकी कठिनाई भी बढ़ती जायगी। उस दिन इसकी क्या हालत होगी? आर्थिक और राजनीतिक दासता।*

इस तरह जनताको असमानता, अन्याय और देशभक्तिके नामपर उभाड़ा जाता है और समस्त राष्ट्रके मनमे यह विश्वास उत्पन्न किया जाता है कि यदि नये उपनिवेश प्राप्तकर

* कोटेड बाई नार्मन अगेल इन दी ग्रेट इल्यूजन नाऊ पृ० ७१-७२

देशका विस्तार नहीं किया जायगा तो लोग भूखों मर जायँगे और विश्वकी सम्पत्तिका उसे उचित भाग नहीं मिलेगा। इस तरह वह मरने और मारनेके लिए तैयार हो जाता है—धन और लाभके लिए नहीं बल्कि न्यायके लिए, मानवताके मौलिक अधिकारोंके लिए, जीनेके लिए! इस तरह राष्ट्रीय जोश उत्पन्न किया जाता है, उसे उभाड़ा जाता है और संहारके लिए उसे तैयार किया जाता है।

इन उपायोंसे जनताको युद्धके लिए सन्नद्ध किया जाता है और वह देशभक्तिके नामपर अपना सब कुछ निछावर कर देती है। युद्धमें यदि विजय मिली तो लाभ होता है पूँजीपतिको। उसे अपने व्यापारको फैलानेके लिए नये उपनिवेश मिल जाते है। इसके साथ ही पूँजीपति तथा शासन व्यवस्थासे असन्तुष्ट जनताका ध्यान दूसरी तरफ आकृष्ट करनेका अवसर मिल जाता है क्योंकि कुछ कालके लिए वे उत्पीड़नोंको भूल जाती है और उसका ध्यान उस विदेशी शक्तिकी ओर खिंच जाता है। इस तरह हम देखते है कि फासिस्टवादका सबसे उपयुक्त हथियार युद्ध है। इससे मानो वह पूँजीपतियोंके लिए नया उपनिवेश तैयार करता है अथवा जनशक्तिको उस तरह भिड़ाये रखकर अपने विरोधका मार्ग साफ रखता है। इसलिए युद्धोंकी प्रशंसा की जाती है। कहा जाता है कि युद्धसे साहस, वीरता, अनुशासन कार्य-कुशलता, देश-भक्ति, त्याग आदि भावनाओंका उदय होता है और उज्वल चरित्रका निर्माण होता है।

फासिस्टोंकी इस मनोवृत्तिको तबतक दूषित नहीं कहा जा सकता जबतक कि बड़े बड़े औद्योगिक राष्ट्रोंके अधीन इतने

ज्यादा उपनिवेश रहेंगे। जिन लोगोने सब कुछ हड़प लिया है और उसपर अपना आधिपत्य बनाये रखना चाहते है, तबतक उन लोगोकी प्रवृत्ति युद्धकी ओर होना स्वाभाविक है जिनके पास नही है क्योकि वे उसमे हिस्सेदार होना चाहते है। इसलिए फासिस्ट शक्तियोको युद्धके लिए प्रेरणा देनेकी सारी जिम्मेदारी यूरोपीय डिमाक्रेसीके ऊपर है।

तो भी भौमिक विस्तारकी लिप्साका समर्थन किसी भी प्रकार नही किया जा सकता। उदाहरणके लिए यदि चीन और भारतके समान देश जिसके पास कोई भी उपनिवेश नही है—उपनिवेश प्राप्त करना चाहे, क्योकि उन्हे भी विस्तारकी नितान्त आवश्यकता है तो विश्वमे जगह कहॉ मिलेगी। इसके साथ ही विस्तारका स्पष्ट अर्थ होता है दूसरोकी-भूमि हड़प लेना। इसलिए फासिस्टवादका भौमिक विस्तारका दावा उचित होनेपर भी नैतिक दृष्टिसे उसका समर्थन नही किया जा सकता। लेकिन राजनीति और अर्थनीतिके काममे 'नैतिकता' शब्दके लिए स्थान ही नही है। कमसे कम उन पूँजीपतियोके लिए तो इस शब्दका कोई महत्त्व नही है जो बड़े बड़े आदर्शोंके भुलावामे डालकर राष्ट्रको संहारक युद्धोमे रत करते रहते है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि इटलीके फासिस्टवाद और ब्रिटेन तथा अमेरिकाकी डिमाक्रेसीमे कोई अन्तर नही है क्योकि बाहरी स्वरूपमे अन्तर होनेपर भी दोनोका भीतरी रूप समान है। :दोनोमे राष्ट्रका नियन्त्रण पूँजीपतियोके हाथमें है। केवल मात्र अन्तर दोनोमे इतना ही है कि दिखावाके लिए अमेरिका और ब्रिटेनमे वैयक्तिक स्वतन्त्रता-

की रक्षा की जाती है जिसका फासिस्टवादमें सर्वथा अभाव है।

३—नाजीवाद

(क) ऐतिहासिक—

इटलीके फासिस्टवादके समान ही जर्मनीमें भी अडल्फ हिटलर (१८८९-१९४५) के अधीन इस आन्दोलनका जन्म हुआ। मुसोलनीके समान हिटलर भी समाजवादका शत्रु था। प्रथम विश्व-युद्धके बाद जर्मनीमें समाजवादियोंकी प्रभुता कायम हुई, ये अपनेको सोशल डिमाक्रेट कहते थे। इनकी रूप-रेखा इङ्गलैण्डके मजूरदलके समान थी। जर्मनीके सोशल डिमाक्रेटोंका सिद्धान्त समाजवादियोंसे कहीं नरम था अर्थात् वास्तविक श्रमजीवियों—जिन्हे साम्यवादी कहते हैं—के सिद्धान्तके समान नहीं था। हिटलर समाजवादके प्रत्येक रूपका शत्रु था। इस तरह वह सोशल डिमाक्रेट और साम्यवादी दोनोंका दुश्मन था।

१९२३-२४ की मुद्रा-स्फीत नीतिका मध्यम वर्गके जिन लोगोंको शिकार होना पड़ा था उन्हें तथा सेनाके उन लोगोंको जो बेकार हो गये थे, उसने एकत्र किया। इनके सहयोगसे हिटलरने एक नयी पार्टीको जन्म दिया और उसका नाम रक्खा गया नेशनल सोशलिस्ट अर्थात् राष्ट्रीय समाजवादी दल। समाजवादका एक भी सिद्धान्त इस दलने नहीं अपनाया था। यह नामकरण इसलिए किया गया था ताकि यह दल उनलोगोंकी भी सहानुभूति प्राप्त कर सके जिनका झुकाव समाजवादकी तरफ था। नाजी शब्दका निर्माण, नेशनलिज्म शब्दसे 'ना' तथा सोशलिज्मशब्दसे 'जी' लेकर हुआ है अर्थात् जर्मनीके लोग समाजवाद-

के लिए हैं। समाजवादके कट्टर शत्रु होते हुए भी कुछ कालके लिए नाजियोंने अपनेको समाजवादीके नामसे प्रसिद्ध किया तो भी उन्हे पूँजीपतियोंसे आर्थिक सहायता मिलती रही। नाजी-वादका संगठन उन मध्यम वर्गद्वारा हुआ था जिनका सर्वस्व अपहरण कर लिया गया था। ये लोग पूँजीपतियोंकी बराबर निन्दा करते रहते थे इसलिए इनके साथ उन लोगोंकी भी सहानु-भूति हुई तो पूँजीवादके विरोधी थे। इस तरह इस दलका बल इतना ज्यादा बढ़ा कि इसने जन-आन्दोलनका रूप धारण कर लिया और इटलीके फासिस्टोंसे यह दल कहीं ज्यादा बलशाली हो गया। जनताकी जितनी सहानुभूति जर्मनीका नाजीवाद प्राप्त कर सका उतनी इटलीका फासिस्टवाद नहीं प्राप्त कर सका। नाजीवादका सिद्धान्त पूँजीवाद तथा उसके विरोधियोंका विचित्र सम्मिश्रण था। इन विरोधी तत्वोंको उसके जन्मदाता हिटलरने अपने व्यक्तित्वसे एक साथ मिला कर रक्खा।

पूँजीवादकी एकमात्र आकांक्षा यही रहती है कि उसके अध्यवसाय फलते फूलते रहें और समाजवादके सिद्धान्तोंका दमन होता रहे। हिटलर स्वयं समाजवादका शत्रु था। इस-लिए बिना किसी रोक-टोक या विघ्न-बाधाके उसे अधिकारारूढ़ होने दिया गया और वह जर्मनीका डिक्टेटर बन बैठा। उसे बड़े बड़े जमींदारों तथा उन जर्जर लोहेके व्यापारियोंने सहायता प्रदान की जिन्हे यह आशा थी कि अधिकार पदपर आसीन होकर हिटलर उनकी आर्थिक सहायता करेगा। ये जमींदार और उद्योगपति स्वयं नाजी विरोधी थे लेकिन अपनी उन्नतिके लिए ये हिटलरसे लाभ उठाना चाहते थे। उनका प्रयत्न सफल

भी हुआ। उदाहरणके लिए, नाजी दलके आधारस्तम्भ मध्यम वर्गके लोग थे। नाजीवादका उदय बड़े बड़े उद्योगपतियोंसे इनकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे हुआ था लेकिन अधिकार पदपर आरूढ़ होते ही नाजीदलने छोटे छोटे कारोबारको यह कहकर बन्द कर दिया कि वे व्यर्थ हैं और इन छोटे छोटे कारोबारके मालिक बड़े बड़े कारखानोंके मजूर बना दिये गये। इतना ही नहीं, सरकारी कोषकी सहायतासे लोहेके इन व्यापारियोंने अपने कारोबारको खूब बढ़ाया और हिटलरको बाध्य किया कि वह अपने दलसे उन लोगोंको अलग कर दे जिनका झुकाव समाजवादकी ओर था। इसका परिणाम १९३४ के ३० जूनका वह रक्तपात है जिसमें ३०० से १००० तक व्यक्ति अचानक गिरफ्तारकर कत्ल कर दिये गये। इनमें अनेकों ऐसे थे जिनके ही कारण हिटलरको सफलता प्राप्त हुई थी। इस तरह समाजवादियों तथा उदार विचारवालोंका सफाया कराकर उन उद्योगपतियों तथा युद्ध-प्रकृतिके लोगोंने हिटलरको हथियारोंसे सुसज्जित होने तथा साम्राज्यवादी नीतिको तेजीसे अख्तियार करनेके लिए प्रवृत्त किया। १९४४ के १२ नवम्बरको संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाके फौजी सब-कमेटीके डिपार्टमेंटने लिखा है—जर्मनीके उन उद्योगपतियोंने, जो व्यापारमें एकाधिपत्य प्राप्त करना चाहते थे—जर्मनीके विस्तारके लिए सतत और अनवरत प्रयत्न किया और अपने इस अध्यवसायकी पूर्तिके लिए उन्होंने खुले दिलसे हिटलरका साथ दिया। इसलिए उन लाखों नाजियोंको जिन्होंने इस कामको पूरा किया—दण्ड देनेकी अपेक्षा उन १०,००० प्रमुख उद्योगपतियोंको दण्ड देना कहीं ज्यादा उपयुक्त होगा।

विरोधियोका दमन करनेमे इटलीसे भी ज्यादा उग्रता दिखलायी गयी। आतंकका राज्य हो गया और जिनपर हिटलर तथा उसके दलके विरोधी होनेका लेशमात्र भी सन्देह हुआ उसे पकड़ लिया गया और उसका अन्त कर दिया गया। उदार विचार रखनेवाले तथा शान्तिका उपदेश देनेवाले और समाजवादी एक-एककर पकड़ लिये गये। मजूर-वर्गके इस तरहके लोगोको विशेष रूपसे खत्म किया गया। जर्मनीके पूँजीवादियोने अपनी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिए हिटलरका हर तरहसे उपयोग किया।

(ख) नाजीवादका स्वरूप—

(१) फासिस्टवाद—जर्मनीके नाजीवादका प्रत्यक्ष वही रूप है जो इटलीके फासिस्टवादका। फासिस्टवादके सभी अवयव इसमे वर्तमान है। इसलिए उनकी विस्तृत व्याख्या इस स्थलपर अनावश्यक है। जहाँतक राष्ट्रीयताका सम्बन्ध है दोनोमे भारी भेद है। नाजीवादकी राष्ट्रीयता संकीर्ण साम्प्रदायिकताके आधार पर अवलम्बित है।

(२) यहूदी-विरोधी—नाजियोकी राष्ट्रीयताका आधार साम्प्रदायिकता थी। जर्मन जातिको आर्य जातिका मानकर उन्होने उसे विद्या और बुद्धिमे सबसे श्रेष्ठ माना। उनका कहना था कि इन गुणोके कारण उसे अन्य सभी जातियोपर शासन करनेकी गुरुता प्राप्त है और इस महत् उद्देश्यकी सिद्धिके लिए उसकी जातीयताको अक्षुण्ण और अमिश्रित बनाये रखना आवश्यक है। इसलिए उन्होने प्राचीन आर्योंके चिह्न स्वस्तिकको अपना चिह्न बनाया। अपनी श्रेष्ठताका अभिमान और दूसरोकी हीनताके

प्रति घृणाका भाव भरकर उन्होने विश्वविजयी बननेकी आशा की। यह कल्पना जर्मनीके पूँजीपतियोके अनुकूल थी क्योंकि उन्हें अपने विस्तारके लिए उपनिवेशोकी आवश्यकता थी।

जर्मनीमे अनार्य जातिके लोग यहूदी ही थे। जर्मनोने उनके खिलाफ अपनी सारी शक्ति लगा दी। हिटलरका कहना था कि अन्तर्जातीय विवाहद्वारा यहूदी लोग जर्मन जातीयताकी पवित्रताको नष्ट कर उनका ह्रास करते जा रहे है और आर्य जर्मन जातिसे विश्व विजयको छीन लेना चाहते है। पश्चिममें फ्रांस था, जो यहूदियोका गढ़ है। फ्रांस यहूदी पूँजीपतियोके पूर्णतया अधीन है और पूर्वमें रूस है जो यहूदी कार्लमार्क्सकी नयी फिलासफीसे प्रेरणा पाकर यहूदियोके लिए विश्वपर प्रभुता प्राप्त करना चाहता है। जर्मनी तथा आर्य संसारको यहूदियोंसे बचानेका एकमात्र उपाय फ्रांस तथा रूसका अन्त कर देना है। हिटलरके अनुसार यही उसका उद्देश्य था।

वास्तविकता यह है कि जर्मनीमें यहूदियोकी प्रधानता थी। छोटे-बड़े सभी उद्योग-धन्धे उनके हाथमें थे। भूमि भी उनके अधीन पर्याप्त थी। इन यहूदियोके विरुद्ध साम्प्रदायिक उत्तेजना फैलाना सबसे सहज और उत्तम मार्ग समझा गया क्योंकि इस उपायसे उन्हे लूटकर गरीबोका पेट भी चल सकता था और जर्मन पूँजीपतियोके सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वीका अन्त भी हो जाता था। ऊपर कहा जा चुका है कि नाजियोके दलमें ऐसे ही लोगोकी अधिकता थी जो बेकार और असहाय थे और उनकी जीविकाके लिए साधनकी आवश्यकता थी। पितृभूमिके प्रति अनुरागकी आड़में उन्हे लूटने-खसोटनेका अवसर मिल गया।

उन्होने यहूदियोके साथ हर तरहकी पाशविकताका व्यवहार आरम्भ किया और बहिष्कार, निर्वासन, मार-पीट तथा हत्या हर तरीकोसे काम लेकर उन्हे खत्म करना आरम्भ कर दिया। यहूदियोके खिलाफ जो आन्दोलन चल रहा था उसकी तहमे उन मध्यवर्गके पेट भरनेका सवाल था जिनके पास जीविकाका कोई साधन नही था।

(३) वर्सेईको सन्धिके प्रति विद्रोह—हिटलरके यहूदी-विरोधी आन्दोलनका देश-विदेशमे व्यापक प्रचार हुआ। लेकिन अन्य राष्ट्रोमे बसे जर्मन जातिको अपनी ओर आकृष्ट किया उसकी जड़ राष्ट्रीयताने। नाजियोके अनुसार न्यायकी निम्नलिखित परिभाषा थी—राष्ट्रके लिए जो उपयोगी हो वही न्याय है। वर्सेईकी सन्धिमे जर्मनीको पूरी तरहसे पददलित करनेका यत्न किया गया था। जर्मन जातिके हृदयमे बदला लेनेकी आग सुलग रही थी। वह ऐसे नेताकी प्रतीक्षामे थी जो इस काममे उसका नेतृत्व करता। जर्मन साम्राज्यको खण्डित कर अनेक देशोको दे दिया गया था। वे हर तरहसे छिन्न-भिन्न कर टुकड़ोमे बॉट दिये गये थे। जर्मनीके पूँजीपति अपनी खोयी भूमिको प्राप्त करना ही चाहते थे, साथ ही नये देशोको प्राप्त करनेकी चाह भी रखते थे।

(४) सोवियत विरोधी—रूसका सोवियत संघ यूरोपसे लेकर एशियातक फैला हुआ था। सोवियत रूससे ही जर्मनीको नये उपनिवेश मिल सकते थे। इसलिए जर्मनीकी गृद्ध-दृष्टि सोवियत रूसपर पड़ी। रूसके पास था और जर्मनीके पास नही था इसलिए जर्मनी उसमेसे हिस्सा बॅटानेके

लिए उत्सुक था। इसके साथ ही साथ जर्मनीके पूँजीपति रूसके साम्यवादका भी अन्त चाहते थे। इस काममे हिटलर बड़ी आसानीसे सोवियत रूसके विरुद्ध यूरोपका अग्रणी हो सकता था और अपने इस उद्योगमे वह अपने देशके ही नहीं बल्कि इटली आदि अन्य यूरोपीय साम्राज्यवादी देशोके पूँजीपतियोसे भी सहायता प्राप्त कर सकता था यदि उन देशोको इसकी बढ़ती शक्तिका आतंक न होता और यदि वे इसे शंकाकी दृष्टिसे न देखते होते।

इस तरह हम देखते है कि अपनी दो-एक निजी विशेषताके अतिरिक्त नाजीवादका वही रूप था जो फासिस्टवादका था। दोनो वादोका उद्देश्य एक ही था। दोनो देशोके पूँजीपति यह देख रहे थे कि मजूरवर्ग क्रान्तिके पथपर है। इससे अपनी रक्षा करनेके लिए उन्होने नये रूपमें यह प्रयास किया था।

ऊपर जो लिखा गया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्र-द्वारा नियंत्रित पूँजीवाद (जैसा कि साम्राज्यवादी डिमाक्रेसीमे है) नाजीवाद अथवा फासिस्टवादमे अन्ततोगत्वा जनसाधारणको कोई अधिकार नहीं रह जाता, पूँजीपति ही सर्वेसर्वा बन जाता है और पूँजीपति अपने लाभके लिए राष्ट्रकी शक्तियोका उपयोग करता है। यद्यपि यह अंशतः सत्य है कि उन देशोके औद्योगिक जीवनमे राष्ट्रका हस्तक्षेप बराबर बढ़ता गया है और समय समयपर पूँजीपतियोंके स्वार्थके खिलाफ हस्तक्षेप हुआ है लेकिन वास्तवमे इन राष्ट्रोका उद्देश्य राष्ट्र और युद्धकी आवश्यकताओपर दृष्टि रखते हुए पूँजीवादको प्रोत्साहन देना रहा है। पूँजीवादकी अनेक बुराइयोको दूर कर वे उसमें सुधार

लाना तथा उसकी शक्ति बढ़ाना चाहते है। इनका उद्देश्य है कि पूंजीवादी प्रथा कायम रहे लेकिन देशकी आर्थिक व्यवस्था अधिक व्यवस्थित रूपसे काम करने लगे। लेकिन कोई अन्य आर्थिक व्यवस्था खड़ी करके वे पूंजीवादको मिटाना नही चाहते। जिन तीन देशोका विवरण ऊपर दिया गया है उनमे जहाँ कही राष्ट्रने किसी उद्योगको, यदि अपने हाथमे भी ले लिया है, तो वहाँ उसका उद्देश्य समाजवादकी स्थापना नही रहा है, जैसा दावा पेश किया जाता है। इस तरहकी व्यवस्थाको 'समाजवादी पूंजीवाद' या 'राष्ट्रीय समाजवाद' कह सकते है। इसमे मजूरोकी और ज्यादा दुर्दशा होती है। उन्हे कमसे कम मजूरी देनेका यत्न किया जाता है। इसलिए इतना तो स्पष्ट है कि यदि मजूरोको उचित मजूरी मिली है तो पूंजीवादका किसी भी रूपमे कायम रहना वाञ्छनीय नही है। समाजवादमे उसीके लिए प्रयास किया गया है जैसा अगले अध्यायमे दिखलाया जायगा।

अध्याय ३

समाजवाद

पूँजीवादके अध्ययनसे हम इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि उसके अन्दर सारी मुसीबतोंकी जड़ यह है कि विस्तृत पैमानेपर उत्पादनसे जो लाभ होता है वह सबका सब मालिककी जेबमें चला जाता है। इस उपायसे धनका उपार्जन बहुत अधिक होता है लेकिन मजूरोंको उसका बहुत कम अंश मिलता है। उसी तरह खेतके उत्पादनका बहुत ज्यादा अंश मालिकोंको मिलता है। जबतक भूमि और मशीनोंपर पूँजीपतियोंका अधिकार रहेगा तबतक यही दशा कायम रहेगी। मालिककी हैसियतसे नफापर अपना पूरा अधिकार जमाना वह अपना कर्तव्य समझता है। इस तरह जिस अल्प-संख्यक समुदायके हाथमें ये साधन हैं वह चुपचाप बैठा रहकर मजा उड़ाता है और वह बहुसंख्यक समुदाय जो एँडी चोटीका पसीना एक करके उपार्जन करता है मुश्किलसे अपना पेट चला पाता है। इस व्यवस्थाको दूर करनेका एकमात्र यही उपाय है कि खेतों और मशीनोंपर अधिकार कर लिया जाय, पूँजीवादका अन्त हो जाय और उत्पादनसे जो कुछ प्राप्त हो वह हिस्सा मुताबिक उन लोगोंमें बाँट दिया जाय जो लोग इसके लिए परि-

श्रम करते है। प्रश्न यह उठता है कि खेतो और मशीनोपर अधिकार किसका होगा ? यदि किसी व्यक्ति विशेषके हाथमे इन्हें सौप दिया जाय तब तो उसी पूँजीवादकी पुनरावृत्ति हो जायगी। इसलिए इसपर समाजका संयुक्त अधिकार होना चाहिये। अर्थात् खेतो और उत्पादनके साधनोपर समाजका अधिकार हो और उत्पादनसे जो कुछ प्राप्त हो उसे समाजके विभिन्न अंगोमे कम-बेश बराबर बॉट दिया जाय। इस उपायसे आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारोका पूरा लाभ समाजको प्राप्त होगा और अरक्षित, असमान विभाजन, गरीबी, बेकारी, वर्गद्वेष, आदि बुराइयोसे समाजकी रक्षा होगी। उत्पादन व्यक्तिगत लाभके लिए न होकर समाजके कल्याणके लिए होगा। प्रतिस्पर्धाके कारण जो बर्बादी उत्पादनकी होती है वह रुक जायगी। मजूरोका दुरुपयोग नही होगा और कमजोर राष्ट्रपर बलवान राष्ट्रकी गृद्ध-दृष्टि नही पड़ेगी। युद्धके लिए प्रेरणाका अन्त हो जायगा। पूँजीवादी व्यवस्थामे लाभके लिए पागल समाजके हृदयसे मानवीय विचारोका जो सर्वथा लोप हो गया था उसका पुनः उदय होगा और आर्थिक व्यवस्थाका एकमात्र उद्देश्य आवश्यकताके अनुसार उत्पादन रह जायगा। संघर्ष, कलह और मारपीटका स्थान सहयोग, सद्भाव और शान्ति ग्रहण करेगे और परस्पर मेलके भावका उदय होगा। समाजवादका यही आधारस्तम्भ है। अर्थात् उत्पादन और विभाजनका उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ न होकर समुदायका लाभ होगा। इसीलिए इस व्यवस्थाका नाम समाजवाद है जो पूँजीवाद अथवा व्यक्तिवादका विरोधी है।

१—ऐतिहासिक

उत्पादनके साधनोपर समाजका अधिकार और उत्पादनका आपसमे बॅटवारा समाजवादका कोई नया विधान नही है। प्राचीन युगमे यह प्रथा कायम थी। उस समय भूमिका मालिक व्यक्ति विशेष न होकर गरोह होता था और उत्पादनका बॅटवारा उनके बीच हो जाया करता था। समाजवादने उसी पुरानी प्रथा-को पूँजीवादकी बुराईको दूर करनेके लिए नये रूपसे खड़ा मात्र किया है। विगत शताब्दीके अर्ध शतकमें इंगलैण्ड, फ्रांस तथा अमेरिका आदि देशोमे कल-कारखानोने मजूरोंके लिए अनेक तरहकी असुविधाएँ उत्पन्न कर दीं। उन देशोके विचारवानोने इन बुराइयोको दूर करनेके अनेक उपाय निकाले। उनमेसे यह भी एक उपाय पेश किया गया कि उत्पादनके साधनोंपर समाज-का अधिकार हो और इस उपायका नाम पड़ा समाजवाद।

समाजवाद शब्दका पहले पहल प्रयोग १८३० में रावर्ट ओवेनने किया। यह इंगलैण्डका रहनेवाला कारखानेका अधि-पति था। रावर्ट ओवेन उदार और दयालु था। कारखानोंमें मजूरोकी दुर्दशा होते देख उसका दिल भर आया और उसने यह इच्छा प्रकट की कि मजूर अपनी सहयोग समितियाँ कायम कर उसीके द्वारा कारखानोंका संचालन करे और उत्पादनको आपसमे बॉट लें। इसके साथ ही मजूरोंका ट्रेड यूनियन (व्यवसाय संघ) दूसरी धारासे पनपा। इनका उद्देश्य मजूरोको अधिक वेतन तथा रहन-सहनकी सुविधा दिलाना था। ओवेन तथा उस विचारधाराके अन्य लोगोके समाजवादी

विचारोंका प्रभाव ट्रेड यूनियन आन्दोलनपर पड़ा और समाजवादकी प्रगतिमे उससे भी सहायता मिली।

ओवेनके समाजवादके अलावा इस तरहकी एक नयी विचारधारा भी यूरोपीय महाद्वीपपर फैल रही थी। इसे अराजकता कह सकते है अर्थात् शासनका अभाव। ये अराजक भी समाजवादी थे। लेकिन समाजवादियोंसे उनमे यह अन्तर था कि समाजवादकी तरह ये प्रत्येक वस्तुपर राष्ट्रका नियंत्रण नहीं चाहते थे। वैयक्तिक स्वतन्त्रतापर उन्होंने बहुत अधिक जोर दिया। लेकिन उन्हे यह अभीष्ट नही था कि पूँजीपतियोंके जुल्मसे मजूरोंको छुड़ाकर राष्ट्रके जुल्मके अन्दर उन्हे रख दिया जाय। उनका सिद्धान्त था कि शासनका अभाव ही उत्तम शासनका लक्ष्य है। वे वैयक्तिक स्वतन्त्रताके हामी थे। उनका सिद्धान्त था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वतन्त्र इच्छासे एक दूसरेके साथ सहयोग करे और एक दूसरेके अधिकारोंकी रक्षा करे। ये समाजवादी अराजकताको ही आदर्श मानते थे लेकिन इस अराजकताको सम्पन्न करनेके लिए वे सुदृढ़ समाजवादी शासन आवश्यक समझते थे। अराजकता सिद्धान्ततः भले ही सुन्दर प्रतीत हो लेकिन इसका व्यावहारिक रूप सुखद नहीं हुआ। अनधिकारियोंके हाथमे पड़कर इसका पूरा दुरुपयोग होने लगा। अनाचार बढ़ गया, राजाओं तथा अधिकारीवर्गकी निर्मम हत्याएँ होने लगी। उनपर बम फेंके जाने लगे। आतंकका राज्य छा गया। अराजकता सिद्धान्तके नेताओंने हिंसाका घोर विरोध किया लेकिन इसका कोई असर नही हुआ। परिणामस्वरूप पूरी निर्दयताके साथ इस आन्दोलनका दमन किया गया और इसका अन्त हो गया।

समाजवादका विकास दो प्रधान धाराओंमें हुआ। पहली विचारधाराके वे लोग थे जिनका विश्वास था कि समाजवादकी स्थापना एक दिनमे सम्पन्न नहीं हो सकती। इसे सम्पन्न करनेके लिए जन-साधारण तथा पूँजीपतियोके हृदयोमें परिवर्तन करना आवश्यक है। इसके लिए वर्षोंतक परिश्रमकर समाजवादकी भावना इन लोगोके मनमे भरना होगा। इन्हे हम विकासवादी कहते है। इनका कहना है कि मनुष्य समझदार व्यक्ति है। अगर उसे समझा दिया जाय कि वर्तमान आर्थिक व्यवस्था समाजके लिए हितकर नहीं है तो वह उसे बदलनेके लिए तैयार हो जायगा। इसलिए वह प्रत्येक व्यक्तिमें सद्भावना, मानवता और न्यायप्रियता उत्पन्न करना चाहता है और उसका विश्वास है कि अन्तमे न्याय और सत्यकी ही जीत होगी। इस विचार-धाराका नाम पड़ा आदर्शवादी समाजवाद या क्रमिक विकासवाद अथवा सुधारवाद। यूरोपमें इसे सोशल डिमाक्रेसीके नामसे पुकारते है। इस सिद्धान्तमें विश्वास रखनेवाले सुधारके लिए शान्तिमय वैधानिक उपायोके अवलम्बनका प्रतिपादन करते है। इंगलैण्डमे यही विचारधारा अधिक व्यापक है। यहाँके मजूर अधिक सुखी हैं। यहाँ समाजवादके प्रचारक सुखी विद्वान् लोग है और जबतक समाजका संचालन पूँजीवादी व्यवस्थाके अनु-सार हो रहा है तबतक वे लोग अपना सब कुछ त्यागकर गरीबोको दे देनेके लिए तैयार नहीं हैं। यह निर्विवाद है कि वे समाजवादके सिद्धान्तोमे विश्वास रखते हैं लेकिन ये लोग इसका प्रयोग हिसाद्वारा नहीं करना चाहते और न वर्तमान प्रचलित प्रथाको उखाड़ फेंककर नयी प्रथा कायम करनेके लिए

हिंसापर ही उतारू होना चाहते है। उनका कहना है कि पूँजीवाद धीरे-धीरे समाजवादकी तरफ अग्रसर हो रहा है। आवश्यकता इस बातकी है कि इस नयी व्यवस्थाके लिए जनताके मनोभाव और आर्थिक व्यवस्थाको तैयार किया जाय और इस तरह इस सुधारको वेगवान बनाया जाय। इस विचारधाराके लोग पार्लमेण्टके सदस्य बनते है, मंत्रिमण्डलमे शामिल होते है और धीरे-धीरे इस पूँजीवादी सरकारको समाजवादी बना देना चाहते है। लेकिन अधिकार पदपर आरूढ़ होनेके बाद इनका व्यवहार भी एकदम बदल जाता है और इनकी शासन-प्रणाली तथा कुलीन वर्गके अनुसार दलबन्दी शासन-प्रणालीमे किसी तरहका अन्तर नहीं प्रतीत होता। इस विचारधाराका सबसे नया प्रतिनिधि 'फेबियन सोसायटी' है। इस सोसायटीके सदस्य उग्र विद्वान् और प्रतिष्ठित व्यक्ति है। इनका विश्वास है कि धीरे-धीरे समाजवाद आप-से-आप सम्पन्न हो जायगा। इस दलका नाम प्राचीन रोमन सेनापति फेबियसके नामपर पड़ा। यह सेनापति शत्रुपर आक्रमण नहीं करता था बल्कि उसे थकाकर मार डालता था।

इसके प्रतिकूल दूसरी विचारधारा उन क्रान्तिकारियोंकी है जिनका विश्वास है कि पूँजीवादी इतने उदार और विचारशील नहीं है कि अपना अन्त करनेके लिए वे सद्भावना और न्यायसे काम लेगे। उनका कहना है कि दबावमे पड़कर ही पूँजीपति किसी तरहकी रियायत करनेके लिए तैयार होता है और वह इस तरहकी कोई रियायत कभी नहीं करता जिससे उसके अधिकारपर धक्का लग सके। शासनके यन्त्रोंपर अधिकार-

कर सुधारके पक्षमे यह दल नहीं है। उसका कहना है कि पार्लामेण्ट तथा डिमाक्रेसीकी माया एक प्रकारका जाल है जिसमें सुधारवादी समाजवादी फँस जाते है और इन्हे अपने मायाजालमे फँसाकर पूँजीवादी अपनी शक्तिको और भी मजबूत और दृढ़ बनाता जा रहा है। उनका कहना है कि तर्क और सद्भावनाका मनमाना प्रयोगकर पूँजीवादी अपनी सत्ता कायम रखनेमे पूर्ण समर्थ है। वह अपनी सत्ताका तभी त्याग करेगा जब उसके मुकाबलेमे शक्ति-सम्पन्न प्रतिद्वन्द्वी खड़ा हो जायगा जिसका मुकाबला वह नहीं कर सकेगा। इसलिए पूँजीपतियोके अनाचारका मुकाबला करनेके लिए मजूरोंका संगठित होना अनिवार्य है। इतिहास यही बतलाता है कि समाजमे परिवर्तन श्रेणी और वर्गद्वारा ही उपस्थित किया जा सकता है इसलिए व्यक्तिको सुधारनेका यत्न करना निष्फल है। जबतक एक संगठित शक्तिशाली दल तैयार न कर लिया जाय तबतक सद्भावना और सदाशयता कोई मूल्य नहीं रखती। इसलिए पूँजीपतियोके चंगुलसे छुटकारा पानेका एकमात्र यही उपाय है कि मजूर वर्ग संगठित होकर क्रान्तिद्वारा इनके हाथसे सारा अधिकार छीन ले। इस दलके अनेक नाम है। मार्क्सवादी, वैज्ञानिक समाजवादी, बोल्शेविक, समाजवादी या रूसी समाजवादी अथवा साम्यवादी। समाजवादके मुकाबलेमें इस विचारधाराको साम्यवादके नामसे पुकारते हैं, अन्यथा दोनों सिद्धान्तोंके लिए समाजवाद एक ही नाम प्रचलित है।

इस विचारधाराके सबसे बड़े प्रतिपादक कार्लमार्क्स (१८१८–१८८३) थे। कार्लमार्क्स जर्मन यहूदी थे जो कि दुनि-

हास, दर्शन तथा कानूनके पूर्ण विद्वान् तथा सफल पत्रकार थे। पत्रकारीमे उनसे और शासकोसे संघर्ष उत्पन्न हो गया और उन्हे जर्मनी छोड़कर पेरिस जाना पड़ा। पेरिसमे उन्होने समाजवादी तथा अराजकवादी साहित्यका पूर्ण अध्ययन किया और समाजवादी बन गये। पेरिसमे ये फ्रीडरिच इंगल्सके संसर्गमे आये। इंगल्स जर्मनी जातिके थे। इंगलैडमे उनका कारखाना था। राबर्ट ओवेनके प्रभावमे आकर ये समाजवादी बन गये थे। इसके बाद इंगल्स और मार्क्स साथ मिलकर काम करने लगे। १८४८ मे उन्होने कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो (समाजवादी घोषणापत्र) प्रकाशित किया। उस घोषणापत्रमे उन्होने उदारवादियोकी स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभावके घोषित प्रचारकी कड़ी आलोचना की। उन्होने दिखलाया कि ये शब्द पूँजीपतियोके लिए आवरणका काम कर रहे है और इनकी आड़मे राष्ट्र पूँजीपतियोकी रक्षा कर रहा है और जनताकी हालतको सुधारनेका कोई यत्न नहीं हो रहा है, उनकी दशा पूर्ववत् दयनीय बनी है। उन्होने समाजवादके अपने सिद्धान्त स्थिर किये और घोषणापत्रके अन्तमे लिखा :—
"विश्वके मजूरो! संगठित हो जाओ। तुम्हारे पास दासताकी बेडियोके अतिरिक्त खोनेके लिए और कुछ नहीं है और जीतनेके लिए तुम्हारे सामने सारा विश्व पड़ा है।" इस घोषणापत्रका विश्वके मजूरोपर व्यापक प्रभाव पड़ा।

१८६४ ई० मे मार्क्सने यूरोपके भिन्न भिन्न देशोके समाजवादी दलको एकत्र किया और "अन्तर्राष्ट्रीय मजूर संघ" (इण्टर नेशनल वर्किंग मैन्स असोसिएशन) की स्थापना की।

यही "फर्स्ट इण्टर नेशनल" के नामसे पुकारा जाता है। इस संस्थाका उद्देश्य भिन्न-भिन्न देशोंके समाजवादियोंको संगठित कर एक निर्दिष्ट प्रणालीके अनुसार मजूरोंमे समाजवादी भावना-का प्रचारकर अन्तिम घड़ीके लिए उन्हे तैयार करना था। लेकिन आठ सालसे ज्यादा यह संस्था नहीं चल सकी। १८७१ मे पेरिसमे पहले पहल समाजवादी विद्रोह खड़ा हुआ। इस विद्रोह-द्वारा जनसाधारणने पेरिसमें अपना शासन स्थापित करनेका यत्न किया। इस शासनका नाम पेरिस कम्यून रक्खा गया था। इस विद्रोहका दमन पूर्ण निर्दयताके साथ किया गया और इसके बाद यूरोपके प्रत्येक राष्ट्रने मजूर संगठनके साथ कड़ाईका व्यवहार आरम्भ किया। यहाँतक कि प्रथम इण्टर नेशनलके कार्यालयको १८७२ मे न्यूयार्क ले जाना पड़ा। न्यूयार्क मजूरोंके कार्यक्षेत्रसे इतनी दूर पड़ता था कि वहाँ रहकर वह जीवित नही रह सका और धीरे-धीरे उसका वहीं अन्त हो गया।

अराजकताके प्रभावके कारण फ्रांसके समाजवादने दूसरा ही रूप ग्रहण किया। उसका नाम सिण्डिकलिज्म पड़ा। इस शब्द-की उत्पत्ति फ्रेंच शब्द सिण्डिकेटसे है जिसका अर्थ मजूरोंका संगठन या ट्रेड यूनियन होता है। अराजकोंकी भाँति इन लोगोंने भी राजको उठा देने अथवा जहाँतक सम्भव हो उसका अधिकार सीमित कर देनेका यत्न किया। इसलिए उन्होंने यह यत्न किया कि प्रत्येक कारखाना स्वशासित हो अथवा उसमें काम करनेवाले मजूरोंका उसपर अधिकार हो। उन्होंने यह व्यवस्था की कि शासनमें प्रत्येक सिण्डिकेटके प्रतिनिधि रहें और उन्हींकी सभा राजकी सारी देख-भाल करे, केवल उसे [illegible] अन्दरूनी

मामलेमे हस्तक्षेप करनेका अधिकार न रहे। इसे सम्पन्न करनेके लिए सिण्डिकेटने मजूरोकी व्यापक हड़तालकी घोषणा की ताकि जबतक उद्देश्यकी सिद्धि न हो जाय तबतक देशका औद्योगिक जीवन मुर्दा बना रहे। मार्क्सवादियोने सिण्डिकलिज्मका समर्थन नहीं किया।

१८८९ ई० मे अमस्र्टडममे मजूरोका एक इण्टर नेशनल कायम हुआ। यह सेकेण्ड इण्टरनेशनलके नामसे प्रसिद्ध है। यह १९१४ तक कायम रहा। प्रथम विश्व-युद्धके आरम्भके साथ ही उसका अन्त हो गया। इस इण्टरनेशनलमे अनेक व्यक्ति नरम विचारधाराके थे, जिन्होंने बादमे अपने-अपने देशोमे सरकारी पद ग्रहण कर लिया, पार्लामेण्टके सदस्य बने और प्रधान मन्त्रीतक हो गये। अधिकार-पदपर आसीन होते ही वे मजूरोकी सुध भूल गये और शासन-यन्त्रके अंग बन गये।

१९०३ मे रूसके साम्यवादियोको विकट सङ्कटका सामना करना पड़ा क्योकि उनमे दो दल हो गया—विकासवादी और क्रान्तिकारी। लेनिन क्रान्तिकारी दलका नेता था और उसके अनुयायियोका बहुमत था। लेनिन पश्चिमी समाजवादियोकी पार्लामेण्टरी-मनोवृत्तिका विरोधी था। उसका कहना था कि ये पदलोलुप है और टुकड़ोके लिए लालायित रहते है। इस तरह रूसके समाजवादी बोलशेविक (बहुमत) और मेंशेविक (अल्पमत) दलमे विभक्त हो गये। लेनिनका दल बोलशेविकके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

शासनके मुकाबले अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए समाजवादियोने मजूरोकी सामूहिक हड़तालको साधन बनाया। रूसके

समाजवादियोने १९०३ से जारके शासनके खिलाफ इसी अस्त्र-को ग्रहण किया। पीटसवर्ग तथा मास्को आदि बड़े-बड़े शहरो मे हड़तालको सफल बनानेके लिए संस्थाएँ कायम की गयीं। इस संस्थाका नाम सोवियत पड़ा। सोवियतका अर्थ है सभा। आरम्भमे इस संस्थाका उद्देश्य केवल हड़तालोंका सङ्गठन करना था, बादमे इसका उद्देश्य मजूर-आन्दोलनकी देख-रेख करना हो गया। अन्तमें नगर-कमेटी या म्युनिसिपैलिटीपर इसका अधिकार हो गया। १९१७ में जब क्रान्ति हुई तो यही सोवियत जारके मुकाबले उठ खड़ी हुई और यूनियन आफ सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक कायम किया।

१९१९ मे युद्ध समाप्त हो जानेके बाद लेनिनने मजूरोका नया इण्टरनेशनल मास्कोमे कायम किया। यह पूर्ण रूपसे साम्य-वादी था और इसका नाम थर्ड इण्टरनेशनल पडा। इसे कामि-नटर्न भी कहते है। यह पूर्णरूपसे साम्यवादी है और किसी रूपमे साम्राज्यवाद और पूँजीवादका कट्टर विरोधी है। पूँजी-वादियों और साम्राज्यवादियोंके साथ किसी तरहका समझौता न कर यह इनका समूल नाश कर इनके स्थानपर सर्वहारा या मजूरोका शासन कायम करना चाहता है और इस तरह यह वैयक्तिक सम्पत्तिका पूर्णतया नाश करना चाहता है। द्वितीय इन्टरनेशनलके सदस्योंने इसे जल्दीबाजी और आतुरता बतलाकर द्वितीय इन्टरनेशनलको पुनः जीवित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि समाजवाद दो भागोमे विभक्त हो गया। दोनों एक दूसरेके विरोधी और दोनो आपसमें एक-दूसरेसे इस प्रकार घृणा करते हैं जितना अपने समान-शत्रु पूँजीवादियोंसे

भी घृणा नहीं करते। लेकिन द्वितीय विश्व-युद्धकी परिस्थितिसे विवश होकर रूसने अपनी नीति बदली और १९४३ मे अपना अन्तर्राष्ट्रीय रूप त्यागकर राष्ट्रीय नीति अपनायी और इसके फलस्वरूप कामिण्टर्नका अन्त कर दिया। जो लोग इस तरहकी राष्ट्रीय नीतिके विरुद्ध थे, जिसका रूसके वर्तमान अधिनायक' स्टालिनके नेतृत्वमे लगातार प्रयोग होता रहा, उन लोगोने ट्राटस्कीके नेतृत्वमे १९३६ मे स्थापित चतुर्थ इण्टरनेशनलको अपनाया।

रूसमे सोवियत शासनकी स्थापनाके बाद जन-साधारणने समाजवादको क्रान्तिकारी प्रधान सस्था माना है। ये लोग कार्लमार्क्सको अपना पथ-प्रदर्शक मानते है जिसने इससे सम्बन्ध रखनेवाले सिद्धान्तोका १८६७ मे लिखित अपनी पुस्तक कैपिटल-में समावेश किया है। कार्लमार्क्सके कुछ प्रधान सिद्धान्तोकी यहाँ चर्चा कर देना अनुचित नही होगा—

२—मार्क्सवाद

इतिहासकी मौलिक व्याख्या

मार्क्स पहला व्यक्ति था जिसने ऐतिहासिक घटनाओका अध्ययन नये रूपसे किया। ऐतिहासिक घटनाओके आधारपर उसने कुछ सिद्धान्त स्थिर कर यह 'दिखलानेका यत्न किया कि अनेक युगोसे मानव-जीवनमें जो परिवर्तन होते आये हैं उनका आधार ये ऐतिहासिक घटनाएँ है। उसके अनुसार यदि हमे मनुष्यको आगे बढ़ाना है तो हमें सबसे पहले उन नियमोको समझना चाहिए जिनके अनुसार मानव-समाज जिन्दा रहता है और आगे बढ़ता है और तब हम प्रकृतिके विकासका अध्ययन

करते हुए ऐतिहासिक शक्तिके आधारपर अपने ध्येयतक पहुँच सकते है। इतिहासका यह वैज्ञानिक अध्ययन मार्क्सकी सबसे बड़ी देन है और उसके इस दृष्टिकोणका प्रभाव हजारों व्यक्तियो-पर पड़ा है। उसके विरोधी भी उसकी इस महानताको स्वीकार करते हैं। मार्क्सकी इस व्याख्याके फलस्वरूप उसके द्वारा प्रतिपादित उस समाजवादका नाम वैज्ञानिक समाजवाद पड़ा। उसने इतिहासकी जो वैज्ञानिक व्याख्या की उसके अनु-सार तीन महत्वपूर्ण सिद्धान्त स्थिर हुए—

(क) द्वन्द्व न्याय

उन्नीसवीं शताब्दीके मध्य भागमे जर्मनीमे हीगल नामका दार्शनिक हुआ था। मार्क्सपर उसकी शिक्षाका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। उसकी शिक्षासे प्रभावित होकर मार्क्सने समस्त इतिहास—अतीत, वर्तमान और भविष्य—को तर्ककी कसौटीपर कसकर उससे एक निश्चित परिणाम निकाला। हीगलने इसका नाम डायलेक्टिक (द्वन्द्व न्याय) रखा था। यूनानी दार्शनिकोंके अनुसार डायलेक्टिक (द्वन्द्व न्याय) विवादकी एक कलाका रूप था—इस तरह दर्शनके विविध विरोधाभासोंके समाधानके लिए विवादके जिस तरीकेका सहारा लिया जाता था उसका नाम डायलेक्टिक (द्वन्द्व न्याय) पड़ा। हीगलने इस सिद्धान्तको व्यापक और स्थिर रूप देना चाहा। इसलिए विशेषतः उसके तथा उसी विचारधाराके अन्य लोगों द्वारा यह प्रतिपादन किया जाने लगा कि केवल विचारोंमें ही नहीं बल्कि प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक घटनाओंमे भी विकासवादके अनुसार इसी आधार-पर उलट-फेर हुआ करते हैं। हीगलने तर्कमें विचारोंकी गतिका

विश्लेषण किया और यह सिद्धान्त स्थिर किया कि विचारोका प्रवाह वास्तविकताकी ओरसे उसके निषेधात्मक रूपकी ओर प्रवाहित होता है। उसके बाद वह एक मध्यम वृत्ति ग्रहण करता है जिससे वास्तविकता तथा उसके निषेधात्मक रूप दोनोकी अनिवार्यता सिद्ध हो जाती है। उसने इन तीनो अवस्थाओका नाम वाद (Thesis) प्रतिवाद (Antithesis) और युक्तिवाद (Synthesis) रखा। हीगलका मत था कि ऐतिहासिक घटनाएँ भी इसी रूपमे प्रकट होती है। उनका भी यही आधार है। लेकिन मार्क्सने हीगलके इस सिद्धान्तको पूर्णतया स्वीकार नहीं किया। मार्क्सका कहना था कि यद्यपि स्थूल पदार्थोंका विकास डायलेक्टिक (द्वन्द्व न्याय) के अनुसार होता है, लेकिन उनका यह विकास आप-से-आप होता है। विचारोका इनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसके प्रतिकूल स्थूल पदार्थोंमे जो परिवर्तन होते है उनका प्रभाव विचारोपर पड़ता है और उनके अनुसार विचारोका रूप बदलता है। अर्थात् हीगलका मत यह था कि पहले विचारोका उदय होता है और उसके बाद स्थूल पदार्थोपर उसकी प्रतिक्रिया होती है। इसके प्रतिकूल मार्क्सका मत था कि पहले स्थूल पदार्थोंमे परिवर्तन होते है और इन परिवर्तनोके फलस्वरूप विचारोका निर्माण होता है। मार्क्सके अनुसार इतिहासकी प्रत्येक घटना अपने विरोधी तत्वको जन्म देती है। कालान्तरमें उस विरोधी तत्वका भी लोप हो जाता है और उसका स्थान नया तत्व ग्रहण करता है। उदाहरणके लिए पूँजीवाद (वाद) के विकासका फल मजूर आन्दोलन है (प्रतिवाद) है जो उसका विरोधी तत्व है। मजूर-आन्दोलन धीरे-धीरे शक्ति ग्रहण

करता है और पूँजीवादका नाश कर साम्यवाद (युक्तिवाद) अर्थात् वर्गहीन आर्थिक व्यवस्थाको स्थापित करता है। इसे इस प्रकार और स्पष्ट किया जा सकता है। आरम्भमे पूँजीपति थोड़े धनसे काम आरम्भ करता है और चन्द मजूरोंसे काम लेता है। ज्यों-ज्यों धनकी वृद्धि होती है उसका कारोबार आगे बढ़ता है अधिकाधिक मजूर वह रखने लगता है। इस तरह ज्यों-ज्यों पूँजीवादकी शक्ति और समृद्धि बढ़ती है त्यों-त्यों मजूरोंकी संख्या और बलकी भी वृद्धि होती जाती है। दोनों एक दूसरेके शत्रु होते हुए भी एकके कारण दूसरेकी वृद्धि होती रहती है। इस तरह धीरे-धीरे मजूर वर्गका बल इतना ज्यादा बढ़ जाता है कि वह पूँजीपतियोंके जुल्म और अत्याचारको समूल नष्ट-कर सारे कारोबारको अपने हाथमे ले लेता है और जनसाधारणके लिए उसका सञ्चालन करता है। मैदानसे पूँजीपतिका लोप होते ही वर्गभेदका स्वभावतः अन्त हो जाता है और सभी लोग एक वर्गहीन समाजके व्यक्ति हो जाते है। इस तरह ऐतिहासिक घटनाएँ अनिवार्य रूपसे धीरे-धीरे आगे बढ़ती है और हमेशा सङ्घर्ष उपस्थित करती है और जो अवस्था कायम रहती है, उसीमेसे किसी शक्तिका प्रादुर्भाव होता है जो उस वर्तमान अवस्थाका अन्त कर देती है।

विश्लेषण

(१) मार्क्सने इस सिद्धान्तका प्रतिपादन पूरी कट्टरतासे किया। उसका मत था कि जीवनकी कोई भी घटना इस ऐतिहासिक तथ्यसे बचकर नहीं जा सकती। लेकिन यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि मानव-जीवनकी सारी घट-

नाएँ हिसाबके अंकोकी भाँति स्थिर नियमके अनुसार ही घटित होती रहती है। (२) इस आवश्यकताकी पूर्तिके लिए मार्क्सने मानव-जीवनकी घटनाओमे डायलेक्टिकके प्रयोगका यत्न किया जिसे विचारोकी गतिके विश्लेषणसे हीगलने स्थापित किया था। लेकिन सूक्ष्म-विचार और स्थूल जगत्मे प्रतिदिन घटित होनेवाली घटनाओमे एकरूपता नही रहती इसलिए सूक्ष्म विचारोके लिए जो सत्य है वही व्यावहारिक जीवनके लिए सत्य नही भी हो सकता। इस तरहकी कोरी सिद्धान्तकी बाते हीगलके सम्बन्धमे तो समझमे आ सकती है क्योंकि वह पूरी तरह आदर्शवादी था लेकिन मार्क्सके सम्बन्धमे इसे स्वीकार करना कठिन प्रतीत होता है क्योंकि वह पूरी तरह व्यवहारवादी या भौतिकवादी अपनेको बतलाता था। इतना ही नही मार्क्सने अपने इस सिद्धान्तका नाम डायलेक्टिक मेटिरियलिज्म (द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद) रखा है। इसमे भी विरोधाभासकी झलक है। (३) मार्क्स जिस परिणामपर पहुँचा है उसे अनिवार्य सिद्ध करनेके लिए उसके अनुयायी डायलेक्टिक उपायोका जिस तरह प्रयोग करते हैं उसे भी सङ्गत नहीं कहना चाहिए। लेकिन यदि हीगलके डायलेक्टिकको मानव-जीवनके स्थूल जगत्मे सच स्वीकार न किया जाय, तब क्या होगा? सब-कुछ होते हुए भी हीगलका डायलेक्टिक स्वतन्त्र सिद्धान्तका दावा नही कर सकता। यदि इसे स्वतन्त्र सिद्धान्तके रूपमे स्वीकार भी कर लिया जाय तो भी मार्क्सकी भाँति हमलोग साम्यवादको मानव-इतिहासका अन्तिम लक्ष्य स्वीकार करनेके हेतु यदि इसका प्रयोग करनेके लिए तैयार न हो तो कैसा होगा क्योकि साधारणतः

ठित सार्वजनिक आन्दोलनके फलस्वरूप कानूनोके निर्माणसे इन देशोमे मजूरी तथा काम करनेकी दशामे जो सुधार और परिवर्तन होते रहते है, उनपर मार्क्सका ध्यान नही था। इन सुधारोने मजूरोके विद्रोहको रोकनेमे बहुत बड़ा काम किया है और इस तरह मार्क्सके सिद्धान्तको गलत बना दिया है। (६) सम्पत्तिहीन तथा अर्ध सम्पत्तिवान मध्यम श्रेणीके सम्बन्धमे मार्क्सने जो मत कायम किया था उसने भी उसके सिद्धान्तको गलत साबित कर दिया। क्योकि आज उसी श्रेणीके लोग फासिस्ट तथा साम्राज्यवादी देशोमें पूँजीपतियोका साथ देकर साम्यवादके मुकाबले पूँजीवादको नवजीवन प्रदान कर रहे है और इस तरह मार्क्सकी भविष्यवाणीको गलत बना रहे है। मार्क्सकी कल्पनाके अनुसार इस वर्गके लोग सर्वहारा वर्गकी संख्या बढ़ानेके लिए उनमे शामिल नही हो रहे है। (७) मार्क्सने राष्ट्रीयताकी भावनाको कोई महत्व नही दिया था। यह भावना पूँजीवादियोके पक्षमे बहुत बड़ा काम कर रही है। राष्ट्रीयताकी यह भावना पूँजीवादियोके खिलाफ विश्वके मजूरोको एक सूत्रमे सगठित होनेके मार्गमे बाधा स्वरूप खड़ी है। वर्ग-की भावनाकी अपेक्षा राष्ट्रीय भावनाका महत्व बहुत अधिक हो रहा है। इसका परिणाम यह है कि एक राष्ट्रका मजूर दूसरे राष्ट्रके मजूरकी निर्मम हत्या करनेके लिए सदा तैयार रहता है, इसे अचरजकी बात भी नही मानना चाहिये, क्योकि ब्रिटेनके मजूर उस पूँजीवादी प्रथासे अपनी जीविका पाते हैं जो भारतको लूट रही है। यदि ब्रिटिश मजूर इस लूटको रोकना चाहे तो उनके मुँहका कौर छिन जायगा। इसलिए वह

अपने मालिक पूँजीपतिके समान ही साम्राज्यवादी बन जाता है। ये उपकरण मार्क्सके निर्णयोके प्रतिकूल जाते है।

इन सब बातोके होते हुए भी मार्क्सने इतिहासको वर्गयुद्ध और वर्ग सङ्घर्षका आधार बनानेका जो प्रयास किया है, वह कम मूल्यवान नहीं है। विश्वके इतिहासके अनेक भागोकी आधुनिक घटनाओपर इसका बहुत ज्यादा प्रकाश पड़ा है। इन घटनाओने प्रकट कर दिया है कि यह इतिहास पूँजीवाद तथा उसके द्वारा शोषित जनसमुदायके संघर्षके अलावा और कुछ नहीं है। मार्क्सने यह भी प्रकट किया है कि अतीत इतिहास भी इसी तरहकी घटनाओसे पूर्ण है। उदाहरणके लिए सामन्तशाहीके साथ पूँजीवादका निरन्तर सङ्घर्ष होता रहा और उसके अनुसार वर्तमान युगमे पूँजीवाद और मजूरवर्गके बीच अन्तिम वर्ग युद्ध चल रहा है। जबतक एक वर्ग दूसरे वर्गका शोषण करता रहेगा तबतक इस तरहका वर्ग-युद्ध अनिवार्य है। लेकिन समाजवादकी स्थापनाके साथ ही शोषणका अन्त हो जायगा और इसके साथ ही एक वर्गकी इच्छाका पालन करनेके लिए दूसरे वर्गको दबानेका राष्ट्रके कामका अन्त हो जायगा। उस समय राष्ट्रकी आवश्यकता नहीं रह जायगी और अराजकोका वर्ग हीन समाजकी स्थापनाका स्वप्न पूरा हो जायगा जिसमे प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक होगा। यदि इस सिद्धान्तसे दूसरा कोई लाभ न भी हो तो इससे इतना लाभ तो अवश्य हो जाता है कि क्रान्तिकारी मजूरवर्गको इतना आश्वासन अवश्य मिल जाता है कि प्रकृतिके नियमके अनुसार अन्तिम विजय उनकी होगी और मनुष्यके उस अन्तिम

ध्येयकी पूर्तिके लिए इतिहासकी गतिको सहायता पहुँचाना उनका कर्त्तव्य है।

(ख)—सामाजिक परिवर्तनके आधार भौतिक साधन

इतिहासके अध्ययनसे मार्क्सने दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह प्रतिपादित किया कि मानव-समाजके पूरे ढाँचे—उसके विधान, संस्थाएँ, रीति-रिवाज, राजनीतिक सङ्गठन, यहाँतक कि उसके सदाचार—पर उन साधनोका प्रभाव पड़ता है जिसका प्रयोग वह उत्पादनके लिए करता है। वे साधन आधारभूत हैं और प्रत्येक अवस्थामे उनके इर्द-गिर्द सामाजिक जीवनकी दुरूहताका उदय होता रहता है। उत्पादनके साधनोके परिवर्तनके साथ-ही साथ ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिवर्तन होते रहते है। उदाहरणके लिए ज्यो ही हाथसे प्रयोग किये जानेवाले औजारोका स्थान शक्तिद्वारा चलायी जानेवाली मशीने ग्रहण करती है त्यो ही एक नयी तरहकी सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्थाका उदय होता है और उसके साथ ही नयी संस्कृति तथा सदाचारका जन्म होता है। इससे जनताके विचार और जीवनमे भारी परिवर्तन हो जाता है। हमारे ही देशमे देख लीजिये। पश्चिमके उद्योगवादने ग्राम-सङ्गठन, परम्परा, रीति-नीति, यहाँतक कि हमारे धार्मिक विचारोतककी जड़ हिला दी है। प्राचीन-युगमे आत्म-निर्भर गाँव, जाति-प्रथा तथा संयुक्त परिवारकी प्रणालीका तेजीसे अन्त हो रहा है। पुराने जमानेकी सारी बाते— आरामसे काम करना, एक-दूसरेके सुख-दुःखमे शामिल रहना, शालीनता, सौम्यता, दयालुताका लोप होता जा रहा है और उनका स्थान ग्रहण कर रही है अर्थ-लोलुपता,

भौतिक विलासिता, दिखावट और व्यक्तिगत स्वार्थ जिसमें दूसरोंके सुख-दुःखकी चिन्ताके लिए कोई स्थान ही नहीं है।

इस सम्बन्धमे मार्क्सके विचार कितने भी सही क्यों न हो लेकिन समस्त ऐतिहासिक घटनाओंका आधार आर्थिक मान लेना पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता। यह बात निर्विवाद है कि मानव-जीवनका प्रधान लक्ष्य जीविकाका साधन ढूँढना है और मानव-इतिहासकी प्रधान घटनाएँ इसी अर्थ-शास्त्रपर अवलम्बित है। लेकिन इसके साथ ही यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इसके अतिरिक्त अन्य बाते भी हैं जिनका प्रभाव सामाजिक परिवर्तनोंपर पड़ता है, जैसे ज्ञान, सदाचार कला तथा धर्म मानव-जीवनको प्रभावित करनेवाली अन्य घटनाओंके महत्वकी उपेक्षा कर केवल एक घटना—अर्थात् आर्थिक घटनाको ही सारा श्रेय दे देना समीचीन नहीं कहा जा सकता। आर्थिक घटनाओंको ही इतना अधिक महत्व प्रदान करना वर्तमान युगका अभिशाप है और विश्वमे जो घोर रक्तपात हो रहा है तथा सङ्घर्ष बढ़ रहा है उसकी जिम्मेदारी इसीपर है। इसलिए मानव जीवनपर प्रभाव डालनेवाली किसी एक घटनाको अत्यधिक महत्त्व प्रदान करनेकी प्रवृत्तिको रोकना आवश्यक है।

मार्क्सके मतानुसार सामाजिक तथा सदाचारिक परिवर्तन उत्पादनकी विधिपर निर्भर करता है और किसी समुदायकी सभ्यताकी कसौटीकी अन्तिम परख भी वे ही हैं। उत्पादनकी विधि जितनी पेचीदा और पूर्ण होगी उनका प्रयोग

करनेवाले उतने ही अधिक सभ्य समझे जायँगे। इस तरह सभ्यता अन्तःकरणके विकासकी वस्तु न रहकर बाहरी दुनिया अर्थात् उत्पादनके साधन-यन्त्रों आदिके विकासकी वस्तु बन जाती है। इस कसौटीपर कसे जानेपर बुद्ध, ईसा, प्लेटो तथा शेक्स-पियर आदिम व्यक्ति हो जाते है और आजकलका लारी हाँकने-वाला या कल-कारखानेका मशीन चलानेवाला कही अधिक सभ्य माना जायगा जो हर तरहका दुराचार करता रहता है। उपरोक्त उदाहरणसे ही इस सिद्धान्तकी अयथार्थता सिद्ध हो जाती है। यह बात अस्वीकार नही की जा सकती कि सभ्यताकी अनेक कसौटियोमेसे एक कसौटी उत्पादनके साधनोका उन्नत रूप था पूर्णता है और वहाँतक उन्हे श्रेय दिया जा सकता है लेकिन सभ्यताका सम्पूर्ण साधन उत्पादनकी विधिको मान लेना और सभ्यताको उसका ही परिणाम मानना कभी भी उपयुक्त नही कहा जा सकता और न इसका प्रतिपादन ही हो सकता है।

इसके साथ ही यदि मार्क्सके इस भौतिकवादके सिद्धात-को पूर्णतया स्वीकार कर लिया जाय और यह मान लिया जाय कि मानव जीवनके ऐतिहासिक परिवर्तनोपर एकमात्र इसीका प्रभाव पड़ता है तब तो मनुष्यको एकदम भाग्यवादी बना देना होगा अर्थात् सङ्कट-कालमे वह अपनेको हर तरहसे लाचार बोध करेगा क्योकि जब भौतिक साधन ही सब कुछ है तब मनुष्य स्वतः कुछ नही कर सकता। इसलिए सुव्यवस्थित आर्थिक व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए मनुष्यकी चेतनाको अपील करना निष्प्रयोजन है। हमे तो सबसे पहले परिस्थितियोमे परिवर्तन लानेकी आवश्यकता है। इसके बाद तो व्यक्तिके

दृष्टिकोण और व्यवहारमे आप-से-आप परिवर्तन हो जायँगे। और यदि मनुष्यकी चेतनामें जागृति उत्पन्न होनेसे पहले ही भौतिक वातावरणमे परिवर्तन हो गया तो उस परिवर्तनका फल परिस्थितिका उग्रतम विवर्तन या क्रान्ति होगा। इसलिए मार्क्सके सिद्धान्तके मुख्य अङ्ग हिंसा और क्रान्ति है और आदर्शवादी समाजवादियोके समझा बुझाकर राजी करनेकी नीतिके लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है।

यह निश्चित है कि मार्क्सका यह उद्देश्य कभी नहीं था कि उसके सिद्धान्तका पालन इतनी जडतासे हो क्योंकि मनुष्यके विवेक और चेतनाकी अपीलपर उसे स्वयं विश्वास था। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उसका 'कैपिटल' है। यदि उसे ऐसा विश्वास न होता तो अपने अभिप्रायको समझानेके लिए वह इतना मोटा पोथा लिखनेका प्रयास न करता। यदि उसकी दृष्टिमे व्यक्ति नगण्य होता तो ऐतिहासिक विकासके क्रमकी शिक्षा देनेकी उसे क्या आवश्यकता थी। इससे इतना तो मान ही लिया जा सकता है कि यद्यपि मार्क्सने यह बात मान ली थी कि साधारणतः व्यक्ति अपने आसपासकी परिस्थितियोंका गुलाम है पर साथ ही उसने यह भी मान लिया था कि उनमे कुछ ऐसे व्यक्ति भी है जो परिस्थितियोसे ऊपर उठ सकते है और उन्हे बदल सकते है। लेकिन यदि यह बात स्वीकार कर ली जाती है कि ऐसे असाधारण व्यक्ति है जो अपने आसपासकी परिस्थितियोंसे ऊपर उठ सकते हैं और थोड़ी मात्रामे ही सही उन्हे प्रभावित कर सकते है, तब मार्क्सके इस सिद्धान्तको स्वीकार कर लेनेपर भी कि व्यक्तिकी सामाजिक और भौतिक परिस्थितियाँ उसके

विचारों और व्यवहारोंको प्रभावित करनेमे महत्त्वपूर्ण काम करती हैं, हमलोग इस भौतिक सिद्धान्तको नहीं स्वीकार कर सकते कि व्यक्ति परिस्थितियोका गुलाम है और उसपर उसका कोई नियन्त्रण नही है।

विगत शताब्दीके भौतिकवादी दार्शनिकोके साथ सबसे बडी कठिनाई यह है कि तत्कालीन भौतिक विज्ञानके विकासका उनपर इतना जबर्दस्त प्रभाव पडा कि उन्होने सब कुछ— यहाँतक कि व्यक्तिकी निर्माण-योग्यताको भी—भौतिक आवश्यकताकी पूर्तिका ही एकमात्र साधन मान लिया। यह बात स्मरण रखने-की है कि यद्यपि व्यक्तिकी निर्माण-क्षमताका बोध परिस्थितियो-के कारण ही हो सकता है और उससे अलग न तो वे काम ही करती है और न उनका अस्तित्व ही है तो भी वह इस बातको स्वीकर करनेके लिए तैयार नही है कि वह केवलमात्र परिस्थितियोका गुलाम है और उनसे भिन्न उसका कोई अ-स्तित्व नही है। महात्मा गान्धीको ही ले लीजिए, वे अपने युगकी ही देन है। उनके जीवन, उनके कार्य, उनके उपदेश सबपर देशकी वर्तमान प्रचलित अवस्थाका प्रभाव पड़ा है। लेकिन इसके साथ-ही-साथ वे इस युगके स्रष्टा भी है। इस युगमे उन्होंने ऐसी अवस्थाकी सृष्टि की है जिसकी कल्पना भी इस युगके पूर्ववर्ती युगके लोग नही कर सकते थे। भारतीय महि-लाओका परदा त्यागकर मैदानमे आना और पुलिसकी बन्दूको-का निर्भीकताके साथ मुकाबला करना, निरीह किसानोका संसारके सबमे शक्तिशाली साम्राज्यके मुकाबलेमे उठ खड़ा होना और मालगुजारी देनेसे इन्कार करना, तथा उन वीर

पठानोंका जिनमें सहनशीलताका सर्वथा अभाव था—चुपचाप सीना खोलकर खड़े हो जाना और पुलिसकी गोलियोंको बर्दाश्त करना, क्या प्रकट करता है ? ये आश्चर्यजनक परिवर्तन महात्मा गांधीकी प्रेरक शक्तिका फल है जिसके बिना यह होना असम्भव था। परिस्थितियोंको ही सब कुछ और व्यक्तिको नगण्य मान लेनेके सिद्धान्तके अन्धप्रतिपादनके लिए इन स्थूल तथ्योंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमलोगोंको इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा कि परिस्थितियाँ मनुष्यको अवश्य बनाती हैं लेकिन व्यक्ति भी परिस्थितियोंका निर्माण करता है। एक दूसरे दूसरेपर आश्रित हैं और एकका दूसरेपर प्रभाव पड़ता है। यदि इस तथ्यको स्वीकार कर लिया जाता है कि व्यक्तिका प्रभाव भी परिस्थितियोंपर पड़ता है तब यह भौतिक सिद्धान्त कि इतिहासके निर्माणमें केवल भौतिक और सामाजिक वातावरणका ही प्रभाव पड़ता है, व्यर्थ हो जाता है।

(न) मार्क्सकी हिंसा और वर्गयुद्ध

ऊपर हमने जो कुछ कहा है उसकी सत्यताको स्वीकार कर लेनेका अर्थ होगा कि परिस्थितियोंमें परिवर्तन लानेके लिए व्यक्तिकी चेतना और विवेकशक्तिको अनुप्राणित करनेसे भी काम चल सकता है। इस अवस्थाको स्वीकार कर लेनेके बाद उस क्रान्तिके लिए प्रेरणाकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होगी क्योंकि उसका केवलमात्र आधार पशुबल है। वर्गयुद्धकी आवश्यकता भी नहीं रह जाती क्योंकि वर्गयुद्धका उद्देश्य होगा प्रचलित शासनकी निर्दयताके

साथ कुचलकर उसके अस्तित्वको मिटा देना। उपरोक्त तथ्यके साथ हमे यह भी स्वीकार कर लेना होगा कि पूँजीपति भी चेतनायुक्त प्राणी है और समझानेपर वह उचित और सङ्गत बातको स्वीकार कर लेगा। इससे यह भ्रम नही पैदा होना चाहिए कि नयी आर्थिक व्यवस्था कायम करनेके लिए हमे पूँजीपतियोके सामने घुटने टेककर गिड़गिड़ाना और प्रार्थना-पत्र उपस्थित करना होगा क्योकि मार्क्सने स्पष्ट शब्दोमे लिखा है कि किसी वस्तुको प्राप्त करनेका यह तरीका नही है। केवल पार्लमेण्टरी उपायोसे बहुत ज्यादा लाभ नही हो सकता। शिक्षाद्वारा जनताका मत परिवर्तित कर उनमे जागृति उत्पन्न करना होगा और अहिसाके सिद्धान्तके आधारपर इस तरहका व्यापक आन्दोलन खड़ा करना होगा जिसके प्रभावसे कठोर-से-कठोर हृदय भी पिघल जाय और जनमतके सामने झुक जाय। इस तरहकी शान्तिमय और अहिसक क्रान्ति आवश्यक और अनिवार्य हो सकती है। हिसक क्रान्तिसे उद्देश्यकी सिद्धि नही हो सकती क्योकि हिसासे प्रतिहिसाका उदय होता है और इससे अत्याचारीके हृदयमे किसी तरहका परिवर्तन नही हो सकता। हमारे सामने तो हिन्दुस्तानका ही उदाहरण मौजूद है। महात्मा गान्धीने जो अहिसाका सङ्ग्राम चलाया वह सिद्धान्ततः पूर्ण नही था। तो भी प्रतिद्वन्द्वीके हृदयको जीतनेमे इसे बहुत कुछ सफलता मिली। अहिसक क्रान्तिका प्रभाव व्यक्तिके मस्तिष्क और चेतनापर पड़ता है और हिसक क्रान्ति पशुबलको निमन्त्रण देता है। मार्क्सवाद भौतिकताका उपासक है। उसकी दृष्टिमे नैतिकताका कोई मूल्य नही है। इसलिए वह पशुबलपर ही

निर्भर कर सकता है और हिंसक क्रान्तिको ही प्रेरणा देता है।

मार्क्सका द्वन्द्वन्यायका सिद्धान्त ही वर्गयुद्ध और हिंसाको प्रेरणा देता है। प्रतिवाद वादका विरोधी रूप है। इसलिए दोनोमें सङ्घर्ष और युद्ध अनिवार्य है। दोनोंके सङ्घर्ष और युद्धके फलस्वरूप ही युक्तवादकी स्थापना सम्भव है। लेकिन जैसा हमने ऊपर दिखलाया है, यदि यह प्रमाणित कर दिया जाय कि द्वन्द्वन्यायका सिद्धान्त मानवीय कार्योंके लिए अनिवार्य और आवश्यक नहीं है तब मार्क्सका यह सिद्धान्त कि समाजमें उत्तम आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था कायम करनेके लिए वर्गयुद्ध अनिवार्य है—आप-से-आप धराशायी हो जाता है। मार्क्सवादियोको यह देखना होगा कि क्या वर्गयुद्धका उसका सिद्धान्त हीगलके द्वन्द्वन्यायसे अलग होकर वैज्ञानिक समाहारके रूपमे अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रख सकता है? लेकिन इसकी कहींसे भी चेष्टा नहीं की गयी। इसलिए यह मान लेना पड़ेगा कि इसे तथ्य रूपसे अभीतक प्रतिपादित नहीं किया जा सका कि वर्गयुद्ध और हिंसा अनिवार्य है।

दूसरा प्रश्न यह उठता है कि वर्गयुद्धके आधारपर मार्क्सवादी सभी लोगोंका कल्याण कैसे कर सकते हैं और समाजमें भ्रातृभाव कैसे स्थापित कर सकते है क्योंकि भ्रातृभाव और वर्गयुद्ध दोनो एक दूसरेके विरोधी हैं। मजूर-वर्गकी स्वार्थ-बुद्धि आगे चलकर निःस्वार्थका रूप नहीं ग्रहण कर सकती। कँटीली झाड़ीसे उत्तम फसलकी आशा नहीं की जा सकती। स्वार्थ और घृणाके भावको उत्तेजना देकर प्रेमका राज्य नहीं स्थापित किया जा सकता। वर्गयुद्धका परिणाम राष्ट्रमे द्वेष, घृणा, कलह

और अन्याय होगा और पूँजीवादी वर्गको समूल नष्ट करके भी इस भावको नष्ट नहीं किया जा सकेगा। थोड़ी देरके लिए मान लीजिये कि इस उपायसे पूँजीवादी वर्गका अन्त हो गया। लेकिन क्या इस बातकी सम्भावना नहीं बनी रहती कि जिस शिक्षित वर्गके हाथमें शासनका सूत्र साम्यवादमें रहेगा, वह स्वयं उत्पीड़क बन जायगा? तब तो उसका अन्त करनेके लिए भी युद्धको प्रेरणा देनी पड़ेगी अर्थात् इस तरह लगातार वर्गयुद्ध होते रहेंगे और उनका कहीं अन्त नहीं होगा। इससे यह साफ है कि केवल अहिंसक मतपरिवर्तनके द्वारा ही देशमें सच्चे भ्रातृभावकी स्थापना हो सकती है। अपने शत्रुओंका निर्दयता पूर्वक संहार। समाजमें असद्भावना उत्पन्न करनेका एकमात्र साधन करता ही। यही वर्गयुद्धका अभिप्राय है जिसकी प्रेरणा मार्क्सवादसे मिलती है।

यदि आज रूस अपने सिद्धान्तकी स्थापनाके लिए संसारके किसी देशपर आक्रमण कर दे तो इसके द्वारा जिस भ्रातृभावकी स्थापना होगी उसका वास्तविक स्वरूप क्या होगा? रूस ऐसा कर सकता है क्योंकि साम्यवादके सिद्धान्तके अनुसार जबतक सारा विश्व साम्यवादी न हो जाय किसी एक देशमें सच्चा साम्यवाद कायम नहीं रह सकता। इस उपायसे तो सच्चे भ्रातृ-भावकी स्थापना दूर रही, रूस विश्व-शान्तिके लिए सदा संकट बना रहेगा। सिद्धान्त कितना ही उपयोगी क्यों न हो वह तल-वारके बलपर लोगोंके सिर लादा नहीं जा सकता। उसकी उपयोगिता बतलाकर लोगोंको उसके पक्षमें विनयके साथ ही लाया जा सकता है। व्यक्तिके रूपमें हमें प्रतिदिन यह शिक्षा

मिलती रहती है और इसको हमें राष्ट्रके रूपमें सीखना पड़ता है। दूकानदार ग्राहक पैदा करनेके लिए लाठी लेकर लोगोंके पीछे दौड़ता नहीं रहता। वह सद्व्यवहार और मीठे शब्दोंद्वारा ही लोगोंको अपनी ओर आकृष्ट करता है। अहिंसामें ही वह शक्ति है जो शत्रुको भी मित्र बना सकती है और फिर उन्हें विलग नहीं होने देती।

इस तरह हम देखते हैं कि साम्यवादके सुखद और आशाप्रद आदर्श-हिंसा और वर्गयुद्धके समान कलुषित उपायोंसे जुड़े हैं जिस सुखद भविष्यकी प्रेरणासे मनुष्य वर्गयुद्ध और हिंसाके लिए प्रवृत्त होता है उसकी प्राप्ति कभी नहीं होती क्योंकि समानता और भ्रातृभावकी नयी सृष्टिके लिए जिस वर्गयुद्धका आश्रय लिया जाता है उस वर्गयुद्धका कहीं अन्त नहीं दिखायी देता। साम्यवादी अलादीनके चिरागकी भाँति पलक भँजते समाजका रूप बदल देना चाहता है और इसके लिए वह इतना व्यग्र हो उठता है कि वर्गयुद्धके सिवा उसे दूसरा साधन दिखायी नहीं देता। लेकिन व्यवहार-जगत्में आनेपर उसे प्रकट होगा कि जिसे वह लम्बा रास्ता समझकर छोड़ देना चाहता है वास्तवमें वह लम्बा रास्ता नहीं है बल्कि जिसे नजदीकका मार्ग समझकर वह अपनाता है वही लम्बा रास्ता है। हिंसाके उस मार्गका आश्रय लेकर वह अपने अभीष्टकी सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मार्क्सवादके द्वन्द्वन्याय तथा मानव प्रकृतिकी भौतिकवादिता जिसका परिणाम नृशंस वर्गयुद्ध और क्रूर क्रान्ति है, मान्य नहीं हो सकते। यह सम्भव

है कि अभीतक इतिहासमे जबर्दस्ती अधिकार छीननेके ही उदाहरण पाये जाते है, लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि सदा यही होता रहेगा। इसके प्रतिकूल इतिहासके अध्ययनसे हमे अपने पूर्वजोकी भूलोसे चेतावनी ग्रहण करनी चाहिए। क्योंकि इतिहाससे इतनी शिक्षा तो स्पष्ट तौरपर मिलती है कि हिसा अनवरत विरोधको जन्म देता है और अहिसासे विरोधियोके हृदयोको जीता जा सकता है और इस तरह समस्याका स्थायी हल निकाला जा सकता है।

३—समाजवादका मूल तत्त्व

समाजवादीके लिए यह आवश्यक नही है कि वह मार्क्सवादी हो अथवा किसी समाजवादीद्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तोका सम्यक् प्रतिपालन करे। उदाहरणके लिए किसी भी सच्चे समाजवादीके लिए यह मानना आवश्यक नही है कि ऐतिहासिक विकास उसी तरहके किसी स्थिर सिद्धान्तके आधारपर होता है जैसे नक्षत्रोकी गतिके लिए सिद्धान्त स्थिर है अर्थात् बीचमे ही यदि कोई असम्भावित घटना हो जाय तो भी उसका प्रभाव ऐतिहासिक विकासपर नही पड सकता। यह भी स्वीकार करना आवश्यक नही कि वर्गयुद्ध या भीषण क्रान्तिके बिना समाजवादकी स्थापना नहीं हो सकती। समाजवादमे विश्वास करनेके लिए ये आवश्यक बाते नही है। ऐसे अनेको महापुरुष हो गये हैं जिन्होने कट्टर समाजवादी होते हुए भी इन सिद्धान्तोको स्वीकार नही किया है।

इसी तरह एक सच्चे समाजवादीके लिए यह भी आवश्यक

नहीं है कि सोवियत रूसमें जो कुछ हो रहा है सबका वह अन्ध समर्थन करे। चूँकि रूसमे समाजवादको व्यावहारिक रूप देनेका प्रयास किया गया है इसलिए वहाँकी अवस्थाके अध्ययनसे हमें समाजवादके व्यावहारिक रूपको समझने और जाननेमे अवश्य सहायता मिल सकती है। पर इसके साथ ही हमे यह भी स्मरण रखना चाहिये कि रूसमें भी समाजवाद अपनी प्रारम्भिक अवस्थामे ही है और वह चारो ओरसे ऐसी पूँजीवादी शक्तियोंसे घिरा है जो समाजवादसे सहानुभूति तो नहीं ही रखती बल्कि उसकी कट्टर शत्रु है। इसलिए सोवियत रूसको बाध्य होकर इस तरहकी हरकते समय-समयपर करनी पड़ती हैं जो समाजवादी सिद्धान्तोंके सर्वथा प्रतिकूल है। रूसके किसान उस नयी व्यवस्थासे सर्वथा अपरिचित है, इसलिए समय-समयपर उसे व्यक्तिगत किसानोको खेत देकर नफा लेकर ही सन्तोष करना पड़ता है। पूँजीवादी देशोंकी अपेक्षा जनताको कहीं ज्यादा श्रम करना पड़ता है और उन देशोके निवासियोकी अपेक्षा कहीं कम आमदनीपर गुजर करना पड़ता है क्योंकि उन्हें अपनी सारी शक्ति मशीनरी तथा हथियारोंके उत्पादनमे लगा देना पड़ता है। सोवियत रूसको शिक्षापर पूरा नियन्त्रण रखना पड़ता है ताकि समाजवादके सिद्धान्तोका जनसाधारणमें पूरा प्रचार हो और लोग उसकी वास्तविकताको समझे। इसलिए शिक्षा संस्थाओं द्वारा अन्य विचारधाराके प्रचारको रोकनेके लिए उसे कड़ाईसे काम लेना पड़ता है क्योंकि उसे समस्त नागरिको-को एक ही साँचेमें ढालना है। विरोधी पूँजीवादी शक्तियोंका मुकाबला करनेके लिए उसे हर तरहके हथियारोंसे सुसज्जित

रहना पड़ता है इसलिए समाजवादके अन्तारार्ष्ट्रिय प्रयोगके कामसे उसे मुँह मोड़ना पड़ रहा है वल्कि अपनी रक्षाके लिए युद्धमे एक पूँजीवादी शक्तिके खिलाफ उसे दूसरी पूँजीवादी शक्तिका साथ देना पड़ता है। इस तरहकी अनेक हरकतें रूसको करनी पडा है और समाजवादके शत्रु इन दृष्टान्तोका हवाला देकर समाजवादकी निन्दा करते है मानो सोवियत रूसमे समाजवाद अपनी पराकाष्ठापर पहुँच गया है और समाजवादका प्रयोग सोवियत रूसमे जिस प्रकारसे हुआ है उसके अतिरिक्त प्रचारका कोई दूसरा तरीका ही नहीं है। लेकिन वास्तविकता ऐसी नहीं है। प्रथम प्रयोगमे यह रूप धारण करनेके वावजूद भी उसे त्याग देना उचित नहीं होगा, क्योंकि समाजवाद बहुत बड़ी चीज है। वर्त्तमान अवस्थामे समूल परिवर्तन उपस्थित करनेके लिए वहुत अधिक समयकी आवश्यकता है, इसलिए यदि उसका प्रथम प्रयोग असफल भी हुआ—यद्यपि सोवियत रूसमे भी उसे असफलता ही नहीं मिली, यद्यपि चारो ओरसे उसका निरोध होता रहा—तो भी उसे इतने सहजमे त्यागा नहीं जा सकता। कहनेका मतलब यह है कि सोवियत रूसमे चाहे उसने कोई भी रूप क्यो न धारण किया हो समाजवादके मूल्यको उसकी निजी योग्यतापर ही आँकना होगा।

प्रश्न यह उठता है कि समाजवाद है क्या? मार्क्सके वादके आवरणको हटाकर तथा सोवियत रूसमे उसने जो रूप ग्रहण किया है उसपर दृष्टि न रखकर समाजवाद—जैसा कि सभी दलके समाजवादियो, मार्क्सवादियो तथा रूसके साम्यवादियो-की धारणा है—वह अवस्था है जिसके द्वारा समाजके सभी

प्राणियोंका कल्याण तभी हो सकता है जब उत्पादन तथा बँट-वाराके सभी साधन जनताके हाथमें आ जायँ। समाजवादके इस सूक्ष्म तत्वको सभी विचारके समाजवादी स्वीकार करते हैं और इसी रूपके आधारपर आगे हम समाजवादका विचार करेंगे।

४—समाजवादकी सार्थकता

(क) उत्पादन तथा बँटवारासे लाभ—

(१) उत्पादनकी बहुलता :—समाजवादकी सबसे बड़ी विशेषता यह मालूम होती है कि समाजवादी व्यवस्थामें अधिक उत्पादनके सारे सुखोंका उपयोग करनेका अवसर प्राप्त होगा और अधिक उत्पादनकी बुराइयोंका खतरा नहीं उठाना पड़ेगा। विज्ञान तथा आधुनिक आविष्कारोंके कारण जो अनेक तरहकी सुविधाएँ समाजको प्राप्त हुई हैं समाज उनका आदी बन गया है। उनके बिना समाजका काम नहीं चल सकता। अगर उनके द्वारा किसीको हानि पहुँचाये बिना समाजको आराम मिलता हो तो वह उनसे वञ्चित क्यों रहे आरामसे रहना, विविध प्रकारकी वस्तुओंसे घिरे रहना, हर आवश्यकताकी पूर्ति कोई पाप नहीं है। विज्ञानके द्वारा हम अपनी हर तरहकी आवश्य-कताकी पूर्ति कर सकते है। विगत युद्धके पहले पूँजीवादी देशोंमें उत्पादनपर नियन्त्रण रखनेकी भावना उत्पन्न हो रही थी। बाजारमें आवश्यकतासे अधिक मालके आ जानेका फल यह हो रहा था कि या तो मालको ही नष्ट करना पड़ता था या कल-कारखानोंको बन्द करना पड़ता था। कल-कारखानोंको बन्द करनेसे बेकारी बढ़ती थी। लाचार होकर राज (शासन) को

हस्तक्षेप करना पड़ता था। उत्पादनको कम करनेके लिए कानूनी कारखाईका किया जाना, एक विचित्र बात थी। उत्पादनपर नियन्त्रणका फल यह होता था कि हजारो मजूरोको बराबर बेकार रहना पड़ता था। साथ ही पूँजी तथा भूमिकी उत्पादन शक्तिका पूरी तरह उपयोग नही हो सकता तथा अनेक टेक्निकल तरीकोको पूरी तरहसे काममे नही लाया जा सकता। इससे यही प्रकट होता है कि वर्तमान युगकी समस्या यह नही है कि उत्पादन किस तरीकेसे किया जाय बल्कि यह है कि उत्पादन द्वारा पूँजीपतियोको अधिक-से-अधिक लाभ किस उपायसे हो। लेकिन यदि राष्ट्र उत्पादनका काम करे और नफोका प्रश्न नही रह जाय तब तो पूँजी, मजूर, वैज्ञानिक साधन सबका पूरी तरहसे उपयोग और समाजको उपयोगके लिए अधिकाधिक सामान प्राप्त होने लगे। इससे अत्यधिक उत्पादनका भय जाता रहेगा और हर साधनोका प्रयोग कर उत्पादनको बढ़ानेका ही यत्न किया जायगा। कम उत्पादन करनेकी अपेक्षा यदि विज्ञान हमे अधिक उत्पादन करनेके लिए साधन प्रस्तुत करता है तो उसका सहारा लेकर हम उत्पादनको अनियन्त्रित रूपसे क्यो नही बढ़ा सकते। लेकिन यह समाजवादके अन्तर्गत ही सम्भव है कि हम उत्पादनको बेरोकटोक बढ़ा सकते है और उसका पूरा लाभ उठा सकते है।

विज्ञानने यदि हमारे लिए स्वर्गका दरवाजा खोल दिया है—उत्पादनद्वारा प्रचुर सम्पत्ति कमाकर हम मनमाना आनन्द लूट सकते है—तब हम निर्विघ्न क्यो न उसमे घुसें और उससे लाभ उठावे। इसके विरुद्ध अभीतक यही तर्क पेश किया जाता

था कि ऐसा करनेमे हमे हजारोको रौंदकर आगे बढ़ना होगा और उन्हे पशुवत् जीवन बिताना पड़ेगा। लेकिन समाजवादका यह दावा है कि कोई भी किसीको रौंदकर आगे नहीं बढ़ेगा। यदि सभीलोग अपने पैरोका सहारा लेकर आगे बढ़ेंगे तो सभी स्वर्गमे पहुँच जायँगे और उसका उपयोग करेगे। समस्याका हल सहज, उचित और मान्य प्रतीत होता है। साथ ही आकर्षक भी है।

(२) मशीन गुलाम है :—मशीनोके प्रयोगमे भी कोई बाधा नहीं उठ सकती। स्वयं मशीन किसी तरह भी बुराई नही उपस्थित कर सकती। बल्कि वह तो एक प्रकारसे साधक है। मशीन साधक है या बाधक यह तो हमारे प्रयोगपर निर्भर करता है। आग बहुत उपयोगी है। भोजन बनाने, रोशनी करने और अपनेको सर्दीसे बचानेके काममे हम उसका उपयोग करते है; लेकिन यदि आगका दुरुपयोग कर हम उसे अपनी झोपड़ीमें ठूँस दें तो वह अवश्य ही घरको जला देगी। लेकिन इसमे दोष हमारा है आगका नहीं। इसी तरह मशीनको भी दोष नहीं दिया जा सकता। यदि मशीनोका प्रयोग हमलोग इस तरह करे कि उससे जो उत्पादन हो उसका लाभ जनसमाज-को समानरूपसे हो. आजकलकी भाँति केवल कुछ लोग ही उससे लाभ न उठा सके तो उसमे बुराई कहाँसे आती है। समाजवादका यही कहना है कि बड़े-बड़े कल-कारखाने ज्यों-के त्यो रहे लेकिन उनका प्रयोग केवल धनिकोको और अधिक धनिक बनानेके लिए न हो, बल्कि समाजके प्रत्येक प्राणीके लिए समान रूपसे उपयोग हो।

(३) मशीनयुगमे वर्गकी सत्ता :—समाजवाद कल-कारखानो-पर जिस तरहका अधिकार रखना या स्थापित करना चाहता है वर्तमान उद्योगोकी प्रवृत्ति प्रायः उसी ओर है। वर्तमान पूँजी-वादी युगमे भी उद्योगधन्धोपर व्यक्ति-विशेषका आधिपत्य नही रह गया है। वह आधिपत्य दल या जमातके हाथमे चला जा रहा है। जिन उद्योगोपर पहले व्यक्ति-विशेषका अधिकार था उनपर अब वर्ग या दलका अधिकार होता जा रहा है क्योकि वे कारबारको अधिक योग्यता तथा निष्पत्तिके साथ चला सकते है। इस तरह हम देखते है कि पूँजीवादी युगमे भी प्रवृत्ति केन्द्री-करणकी ओर ही है। समाजवादी जो चाहते है उसी तरफ पूँजीपतियोकी प्रवृत्ति है। वर्तमान मशीनयुग जो चीज़ कायम करने जा रहा है उसका विरोध निरर्थक प्रतीत होता है।

(४) उत्पादन-व्यवस्थामे किफायतसारी :—यह केवल मशीन युगका प्रभाव नही है। वैज्ञानिक और आर्थिक स्थितियाँ भी हमलोगोको उसी ओर ढकेलती हैं। उत्पादनका साधन व्यक्ति-विशेषके हाथोंमे रहनेका फल यह होता है कि सब-के सब एक ही तरहकी वस्तु पैदा करने लगते है। पारस्परिक स्पर्धा बढ़ जाती है उससे आर्थिक उथलपुथल और मेहनत तथा उपकरणोकी बर्बादी होने लगती है। लेकिन उत्पादनका काम राष्ट्रके हाथमे रहनेसे व्यवस्थित ढगसे उसका प्रबन्ध किया जायगा और ऐसी कोई चीज तैयार नही की जायगी जिसके नष्ट होनेकी सम्भावना हो। देशमे उत्पादनके जो साधन है उनका उचित रीतिसे उपयोग होगा। उसी तरहके माल और उतनी ही तादादमे पैदा किये जायँगे जितनेकी राष्ट्रको जरूरत है। कलाकौशलमे जो

प्रगति होती रहती है उसका पूरा उपयोग उद्योगधन्धोंमें हो सकता है। वर्तमान युगमें मिल-मालिकोंकी दृष्टि एकमात्र लाभ-पर रहती है इसलिए वे मशीनोंको जल्दी बदलना नहीं चाहेंगे और नये आविष्कारोंका प्रयोग खर्चके भयसे नहीं करना चाहेंगे यद्यपि देशके खयालसे उनका तरीका भले ही लाभदायक न हो। लेकिन उद्योगधन्धोंका राष्ट्रीयकरण हो जानेके बाद इस तरहके प्रश्न नहीं उठ सकते क्योंकि राष्ट्रका एकमात्र उद्देश्य जनताका हित करना होगा और वह बिना हिचकके नये-नये आविष्कारोंका उपयोग कर सकेगा।

(५) बटवारेकी असमानताका अन्त :—वर्तमान युगमें नफाके बँटवारेमें जो असमानता है वह सदाके लिए दूर हो जायगी। पूँजीवादी प्रथामें उत्पादन तो सामूहिक रूपसे होता है लेकिन लाभका बँटवारा नहीं। पूँजीवादी प्रथाका यही सबसे बड़ा दोष है। जो उत्पादन करता है उसे नफा लेनेका पूरा हक है, यह प्राचीन प्रणाली है। लेकिन वर्तमान कल-कारखानोंमें हजारों व्यक्तियोंके सहयोगसे ही काम चलता है। ऐसी हालतमें कुल-का-कुल लाभ एक ही व्यक्तिको या दलविशेषको हड़प जानेका क्या अधिकार है ? जो हजारों अन्य व्यक्तियोंने इस लाभके उत्पादनमें भाग लिया, उनसे मानो कोई सरोकार ही नहीं। न्याय तो यही कहता है कि उत्पादनमें जितने लोग शामिल थे सबको लाभमें हिस्सा मिलना चाहिये। उत्पादनके ढंगको बदल देना लेकिन लाभको हड़प जानेका पुराना तरीका ही काममें लाना किसी भी प्रकार सङ्गत नहीं कहा जा सकता। समाजवाद इसी अनीतिको दूर करना चाहता है। उसका कहना है कि

उत्पादनमे जो लोग भाग लेते है उनका हिस्सा लाभमें भी होना चाहिये।

इस दृष्टिकोणसे विचार करनेपर यही कहा जा सकता है कि समाजवाद वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्थाकी चन्द बुराइयोको ही दूर कर देना चाहता है, इससे अधिक कुछ नही। इस तरह यही प्रमाणित होता है कि वडे पैमानेपर केन्द्रित उत्पादनके विना मानव समाजका कल्याण नही हो सकता।

(ख) विकास और उससे लाभ—

(१) आर्थिक जीवनका केन्द्र : आवश्यकता :—समाजवादका दूसरा ध्येय है आर्थिक जीवनमे मानवताका समावेश। पूँजीवादी प्रथा दूसरोकी परवा न कर अपने लिए अधिक-से-अधिक लाभ करना चाहती है। उसका ध्येय है, जो पीछे हैं वे मरे, अपनी चिन्ता करनी चाहिये। इस दृष्टिसे पूँजीवादी प्रथा भौतिकवादी, पाशविक, जालिम और अमानुषिक है। उसका आधार असभ्य नियम है जिसमे सदाचार और मानवीय विचारोके लिए कोई स्थान नही है। समाजवाद इसे अनुचित मानता है और कहता है कि उत्पादनका उद्देश्य लाभ न होकर आवश्यकताकी पूर्ति होना चाहिये। इस उपायसे वह आर्थिक व्यवस्थामे मानवको अपने उचित स्थानपर वैठाना चाहता है। पूँजीवादी प्रथामे मानव अपने शोषण करनेवालोका यन्त्रमात्र रह गया है। समाजवादी चाहता है कि उत्पादन और बँटवारेका केन्द्र मानव हो।

(२) खुदगर्जीके स्थानपर सचाईकी स्थापना:—इसलिए समाज-

वाद मानसिक प्रवृत्तियोंको प्रेरणा देना चाहता है। अन्याय, दमन, शोषण, उत्पीड़न तथा दरिद्रताने उसे विद्रोही बना दिया है और वह उनका समूल नाश चाहता है। स्वार्थपरता ही इन सभी बुराइयोंकी तहमें है और पूँजीवादी प्रथाकी जड़मे यही स्वार्थपरता काम कर रही है और यही मनुष्यका संहार भी कर रही है। इसका समूल नाश कर वह संसारमे सच्चाई और प्रेमकी स्थापना करना चाहता है। केवल निस्वार्थताकी शिक्षा देकर ही उसे सन्तोष नहीं है वह वर्तमान आर्थिक व्यवस्थाको ही उलट देना चाहता है ताकि समाजसे लाभ और स्वार्थका लोप हो जाय और उनका स्थान परस्पर प्रेम तथा भ्रातृभाव ग्रहण करे। समाजवादके साथ आज सर्वहाराकी सहानुभूति है क्योकि वह अपने लिए कुछ प्राप्त करना चाहता है। वर्तमान अवस्थामें यह स्वाभाविक भी है। लेकिन समाजवादका उद्देश्य केवलमात्र इतना ही नही है कि धनिकोके हाथसे सम्पत्ति छीनकर गरीबोमे बॉट दी जाय, वल्कि उसका उद्देश्य वह अवस्था कायम करना है जहॉ सम्पत्ति व्यक्तिविशेषके हाथमे जमा न होकर समाजके हाथमे रहे और सभी मिलकर उसका उपयोग करे। इसके विपरीत कुछ कहना समाजवादका गलत अर्थ लगाना होगा। वर्तमान स्थितिमे सबसे अधिक अपील उद्देश्यकी होती है। इसका फल यह हो रहा है कि भ्रातृभाव और सदाशयता पनपने नहीं पाती। इसके प्रतिकूल समाजवाद वह स्थिति कायम करना चाहता है जिसमे सभी मिलकर एक दूसरेके लाभ और कल्याणके लिए काम करेगे। गला घोटनेवाली स्पर्धाका स्थान सहयोग लेगा। इससे परस्पर द्वेषकी भावनाका अन्त

होगा और सभीलोग मिलजुलकर प्रेमसे काम करेंगे क्योंकि इससे जो लाभ होगा उसका सुख सभी भोगेंगे। पूँजीपतियोंका आदर्श है 'सबकुछ अपने लिए'। समाजवादका आदर्श है: "सबकुछ सबके लिए और सबलोग सबके लिए।" समाजवाद-का विश्वास है कि मनुष्य स्वभावतः सदिच्छा रखनेवाला व्यक्ति है और व्यक्तिगत लाभकी आकांक्षा न रखकर समाजके कल्याणके लिए मिलजुलकर काम करनेकी प्रवृत्ति उसमें सदा जागृत रहती है।

(३) हृदयसे धार्मिक :—समाजवाद उस धार्मिक आडम्बर-का विरोधी है जो धनिकों तथा विशिष्टाधिकारवालोंका पृष्ठपोषण करता रहता है और गरीबों तथा शक्तिहीनोंके निर्दय शोषणका समर्थन करता रहता है तथा जो धनिकोंके विशिष्टाधिकारोंका समर्थक है। समाजवाद विश्वमें नये धर्मका प्रचार करना चाहता है जिसका उद्देश्य है उनलोगोंमें प्रकाश फैलाना जो अधिकारके गर्तमें पड़े हैं, उन्हें अन्न-वस्त्र देना जो भूखे हैं, उन्हें मुक्त करना जो बन्धनमें पड़े हैं। समाजवाद आशा करता है कि उसके अनुयायियोंकी सहानुभूति संसारके दलितों तथा पीड़ितोंके साथ होगी और अपने आदर्शकी पूर्तिके लिए समाजवादी अधिक-से-अधिक त्याग करनेमें कभी भी नहीं चूकेगा। उसका विश्वास और उसकी धार्मिक भावना जड नहीं है। अधार्मिक तथा पूर्णतः भौतिकवादी होनेकी अपेक्षा वह धार्मिक, दार्शनिक और आदर्शवादी है। जो लोग समाजसे दरिद्रता और उत्पीड़नको दूरकर समृद्धि, स्वतन्त्रता तथा समानताकी स्थापना चाहते हैं

उनकी दृष्टिमें समाजवादके लिए सबसे अधिक सम्मान और आदर होना चाहिये ।

(४) दरिद्रताका अन्त—समाजवादी व्यवस्थामें उत्पादनके साधनोंपर राष्ट्रका उसी तरह अधिकार होगा जिस तरह तार तथा डाक विभागपर उसका अधिकार है । उत्पादनका काम वह किसी व्यक्तिविशेषके लाभके लिए न कर समाजके प्रत्येक प्राणीके लाभके लिए करेगा । समाजवादीकी धारणा है कि समाजमें जो बुराइयाँ घुस गयी है उनका निराकरण इसी उपायसे हो सकता है । समाजमें दरिद्रताका राज्य है । इसका एकमात्र कारण यही है कि आज. समाजकी सारी सम्पत्तिके मालिक चन्द विशिष्ट व्यक्ति बन बैठे है । उत्पादन और बँटवारे-का सारा अधिकार राष्ट्रके हाथमें हो जानेपर न किसीको अत्यन्त अधिक प्राप्त होगा और न किसीको अत्यन्त कम । राष्ट्रद्वारा वही वस्तुएँ उत्पन्न की जायँगी जिनकी समाजको आवश्यकता होगी । उत्पादनको हथियाने या हड़पनेका अधिकार व्यक्तिविशेषको नहीं होगा । इसलिए दरिद्रता दूर हो जायगी और प्रत्येक व्यक्ति समृद्ध हो जायगा ।

(५) बेकारीका अन्त—आजकी तरह जैसे, आजकल जिन विशिष्ट लोगोके हाथमें उत्पादनके साधन हैं वे मनमाना शर्तपर नौकर रख लेते है, उस समय वैसा नहीं होगा क्योंकि उत्पादनके साधनो पर उनका अधिकार न रहकर वह समाजके हाथमे रहेगा । इसलिए अपनी नौकरी कायम रखनेके लिए मजूरको गिड़गिड़ाना और हर तरहसे पददलित नही होना पड़ेगा । आजका मजूर मजूरी-का गुलाम है । अपने पुत्र और कलत्रको भूखों मरनेसे बचानेके

लिए उसे हर तरहसे अपने मालिकको खुश रखना पड़ता है। इस दासवृत्तिके प्रदर्शनके बावजूद भी यदि व्यवसायमे मन्दी आ गयी या मजूरी घटानेके कोई नये यन्त्र निकल पड़े तो वह नौकरीसे हटा दिया जाता है। इसलिए उसे बेकारीका भूत सदा सताता रहता है। लेकिन समाजवादमे कामके लिए प्रत्येक व्यक्तिको निश्चिन्तता रहेगी, क्योकि राजके ऊपर इस बातका भार रहेगा कि वह प्रत्येक व्यक्तिके लिए काम मोहैया रखे, ठीक उसी तरह जिस तरह उसे भोजनकी व्यवस्था करनी पड़ती है। अगर किसी कारखानेमे मजूरोकी संख्या आवश्यकतासे अधिक है तो वह अनावश्यक मजूरोको दूसरे कारखानेमे भेज देगा या वेतनमे किसी तरहकी कमी किये बिना सब मजूरोका कामका घण्टा घटा देगा।

(६) अरक्षणका अभाव—इस तरह मजूरोके सिरपरसे चिन्ताका वह भूत उतर जायगा जिसका वह आज शिकार हो रहा है। समाजवाद अरक्षणके भूतको मार भगावेगा। प्रत्येक व्यक्तिको धनकी उतनी चिन्ता नहीं रहती जितनी चिन्ता उसे इस बातकी रहती है कि उसके परिवारको अन्न और वस्त्रका सङ्कट न होने पावे। समाजवादमे जब उसे यह आश्वासन मिल जाता है तो वह सब कुछ पा लेता है।

(७) स्वाधीनता और लोकतन्त्रकी प्राप्ति—पूँजीवादी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी दोहाई देते हैं, लेकिन दैनिक आवश्यकतासे त्राण प्राप्त किये बिना अन्य सभी स्वतन्त्रताका कोई मूल्य नहीं है और न उनका उपभोग ही किया जा सकता है। दैनिक आवश्यकता-की चिन्तासे मुक्ति भी केवल समाजवाद ही प्रदान करता है।

उदाहरणके लिए कहा जाता है कि पूँजीवादी प्रथामें प्रत्येक व्यक्तिको अपना पेशा चुननेकी स्वतन्त्रता है। लेकिन जहाँ, आवश्यक शिक्षा, उपयुक्त ट्रेनिंग तथा प्रभावके अभावमें जब अनेक पदोंसे वह वंचित रह जाता है वहाँ तथाकथित स्वतन्त्रताका मूल्य ही क्या है ? पूँजीवादी प्रथामें जिस स्वतन्त्रताका राग अलापा जाता है उसकी प्राप्ति चन्द विशिष्ट व्यक्तियोंको ही है, मजूरोंके लिए वह सुविधा प्राप्त नहीं है जो दरिद्रतासे घिरा हुआ है। अपनी सन्तान, पत्नी तथा परिवारके लिए वह इतना ज्यादा भीरु और चिन्तित बना रहता है कि एक कामको छोड़कर उसे दूसरा अच्छा-काम खोज निकालनेका साहस नहीं होता, उसे अपने विचारोंको व्यक्त करनेका साहस नहीं होता ; क्योंकि उसे सदा इस बातका भय बना रहता है कि कहीं उसकी नौकरी न चली जाय, उसकी तरक्की न रुक जाय। उसे इतना भी सहारा नहीं होता कि सङ्कटकालमें वह अपने साथियोंकी सहायता करे या ट्रेड यूनियनका सदस्य बनकर संगठित हो जाय। इस तरहकी दुर्दशामें पड़ा व्यक्ति आजाद कैसे कहा जा सकता है ? और जिस डिमाक्रेसीके लिए उसे प्राण उत्सर्ग करनेकी प्रेरणा दी जाती है उस डिमाक्रेसीका उसके लिए क्या महत्व है जब कि वह दरिद्र है, चिन्ताओंसे घिरा है, और न तो अपने भविष्यके बारेमें सोच सकता है और न विचारपूर्वक अपने वोटका उपयोग ही कर सकता है। इस तरहकी तथाकथित डिमाक्रेसीमें राज शोषक समुदायकी आज्ञाओंका पालकमात्र है। और अपनी गरीबीके कारण जबतक जनसमुदाय कमजोर बना रहेगा, अपने प्रभावको व्यक्त न करनेके लिए लाचार बना रहेगा

तबतक यही हालत बनी रहेगी। सच्ची डिमाक्रेसी वहीं कायम हो सकती है जहाँ आवश्यकताके लिए चिन्ता और परीशानी नहीं है। कहनेका मतलब यह कि सच्ची डिमाक्रेसीका दर्शन समाजवादमें ही सम्भव है।

(८) समान अवसर :—आज क्या हालत है। धनमे असमानता होनेके कारण सभी क्षेत्रोंमे असमानताका राज्य है। चन्द विशिष्ट व्यक्तियोंको जन्म, प्रभाव, स्वास्थ्य, आमोद, विश्राम, काम, शिक्षा तथा संस्कृतिकी सारी सुविधाएँ प्राप्त है और जनसाधारणको केवल उन टुकड़ोंसे सन्तोष करना पडता है जो उन्हें अपने मालिकोंके जूठनसे मिल जाता है। लेकिन समाजवादमे ये असमानताएँ दूर हो जायँगी। समाजवादमें धन और वर्ग-जनित असमानता नहीं रह जायगी। सभी श्रेणीके मजूरोंका समान आदर होगा चाहे वे खेतमे काम करते हों, कल-कारखानोंमें काम करते हों या दफ्तरोंमे काम करते हों। ऊँचनीचका भेदभाव मिट जायगा और सभीको समान सुविधाएँ प्राप्त होंगी। इस विचारसे सभी मजूर एक ही परिवारके प्राणी समझे जायँगे। योग्यता और प्राप्तिका भेदभाव अवश्य उनके बीच रहेगा। लेकिन जहाँतक राजका सम्बन्ध है वह प्रत्येक व्यक्तिको उन्नति तथा विकासका समान साधन प्रस्तुत करेगा। वर्तमान युगमें हजारों बालक तथा बालिकाएँ ऐसी मिलेंगी, जिनमे प्रतिभा है लेकिन साधनोंके अभावमे वे उपयुक्त शिक्षासे वञ्चित रह जाते हैं और दूसरी तरफ धनी परिवारमे उत्पन्न होनेके कारण जाहिलों और बुद्धुओंकी शिक्षाके लिए बेकार लाखों रुपये खर्च कर दिये जाते हैं। समाजके दृष्टिकोणसे यह बर्बादी और

अलाभकर है। समाजवादमें इस तरहकी सारी असमानताओंका अन्त हो जायगा और जनसाधारणको जीवन आरम्भ करनेके लिए उपयुक्त अवसर प्राप्त होगा। इसका परिणाम यह होगा कि प्रत्येक को अपने विकासके लिए पर्याप्त साधन मिल जायगा।

(९) विश्राम :—आज केवल विशिष्ट वर्गको ही विश्रामका अवसर मिलता है लेकिन समाजवादमें यह प्रत्येक व्यक्तिको उपलब्ध होगा। राजका प्रधान कर्तव्य होगा प्रत्येक व्यक्तिके कामके घण्टेको कम से-कम कर देना। काम करने योग्य प्रत्येक व्यक्तिसे वह अधिक से-अधिक काम लेगा और श्रमको घटानेवाले यन्त्रोंका अधिकाधिक उपयोग होगा। वर्तमान युगमें श्रमको घटानेवाले यन्त्रोंके उपयोगका सारा लाभ पूँजीपतिको ही होता है। उन यन्त्रोंके प्रयोगसे मजूरोंकी संख्यामें कमी कर दी जाती है, कम मजूरोंसे काम होने लगता है, मजूर बेकार हो जाते और भूखों मरने लगते हैं। लेकिन समाजवादमें इस तरहके यन्त्रोंका प्रयोग सभी मजूरोंके श्रमका घण्टा कम करनेके लिए होगा ताकि मजूरोंको अपने विकासका अवसर मिले। अभीतक तो अपने कामके लिए मनुष्य मनुष्यको तथा पशुको अपना गुलाम बनाता रहा है किन्तु यदि उसी कामके लिए यन्त्रोंका प्रयोग किया जाय तो क्या यह समीचीन नहीं होगा? बिजली, भाफ, तेल और कोयला हमारी गुलामीका काम कर सकते हैं। इसलिए अपनी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए हम उन्हींका प्रयोग क्यों न करें? वर्तमान युगमें हममेंसे अधिकांशको अपना सारा समय अन्न-वस्त्र जुटानेमें ही समाप्त कर देना पड़ता है। लेकिन यदि इन कामोंके लिए हम

यन्त्रोंका उपयोग करें तो हमें अन्य कामोंके लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। यह हालत केवल मजूरोंकी ही नहीं है बल्कि पढ़े लिखे लोगों— वकीलों, अध्यापकों, शिक्षकों, डाक्टरों तथा सरकारी अफसरों—तककी है। इन लोगों-का भी सारा समय जीविका उपार्जनमें ही लग जाता है। इन सभी लोगोंके सामने जिन्दा रहनेका ही प्रमुख प्रश्न है, सुखसे रहनेकी बात तो ये सोच भी नहीं सकते। यदि उन्हें अन्न-वस्त्रकी निश्चिन्तता हो जाय तो वे अपना समय उन कामोंमें लगावें जिनमें उन्हें अधिक रुचि है। मनुष्य जीवनके सभी क्षेत्रोंमें कैसी उन्नति देखनेको मिलेगी।

(१०) मजूरोंकी देखभाल.— समाजवादका प्रधान उद्देश्य मजूरोंको सुखी बनाना है। इसलिए वह इस तरहके उपायोंके निका-लनेमें सदा तत्पर रहेगा जिससे मजूरोंको काम करनेमें सहूलियत और आराम मिले। ऐसे उपाय निकाले जायँगे जिनसे उन्हें काम करनेमें थकान न हो और वह परेशान न हो। राज अधिक-से-अधिक द्रव्य व्यय करके भी मजूरोंके कामको सुगम बनानेका यत्न करेगा। वर्तमान युगमें बीमार हो जानेपर मजूरकी चिन्ता बढ़ जाती है क्योंकि काम करनेसे वञ्चित हो जानेके कारण उसकी आमदनी बन्द हो जाती है और दवादारूके अभावमें उसकी चिकित्सा और शुश्रूषा ठीक तरहसे नहीं हो सकती। समाजवादमें मजूरोंको मुफ्त चिकित्सा तथा दवादारूकी सुविधा प्राप्त होगी और डाक्टरी जाँचमें जबतक वह काम करने लायक नहीं समझा जायगा तबतक उसके परिवारवालोंको राजकी

ओरसे अन्न, वस्त्र तथा अन्य आवश्यक चीजें मिलती रहेगी।

(११) आत्मविकासकी सुविधा:—समाजवादी राष्ट्र केवल इतनी ही सुविधाएँ नहीं प्रदान करता। वैज्ञानिक सङ्गठनकी सहायतासे जो धन सग्रहीत होगा वह सब-का-सब जनताका होगा। इसलिए जनसाधारणको वे अनेक सुविधाएँ प्राप्त होगी जो आज केवल धनिक वर्गको ही प्राप्त हैं, जैसे, स्वस्थकर प्रदेशोंकी यात्राके लिए अवकाश, खेल, बागबगीचा, आमोद-प्रमोद, पाठशाला तथा विद्यालय कलागृह, इञ्जीनियरिङ्ग, शिल्पशाला, प्रयोगशाला, अनुसन्धान-गृह, पुस्तकालय, संग्रहालय, स्वस्थकर मकान, मकान-सम्बन्धी हर तरहकी सुविधाएँ तथा अन्यान्य सहूलियते।

(१२) अपराधोमे कमी:—शोपक वर्गका अन्त हो जानेसे वर्गद्वेप और वर्गयुद्धका अन्त हो जायगा। व्यक्तिगत सम्पत्तिकी रक्षाके लिए अनेक तरहके कानून बनाये गये है। उनमें हाथ लगानेवाला कानूनकी दृष्टिमें अपराधी माना जाता है और उसे अनेक तरहके दण्ड दिये जाते हैं। इसलिए व्यक्तिगत सम्पत्तिके न रह जानेपर अपराधोमे कमी आप-से-आप हो जायगी। समाजवादका यही मुख्य उद्देश्य है। एक तो व्यक्तिगत सम्पत्तिको उठा देना और दूसरे प्रत्येक व्यक्तिकी आवश्यकताकी पूर्ति राजकी तरफसे होना। दोनो बातें अपराधको घटानेमे सहायक होगी। राष्ट्रसे पूँजीवादी प्रथाके उठते ही साम्राज्यवादका भी अन्त हो जायगा अर्थात् दुर्बलो तथा कमजोरोका शोपण नहीं हो सकेगा। नफा बटोरनेकी समस्याके उठते ही लोग उतना ही कमाना चाहेगे जितनेकी उन्हे आवश्यकता होगी।

इस तरह युद्धको प्रोत्साहन देनेवाली शक्तियोका अन्त हो जायगा और चारो ओर शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित हो जायगी।

इस तरह हम देखते है कि समाजवादकी स्थापनाके साथ-ही-साथ समाजको अनेक तरहकी बरकतें मिलने लगेगी। उन बरकतोका मूल्य किसी भी प्रकार कम आँकना हमलोगोके लिए उपयुक्त नही होगा। लेकिन साथ ही-साथ समाजवाद जिस परिणामपर पहुँचता है उसे भी हम आँख मूँदकर कबूल करनेके लिए तैयार नहीं है। हम इस बातकी समीक्षा भी कर लेना चाहते हैं कि समाजवाद जिन बातोका आश्वासन देता है वे कहाँतक सम्भव है।

५—समाजवादके विरुद्ध बातें

(क) समाजवादियोकी कल्पना—

(१) आर्थिक प्रथाका उद्देश्य जनसाधारणका कल्याण—समाजवादियोका तर्क है कि जनसाधारणको अधिकाधिक सुख पहुँचानेका एकमात्र साधन समाजवाद है, दूसरा कोई मार्ग नही है। समाजवादियोका कहना है कि मानवताका पूर्ण विकास केवलमात्र उसी आर्थिक व्यवस्थासे सम्भव है जिसका प्रतिपादन वह करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि उसके सारे प्रयासोका एकमात्र उद्देश्य जनसाधारणका कल्याण है। जहाँतक इस प्रश्नका सम्बन्ध है हम पूरी तरह समाजवादियोके साथ हैं। समाजवादियोकी इस बातको हम पूरी तरह स्वीकार करते हैं कि आर्थिक व्यवस्थाका एकमात्र उद्देश्य जनसाधारणकी आवश्यक-

ताओंकी पूर्ति होना चाहिये। इस बातमे पूँजीवादियोंसे हमारा मेल नहीं खाता। इसी लक्ष्यको सामने रखकर हम समाजवादियोंकी कल्पनाओंकी समीक्षा करेंगे।

(२) बड़े पैमानेपर उत्पादनसे लाभ :—पीछे कह आये है कि समाजवाद सम्पत्तिपरसे व्यक्तिगत अधिकार उठाकर पूँजीवादी प्रथाकी बुराइयोका अन्त करना चाहता है। पूँजीवादी प्रथामे दो उपकरण है–(१) बड़े पैमानेपर उत्पादन तथा (२) सम्पत्तिपर व्यक्तिगत अधिकार। समाजवाद सम्पत्तिपर व्यक्तिगत अधिकारको ही सारी बुराइयोकी जड़ मानता है। बड़े पैमानेपर उत्पादनको वह स्वीकार करता है और उसे अपनी व्यवस्थामें कायम रखना चाहता है। समाजवादकी धारणा है कि बड़े पैमानेपर उत्पादन लाभकर है। इस व्यवस्थाको स्वीकार कर लेनेपर इससे सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातोको स्वीकार कर लेना होगा। बड़े पैमानेपर उत्पादनकी व्यवस्थाको स्वीकार कर लेनेपर समाजवादको अस्वीकार करना असम्भव है। यदि हम बड़े पैमानेपर उत्पादनकी व्यवस्थाको कबूल करते है तो उसकी देखरेखकी जिम्मेदारी राजके हाथमें दे देना ही उचित होगा अन्यथा चन्द धनिकोंके हाथमे बहुत अधिक प्रभुता चली जाती है। जो पूँजीवादी देश समाजवादको दबाने तथा नियन्त्रित रूपमे पूँजीवादी प्रथाको कायम रखनेके लिए प्रयत्नशील है वे ऐसे युद्धमे निरत है जिसमे उनकी हार निश्चित है। आन्दोलनका मनोविज्ञान उनके प्रतिकूल है। हम समाजवादियोंके इस दावेसे सर्वथा सहमत हैं कि यदि बड़े पैमानेपर उत्पादन कायम रहता है तो पूँजीवादी प्रथाका अन्त होना तथा उसके स्थानपर समाजवादका कायम होना

अनिवार्य है। पूँजीवादके खिलाफ समाजवादके सभी तर्क अकाट्य हैं। इसके अलावा न्याय और ईमानदारीका भी यही तकाजा है कि पूँजीवादी प्रथाका स्थान किसी ऐसी प्रथाको ग्रहण करना चाहिये जिसमें किसी ऐसे व्यक्तिके हाथमें वह विशेषाधिकार न चला जाय जो अपने पड़ोसीकी दरिद्रता और निरीह दशासे लाभ उठाकर उसे गुलाम बनाकर रखे और अपना स्वार्थ-साधन करे। समाजवादी भावनाओंका विस्तार होना अचरजकी बात नही है। अचरजकी बात तो यह है कि वह अभीतक कुण्ठित क्यो पड़ा है। इसका एकमात्र कारण यही प्रतीत होता है कि समाजवादकी सम्भावनाओंपर लोगोंको दृढ़ विश्वास नही है। इसलिए लोग रूढ़िवादके अनुयायी बनकर पुरानी प्रथाको छोडनेके लिए तैयार नहीं है। वर्तमानकी बुराइयाँ उन्हे स्वीकार है लेकिन भविष्यके अन्धकारमें वे जाना नही चाहते। लेकिन यह रूढ़िवाद और भय समयकी प्रगतिको नहीं रोक सकते। जो उचित और न्याययुक्त है उसके सामने उन्हे सिर झुकाना ही पड़ेगा।

इतना सब कह चुकनेके बाद भी यदि हम समाजवादकी निन्दा करते है तो इसका मतलब यह नही है कि पूँजीवादी प्रथाके खिलाफ जो कुछ तर्क समाजवादका है उसके हम विरोधी हैं बल्कि इसका कारण यह है कि पूँजीवादी प्रथाके स्थानपर समाजवाद जो कुछ कायम करना चाहता है उससे हमारी सहमति नही है अर्थात् हम इस बातको स्वीकार करनेके लिए तैयार नही है कि राजके हाथमे प्रबन्ध देकर बड़े पैमानेपर उत्पादन कायम रखनेसे समाजका कल्याण होगा। समाजवादके इस सिद्धान्तके आधारका हम नीचे विश्लेषण करेगे। लेकिन

उससे पहले हम उन कतिपय सिद्धान्तोंका विश्लेषण कर देना चाहते हैं जो समाजवादी विचारधाराके आधारस्तम्भ हैं।

(३) भौतिक साधनोंकी बहुलतासे लाभ :—समाजवादकी उत्पत्ति पूँजीवादसे है। इसलिए पूँजीवादकी मौलिकताको वह अपनेसे दूर नहीं कर सकता। तात्पर्य यह कि भौतिक साधनो-मे घिरे रहना वह कल्याणकारक मानता है। समाजवाद इस सिद्धान्तको बिना आपत्तिके स्वीकार कर लेता है कि जिसके पास जितना अधिक होगा वह उतना ही ज्यादा सुखी होगा। समाजवादका उद्देश्य इसी तरहके सुखका साधन प्रत्येक व्यक्तिके लिए जुटाना है। ऐतिहासिक विवेचनसे प्रकट होता है कि समाजवादका उदय इसी सिद्धान्तके आधारपर हुआ कि जिन लोगोंको सुखका समस्त साधन प्राप्त है, उतना ही उन लोगोको मिलना चाहिए जिन्हे प्राप्त नही है। इसलिए भौतिक साधनोपर ही समाजवाद अधिक जोर देता है अर्थात् जीवनकी अपेक्षा वह सुखके साधनोंको ज्यादा महत्व देता है। समाजवाद-ने इस प्रश्नपर कभी विचार नही किया कि क्या सुखके इतने भौतिक साधन मनुष्यके लिए आवश्यक है।

लेकिन सुखके साधनोंकी बहुलताके सिद्धान्तको आँख मूँद-कर स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि इतिहास इस बातका साक्षी है कि प्रत्येक युगमे इस तरहके महापुरुष हो गये हैं जिन्होंने यह बतलाया ही नहीं है बल्कि प्रमाणित कर दिया है कि मनुष्यका जीवन साधनोंकी बहुलतापर ही निर्भर नही करता। इतना ही नहीं, बहुतोंने तो यहाँतक प्रमाणित कर दिया है कि मनुष्यके पास भौतिक साधन जितने ही ज्यादा होंगे उतने ही वे

उसके आत्म-विकासके मार्गमे बाधक होगे। महात्मा ईसाने तो यहाँतक कह डाला है कि सुईके छेदमें ऊँट भले ही समा जाय लेकिन ईश्वरके साम्राज्यमे धनी प्रवेश नहीं पा सकता। भौतिक साधनोंकी बहुलतासे चिन्ताका उदय होता है। चिन्ता मस्तिष्कको इस प्रकार विकृत कर देती है कि मनुष्य तुच्छ बातोमे ही फँसा रह जाता है। उदाहरणके लिए यदि हम हाथसे नारङ्गी या अनार खा सकते है तो उसके लिए तश्तरी, काँटा, छुरी तथा चम्मचकी क्या आवश्यकता है? इनसे तो हमारी झंझट और भी बढ़ जाती है। एकके होनेके साथ ही इनके साथ होने वाले अन्य उपकरणोंकी जरूरत पड़ जाती है। जैसे काँटा-छुरीसे खानेके लिऐ टेबुल-कुर्सी चाहिए। टेबुल-कुर्सी रखनेके लिए बड़ा कमरा चाहिए। बड़े कमरेके लिए बड़ा मकाम भी होना आवश्यक है। फिर इन सामानोको साफ-सुथरा और सजाकर रखनेके लिए आदमी-जन चाहिए। अच्छा भोजन, साफ-सुथरा और स्वस्थकर मकानकी आवश्यकताको तो समझा जा सकता है लेकिन इसके लिए बहुत अधिक सामान तथा आडम्बरकी आवश्यकता समझमे नहीं आती। सामानोकी भीड लगा देनेके अतिरिक्त इनसे हमे कोई लाभ नहीं दिखायी देता और इस तरह हमे अपने बहुमूल्य समयका अधिक भाग इन वस्तुओंकी देख-रेखमे लगाना पड़ता है जिनका जीवनके लिए कोई महत्व नहीं है। हमारी वास्तविक आवश्यकताओंकी पूर्ति अवश्य होनी चाहिये। अन्न-वस्त्र आदिकी प्राथमिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए जिन चीजोंकी नितान्त आवश्यकता है वे तो हमे अवश्य प्राप्त होने चाहिये। हम त्यागी और विरागी बनकर नहीं रहना

चाहते। लेकिन कम सामानोंसे भी हम सुखमय जीवन बिता सकते है। जिसने विलासिताका जीवन बिताया है, वह यह भली-भाँति बतला सकता है कि जरूरी सामानोंके अलावा फाजिल सामानोंको हटा देनेसे उसे जीवनमें किस तरहकी शान्तिका अनुभव प्राप्त हुआ है। पूँजीवादी प्रथामें लोग सामानोंकी बहुलताके पीछे इस तेजीके साथ दौड़ रहे है कि इससे पूँजी-पतियोंकी साम्पत्तिक अवस्थामें वृद्धि ही नहीं हुई है बल्कि लोग उसके गुलाम बन गये है। इसलिए समाजवादके इस सिद्धान्त-को पूर्णतया स्वीकार करनेकी अपेक्षा उससे कदम पीछे हटाकर यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि इससे मनुष्यके सुखके साधनोंमें वृद्धि न होकर इसके प्रतिकूल उन्हें हानि हुई है। सामानोंकी बहुलतासे तृष्णा और चाहकी वृद्धि होती है। चाहकी वृद्धिके साथ ही साथ उनकी पूर्तिके लिए तत्पर होना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य सदा चाहोंकी पूर्तिमें ही फँसा रहता है वह अपने लिए और कुछ नहीं कर सकता। उसके जीवनका एकमात्र उद्देश्य हो जाता है सामानोंकी खोज, उनका उत्पादन या प्राप्ति और उन्हें सम्हालकर रखना और उनकी देखभाल करना। अधिकाधिक वस्तुओंके प्राप्त करनेकी यह प्यास पूँजीवादकी देन है और समाजवादने मनुष्यके सुख-साधनकी कसौटीपर कसे बिना ही इसे स्वीकार कर लिया है।

(४) श्रम : एक अभिशाप—इसके साथ ही श्रमके प्रति समाज-वादकी जो धारणा है उसे स्वाभाविक और समीचीन नहीं कहा जा सकता। यह भी पूँजीवादकी देन है जिसे समाजवादने

अपना लिया है। पूँजीवादने श्रमको नीरस और यन्त्रवत् बना दिया है। किसी कल-कारखानेमे मशीनके सामने खड़ा होकर लगातार एक ही क्रियाको करते रहनेमे आनन्द ही क्या मिल सकता है। इसलिए मजूरको इस तरहके कामसे घृणा हो जाती है और वह काम नहीं करना चाहता। वह अपने अवकाशके समयपर ध्यान लगाये रहता है जब उसे इस तौरसे कामसे छुटकारा मिल जायगा और वह विश्रामका आनन्द लेगा। इसका परिणाम यह होता है कि कामसे अरुचि होनेपर वह विश्रामकी ओर अधिक झुकता है और उसका विश्राम व्यसनका रूप धारण कर लेता है। ऐसी हालतमे यह आश्चर्यकी बात नहीं है कि समाजवादमे मनुष्य विश्रामको ही प्रमुख मानता है और कामको बुरा समझकर उससे जल्दी-से-जल्दी समाप्त करना चाहता है। अब हमे यह देखना है कि मनुष्यके विकासके लिए काम आवश्यक है या बुराई है। शरीर-विज्ञानकी दुनियामें जीवनको कायम रखने या आगे बढ़ानेके लिए पशुपत्ती जो शारीरिक श्रम करते है वही श्रम उनके जीवनके प्रत्येक तन्तुका शासन करता है। अंग प्रत्यंगका निर्माण,शरीरका गठन, इन्द्रियो और अवयवोका कार्यकलाप, प्रेम और घृणाके भाव, खेलकूद सब कुछ उसी श्रमपर निर्भर करता है। उसका सारा विकास इसी श्रमपर निर्भर करता है। इससे हम इस परिणामपर पहुँचते है कि श्रम कोई बुरी चीज नहीं कि हम उससे अपना पिण्ड छुड़ानेका यत्न करे। रोगी और अपाहिज ही बेकार बैठना पसन्द करता है। किसी शिशुको ले लीजिए और उसकी जॉच कीजिए। शिशु प्रकृतिके बहुत निकट है लेकिन बड़े होकर समाज-

की रीति-रिवाज और आदतोंको अपनाकर हम प्रकृतिसे बहुत दूर हो गये हैं। बच्चेमें चञ्चलता और कार्यशीलताकी मात्रा कितनी ज्यादा रहती है। यदि उसे हाथ पैर हिलाने या दौड़ने-घूमनेसे रोका जाता है तो उसे कष्ट होता है। वह नहीं चाहता कि उसके ऊधममें किसी तरह की वाधा उपस्थित की जाय। पूरी ताकत-को वार-वार लगाकर भी वह थकता नहीं दीखता। सबसे ज्यादा नफरत उसे विस्तरसे होती है। विस्तर अकर्मण्यता सूचक है। तव क्या इससे हम इस परिणामपर नहीं पहुँचते कि यदि हम कामके घण्टेको घटाना चाहते है तो हमारे सिद्धान्तमें कोई त्रुटि अवश्य है। यन्त्रोंका प्रचारकर पूँजीपति श्रममें इसलिए कमी करना चाहते है कि उसे मजूरी कम देनी पड़ती है। समाजवादके सामने कम या अधिक मजूरीका प्रश्न नहीं है। तब भी यदि वह हाथके श्रमको उठा देना चाहता है तो क्या इससे यह मतलब नहीं निकलता कि उसके इस अध्यवसायका परिणाम शारीरिक कार्य कलापके लिए समीचीन और स्वास्थ्यप्रद नहीं होगा?

इतिहास हमें बतलाता है कि जिस राष्ट्रके प्राणी कामसे जी चुराने लगते हैं और अकर्मण्य वन जाते हैं उस राष्ट्रका अन्त निकट समझा जाता है। वे काहिल और सदाचारहीन हो जाते है और प्रयास करनेकी माद्दा खो वैठते है। वे विलासी वन वैठते है और अपना सारा काम नौकरों या गुलामों द्वारा कराने लगते हैं। प्रकृतिका नियम है कि जो श्रम करेगा वही उसका फल भोगेगा। इसलिए जो जाति आरामपसन्द हो जाती है और कामसे भागने लगती है उसका ह्रास हो जाता है, उसकी मेधाशक्तिका लोप हो जाता है, वह सदाचार विहीन हो जाती है,

शारीरिक क्षमता उसमे नहीं रह जाती क्योंकि जीवनके साथ सङ्घर्ष करते रहनेसे ही ये प्राप्त होते है। जो बात समाजके लिए सच है वही व्यक्तिके लिए भी सच है। कहावत है जो लड़का दिन-रात बेकार रहता है और काम नहीं करता, वह गावदू हो जाता है। किसीके पिताने परिश्रमसे सम्पत्ति हासिल की, वह परिश्रमी, संयमी और योग्य था। अपने परिश्रमसे वह इतना बड़ा बन गया। लेकिन उसका बेटा विलासिताका दास बन गया, जीवनके उथल-पथल तथा थपेड़ोका उसे कोई ज्ञान नहीं, अपने पिताकी कमाई पूंजीसे वह मौज उड़ाता है और इस तरह निकम्मा बन जाता है। समाजवादमे भी इसी तरहका खतरा है। बड़े पैमानेपर उत्पादनका फल यह होगा कि सुखके साधन प्रत्येक व्यक्तिको बहुतायतसे मिलने लगेगे, काम कम करना पड़ेगा। परिणाम यह होगा कि मनुष्य अपने विकासकी चरम सीमापर नहीं पहुँच सकेगा। उसकी प्रगति रुक जायगी। कामके बाद विश्राम फलदायक होता है लेकिन बेकाम रहकर दिन-रात आमोद-प्रमोदमे डूबे रहना हमेशा हानिकर सिद्ध हुए है।

मार्क्स तथा जर्मनीके अन्य दार्शनिकोंने—फिचे, शेलिंग हीगल—इस बातपर बहुत अधिक जोर दिया है कि सङ्घर्षसे ही प्रगति सम्भव है। यूनानके दार्शनिक हेराक्लीटसका कहना है कि सभी चीजोका जनक सङ्घर्ष है। विघ्नबाधाओंका सामना पड़नेपर ही हमारी सोयी शक्ति जागृत होती है और संघर्षके बीचसे वह हमे आगे बढ़ाती है। दार्शनिकोके इस ध्रुव सत्यका सीमित उल्लेख मार्क्सने वर्गयुद्ध तथा समष्टिवादकी स्थापनाके लिए किया।

लेकिन इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि आपदाओंसे लड़कर उनपर विजय पानेसे ही विकास हो सकता है चाहे वह युद्ध कमजोरियोंके साथ हो, आलस्यके साथ हो अथवा मूर्खताके साथ हो। अनिवार्य आवश्यकता ही हमें प्रेरणा शक्ति प्रदान करती है और निस्तारका रास्ता निकालती है। इसीलिए आवश्यकताको आविष्कारकी जननी कहा जाता है। इस तथ्यको स्वीकार करलेनेपर क्या यह नही मान लिया जा सकता कि जिस वातावरणमे लोगोको कम-से-कम श्रम करनेकी प्रेरणा मिलेगी वहाँ प्रगति रुक जायगी। एक बात और, प्रकृति न तो स्थिर रह सकती है और न स्थायी। उसका क्रम सदा चलता रहता है। यदि कदम आगेकी ओर नहीं बढ़ेगा तो स्वभावतः वह पीछेकी ओर हटेगा अर्थात् जहाँ प्रगति नहीं है वहाँ पतन निश्चित है।

इसके उत्तरमे समाजवादी यह कह सकते है कि श्रम आवश्यक और श्रेयस्कर तो है; लेकिन उत्पादनके रूढि और आदिम तरीकोसे चिपके रहना कहाँकी बुद्धिमानी है। यदि बड़े बड़े यन्त्रों द्वारा उत्पादनका काम सहूलियत और उत्तमतासे हो सकता है तब उनका उपयोग क्यों न किया जाय और मनुष्यको क्यों व्यर्थ परीशानीमें डाला जाय। हमलोग कामसे भागना नहीं चाहते लेकिन परीशानीसे अवश्य पिण्ड छुड़ाना चाहते हैं। इसके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि यदि समाजवादी कामसे भागना नहीं चाहते बल्कि केवल परीशानीसे बचना चाहते हैं तब तो किसी तरहका मतभेद नहीं उत्पन्न हो सकता। इस बातसे सभी सहमत होंगे कि जहाँतक सम्भव हो परीशानीको मिटाकर

कामको सरल, रोचक तथा मनपसन्द बनाना चाहिए। लेकिन इसके साथ ही प्रश्न यह उठता है कि परीशानीको घटानेके लिए हमलोग बड़े पैमानेपर उत्पादन करनेका साधन जब मुटाना चाहते है तो इसका प्रभाव उन मजूरोपर कैसा पड़ेगा जिन्हे इस प्रथाके अन्दर कारखानो और खेतोमें काम करना होगा। यह स्मरण रखना चाहिए कि उत्पादनका कौनसा तरीका उपयुक्त है और किसे काममे लाना चाहिए, उसकी जॉचकी हमारे पास एक ही कसौटी है और वह यह कसौटी है कि किसी भी उत्पादन प्रणालीका मनुष्यके विकासपर क्या असर पड़ता हे।

(ख) बड़े पैमानेपर उत्पादनमें दोष :—

पूँजीवादी प्रथामे मनुष्यकी आवश्यकताको बढ़ाते रहना ससीचीन माना गया है। समाजवादियोने भी इसे उपयुक्त मान लिया है। इसलिए उन्हे पूँजीवादियोके बड़े पैमानेपर उत्पादनके रोगको भी सार्थक मान लेना पड़ा है। अनियन्त्रित आवश्यकताको पूरा करनेका एकमात्र उपाय निःसीम उत्पादन है। एकका दूसरेके साथ अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। यदि मनुष्यकी आवश्यकताको इस तरह सीमित कर दिया जाय कि थोड़े सामानोसे ही वह सन्तुष्ट हो सके जो हाथसे चलनेवाले यन्त्रोसे तैयार किये जा सके तब बड़े-बड़े कल-कारखानोंकी आवश्यकता नहीं रह जाती। आवश्यकताकी अनियन्त्रित बाढ़के ही कारण बड़े पैमानेपर उत्पादन आधुनिक जीवनका आवश्यक अङ्ग बन गया है। प्रश्न यह उठ सकता है कि बड़े पैमानेपर उत्पादनमें दोष ही क्या है? यदि हमारी आवश्यकताओकी पूर्ति इसके

द्वारा सहजमें हो जाती है तो इसे हमलोग क्यों न ग्रहण करें ?
इसका एक उत्तर तो हमलोग ऊपर दे आये है कि आवश्यकताकी वृद्धि मनुष्यके विकासमें सहायक नहीं होती। लेकिन इसके और भी कारण हैं जिनकी समीक्षा आगे की जायगी।

(१) बुद्धिके विकासमें बाधाः—बड़े पैमानेपर उत्पादनका काम हमेशा केन्द्रीभूत होता है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रबन्धमे मजूरोंका हाथ नहीं रहता। ग्रामोद्योगकी पुरानी प्रणालीमें मजूर खुद अपना मालिक था। उसे खुद यह सोचना पड़ता था कि वह क्या उत्पन्न करेगा और कैसे उत्पन्न करेगा। यदि उसमें आविष्कारकी योग्यता होती थी तो वह अपने औजारों और काम करनेके तरींकोमें सुधार भी कर लेता था। अपने कामके रास्तेमें जो बाधाएँ उपस्थित होती थीं उन्हें दूर करनेके प्रयासमें वह बहुत कुछ सीखता रहता था। जो कच्चा सामान उसे उपलब्ध हो सकता था उसीके अनुसार वह अपने कामका नक्शा तैयार करता था। उसे अपने साधनोंकी देख भाल करनी पड़ती थी। अपने मालके लिए बाजार ढूँढनेमे वह दक्षता सीखता था। इस तरह उसे पगपगपर अपनी बुद्धिका उपयोग करना पड़ता था। इस सिलसिलेमे अनेक बातें उसकी दृष्टिमें आती थीं और उन्हें वह सीखता था, जैसे इञ्जीनियरिङ्ग, हिसाब, रसायन, भौतिक विज्ञान, अर्थशास्त्र, आयव्यय तथा यातायातका उसे पर्याप्त ज्ञान हो जाता था। इन समस्याओंसे वह भिड़ जाता था और उनका हल निकाल लेता था। उसे सदा यह खटका लगा रहता था कि इनको सुलझाये बिना उसका काम नहीं चल सकता। इस तरह धीरे-धीरे वह निपुण हो जाता था।

और जो साधन उसे प्राप्त होते थे उनसे ही काम करना वह सीख जाता था। कामसे न तो वह थकता ही था और न उसे अरुचि ही उत्पन्न होती थी क्योंकि एक ही कामके विविध अङ्गो-मे उसका मन वहलाव हो जाता था और नीरसता नहीं आने पाती थी। अव इससे कारखानोमे काम करनेवालोकी तुलना कीजिये। उनके सामने इस तरहकी कोई समस्या नहीं उपस्थित होती। उन्हे उत्पादनके केवल एक ही विभागमे काम करना पड़ता है। वहाँ यन्त्रोका ताँता वँधा है। उनकी देखभाल करनेके लिए भिन्न-भिन्न अफसर है। धरतीके कोने-कोनेमे दलाल और पोदारो-का जाल विछा है जो आवश्यक कच्चा माल खरीदकर भेजा करते है। उत्पादन प्रणालीमे सुधार तथा नयी वातोके प्रवेशके लिए अलग कारीगर नियुक्त हैं जिनका यही काम है। फोरमैन तथा मैनेजर प्रवन्धके कामकी देखरेख करते रहते हैं। डाय-रेक्टर लोग कारोवारकी नीति तथा आर्थिक अवस्थापर सदा ध्यान रखते हैं तथा तैयार मालको वेचनेके लिए भी दलालों और एजेण्टोका जाल विछा हुआ है। इस लम्बी-चौड़ी जञ्जीरमें मजूरके लिए एक भी कड़ी खाली नहीं है जहाँ उसे गूँथा गया हो। उसे यहाँ अपनी वुद्धि लगानेकी लेशमात्र भी गुञ्जायश नहीं है। मशीने अनवरत चक्कर देती रहती है, उसके सामने तैयार मालका ढेर लग जाता है, लेकिन वे कैसे आते हैं और कहाँसे आते है, यह सव कुछ वह नहीं जान पाता।

वह यह भी नहीं जानता कि वह उत्पादनके किस भागमे सहायता प्रदान कर रहा है। वह सिर्फ इतना ही जानता है कि जिस यन्त्रके सामने वह खड़ा कर दिया गया है उसकी गतिको

ठीक रखनेके लिए उसे निर्दिष्ट अंग सञ्चालनमात्र कर देना है। वही काम वह विना किसी परिवर्तनके दिनरात करता रहता है। मनोविज्ञानके पण्डितोंका कहना है कि काममें विविधता न होनेपर मनको स्फूर्ति नहीं मिलती और कामसे मन हट जाता है। उदाहरणके लिए सब बाते समान होनेपर भी स्थिरकी अपेक्षा गतिमान् अपनी ओर अधिक ध्यान खीचता है, जैसे आकाशमे हजारो लाखों नक्षत्र उदय और अस्त होते रहते हैं, हमलोग प्रतिदिन उन्हे देखते हैं, लेकिन हमें उनमें कोई विशेषता नहीं प्रतीत होती लेकिन जहाँ कोई तारा टूटा कि हमारा ध्यान उस ओर खिंच जाता है। स्थिर चित्रोंकी अपेक्षा चल-चित्रोंमें ज्यादा आकर्षण मिलता है। भारतीय दार्शनिकोंका भी यही मत है कि विविधतामे ही विचारशक्तिको स्फूर्ति मिलती है लेकिन जहाँ स्थिरता है वहाँ विचारधाराका प्रवाह कुण्ठित या वन्द हो जाता है। जहाँ जीवन और गति है वहाँ विचारोंका प्रवाह होता रहता है. लेकिन वेकाम होनेपर मन चञ्चल होकर इधर-उधर भटकने लगता है और अन्तमें सुस्त पड़कर सो जाता है। यदि ये वाते सच है तो इस तरहके वातावरणमे मनका विकास सम्भव नहीं है। इसका परिणाम अस्थिरता है। उद्योग-प्रधान देशोंकी आज यही हालत है। यह ठीक है कि समाजवादमें इसके निवारणका कुछ हदतक उपाय किया जायगा। मजूर एक विभागसे दूसरे विभागमें जा सकता है। कारखानोंमें कामके सभी तरीकोंको सीख सकता है. प्रबन्धमें भी दिलचस्पी ले सकता है, उसकी बात भी चल सकती है। लेकिन यह सब उसकी इच्छापर निर्भर है। उसे जो काम सौंपा गया है उसका

यह अङ्ग नहीं है क्योंकि जिस यन्त्रको चलाने, देखने-भालने तथा सम्हालनेका जो काम उसे सौंपा गया है, उससे इसे कोई प्रयोजन नहीं है और उसके केवल इतना ही जानते रहने पर भी उन कामोंमे किसी तरहकी बाधा नहीं पड़ सकती। वह काम उसी प्रकार चलता रहेगा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मजूरको अपनी बुद्धि लगानेका कोई अवसर नहीं मिलता। आप अपनेको स्वय शिक्षित करनेके अयोग्य है। अर्थात् कामके ऊपर उसे अपनेको शिक्षित करनेका अलग उद्योग करना पड़ेगा जो उसके कामसे एकदम भिन्न होगा और उसे स्वतन्त्ररूपसे प्राप्त करना होगा। कामके द्वारा उसकी बुद्धिका विकास तभी हो सकता है जब काम इस तरहका हो कि उसे पूरा करनेमे मजूरको अपनी बुद्धि लगाना आवश्यक हो। लेकिन कल-कारखानोंमे मजूरके सामने इस तरहकी कोई समस्या उपस्थित नहीं हो सकती इसलिए कल-कारखानोंमे काम करनेवाले मजूरोंकी बुद्धि और कौशलका विकास नहीं हो सकता। बल्कि ज्यों-ज्यों यन्त्रोंमे उन्नति या सुधार होता जायगा और उत्पादनके तरीके उन्नति करते जायँगे त्यों-त्यों उसकी बुद्धिकी आवश्यकता घटती जायगी। इससे यही आशा की जा सकती है कि कल-कारखानोंमे काम करनेवाले मजूरोंकी बौद्धिक योग्यता दिन-पर-दिन घटती ही जायगी और उनके शारीरिक गठनका भी ह्रास होता जायगा।

(२) कलात्मक ज्ञानके विकासमे बाधा—अब यह देखना है कि बड़े कारखानोंमे काम करनेवाले मजूरोंके कलात्मक ज्ञानका विकास होता है या नहीं। ग्रामोद्योगमे जुलाहेको रंगोंके नये-नये रूप निकालनेका अवसर मिलता है, रङ्गोको भिन्न-भिन्न अनुपात-

में मिलाकर वह नया नया रङ्ग तैयार कर सकता है। नया तर्ज भी निकालनेका उसे अवसर मिलता है। जब लोग उसके नये रङ्ग और नये तर्जको पसन्द करते हैं तो उसे खुशी होती है। बुरा हो या भला उसे इतना सन्तोष तो होता है कि यह उसकी सूझकी उपज है, उसके अपने प्रयासका फल है। यदि वह रङ्ग या तर्ज लोगोंको पसन्द नहीं आया तो वह उसे बदल देता है। इस तरहसे लोगोंकी रुचिका पता लगता है और वह इसी तरह अपने कलात्मक ज्ञानको बढ़ाता है। उसे समता, अनुपात, तरीका आदिका ज्ञान हो जाता है। ये सब गुण उसके विकासके लिए परमावश्यक है। इनका उसके जीवनपर प्रभाव पड़ता है और उसमें नवीनता आती जाती है। उसे अपने कामसे कभी सन्तोष नहीं होता। इसलिए उसका हाथ रुकता नहीं। वह प्रतिदिन नयी-नयी कल्पनाओंका प्रयोग करता रहता है। उसकी आँखें इतनी अभ्यस्त हो जाती हैं कि वह दोष या कमीको तुरन्त समझ लेता है और उन्हें दूर करनेका उपाय सोच निकालता है। नये-नये निर्माणके आनन्दसे वह फूल उठता है और अपने इर्दगिर्दकी चीजोंसे ही सन्तुष्ट न होकर वह अपने भावके अनुसार चीजें तैयार करता है। उसका कौशल उसे गतिशील बनाता है, उसे अनुशासन और समयकी शिक्षा मिलती है, वह परिश्रमी बन जाता है: क्योंकि उसके कलात्मक ज्ञानसे उसे जो प्रेरणा मिलती है वह तबतक उसे सन्तोषकी साँस नहीं लेने देती जबतक वह अपने मालको पूर्णतापर नहीं पहुँचा देता। इस तरह उसका काम उसे पूर्ण योग्य बना देता है। लेकिन कारखानोंमें काम करनेवाले मजूरोंको यह नसीब नहीं है।

कारखानोमे मशीनो द्वारा जो कपड़ा तैयार होता है उसके उत्पादन-मे पहले तो एक आदमीका हाथ नही रहता, दूसरे सारा काम मशीनो द्वारा होता है। वह तो कलोके पास खडा रहकर केवल-मात्र इतना देखता रहता है कि मशीनोमे किसी तरहकी गड़बड़ी पैदा नही होने पाती और बेरोक टोक काम चलता रहता है। न तो रङ्ग और न तर्जका ही उसे कोई श्रेय है। और जिस तर्जका कपड़ा तैयार करनेके लिए मशीने ठीक कर दी गयी है उसमे वह किसी तरहसे हस्तक्षेप भी नहीं कर सकता। इसलिए जहाँ तक उसके कामका सम्बन्ध है न तो उसे रङ्गोके मिलावट-का कोई ज्ञान पैदा हो सकता है और न कलात्मक ज्ञान ही वह प्राप्त कर सकता है।

(३) चरित्र निर्माणमें वाधा—वड़े-बड़े कारखानोके मजूरोके चरित्र निर्माणमे भी रुकावट पैदा हो जाती है। जिम्मेदारीसे ही चरित्रका निर्माण होता है। अपनी रुचिसे काम करना तथा दूसरेकी रुचिसे काम करनेमे बड़ा अन्तर है। जो व्यक्ति अपनी इच्छाके अनुसार अपने कामपर नियन्त्रण नही रख सकता वह उस कामके द्वारा अपना चरित्र निर्माण नही कर सकता। बड़े-बड़े कारखानोमे मजूर अनेकोमे एक है। वह अपनी इच्छा-नुसार काम नही कर सकता। उसे काम करनेके लिए औरोका साथ देना पड़ता है। वह एक सेनाके सैनिकके समान है जिसे सेनाके साथ ही चलना और रुकना पड़ता है। अपनी रुचिके अनुसार वह उत्पादनकी वस्तुमे किसी तरहका परिवर्तन नही कर सकता। वह पूरी एक वस्तुको तैयार भी नही करता बल्कि एक वस्तुके किसी एक अंशको और उसी अंशको तैयार करनेमें

मशीनोंकी योजनाके अनुसार न-जाने कितने मजूर लगे हुए रहते है। उसे मशीनकी गतिके अनुसार काम करना पड़ता है। उसमे कमीबेशी करना उसके हाथमे नहीं है। उसके कामका समय नियत है और समयका नियन्त्रण दूसरोंके हाथमें है। इस तरह जो वस्तु तैयार होती है उसके उत्पादनमें न तो उसकी रुचिका कोई सवाल उठता है और न उसकी इच्छा-शक्तिका ही उपयोग होता है। चरित्र निर्माणके लिए अपनी शक्ति और योजनाको प्रकट करनेका अवसर मिलना आवश्यक है। जिस व्यक्तिको यह अवसर नहीं मिलता वह ठीक यन्त्रके समान है या गुलाम है।

यहींपर हम उस प्रश्नपर विचार कर लेना चाहते हैं जो समाजवादियोंके अनुसार मजूरोंके चरित्र निर्माणमें सहायक हो सकते है। समाजवादका कहना है कि मजूरोंको अपने साथियोंसे मिलने-जुलने, मजूरोंकी सभामे बैठकर कारखानोंके प्रबन्ध आदिपर विचार करनेका अवसर मिलेगा और इस तरह कारखानोंके संचालनमें उनका हाथ रहेगा। इसे स्वीकार भी कर लिया जाय तो उनका कार्यक्षेत्र फैक्टरी कौन्सिल या सोवियततक ही सीमित रह जाता हैं; क्योंकि इनके ऊपरकी सभी सभाओं—नगर सोवियत, जिला सोवियत, प्रान्तीय सोवियत तथा सुप्रीम सोवियतके साथ उनका सम्पर्क केवल उनके चुने प्रतिनिधियों द्वारा ही रहता है। इस तरह वह उनसे सदा दूर ही रहता है। अब हमें यह देखना चाहिए कि फैक्टरी सोवियतमें मजूरोंको शिक्षित बनाकर उनके चरित्र निर्माणकी कहाँतक गुञ्जाइश है। जिन कारखानोंमें सैकड़ों मजदूर काम

करनेवाले होगे, उनमें दस-बीस ही ऐसे होगे जिन्हे उस कारखानेके प्रबन्धमे किसी तरहकी रुचि होगी और उस सम्बन्धमे कुछ कह सकेगे। इनमे भी थोड़े ही ऐसे होगे जिन्हे प्रबन्ध विभागके कामोमे लगन होगी, जो उस सम्बन्धमे सोचते-विचारते होगे और दूसरोको इसके लिए तैयार करनेकी आकांक्षा रखते होगे। अधिकांश मजूर सर्वथा उदासीन ही दिखायी देगे और प्रबन्धके सम्बन्धमे उसी समय किसी तरहकी दिलचस्पी दिखावेगे जब कोई विकट समस्या उठ खड़ी होगी। ऐसे अफसरोपर भी अपना कोई निजी राय या विचार नही प्रकट करेगे बल्कि उन मजूरोका अनुसरण करेगे जो पहलेसे इस काममे उत्साह और लगन दिखाते आये हैं। अधिकांश मजूरोकी यही हालत रहती है। वे अपनी विचारशक्तिको काममे नही लाते और दूसरोके भरोसे चलते रहते है। वे बैठकों और अधिवेशनोमे उपस्थित रहते है, वाद-विवाद सुनते है, लेकिन वे अपना मत उसी तरफ देते है जिस तरफ उनके नेताका झुकाव रहता है। बहुत हुआ तो अपने नेताके मतके समर्थनमे भाषण दे डाला। यह तो मानना ही पड़ेगा कि वे साथ बैठकर सलाह करते है और उनका निर्णय सबका निर्णय माना जाता है। लेकिन हमारे विचारणीय विषयके लिए यह महत्वपूर्ण नही है कि वे एक साथ बैठकर सलाह-मशविरा करते है और एकमत या बहुमतसे किसी निर्णयपर पहुँचते है और वह निर्णय सबका निर्णय माना जाता है। हमारा कहना यह है कि यद्यपि अधिवेशनोसे सभी शामिल होते है लेकिन बुद्धिका प्रयोग इने-गिने मजूर ही करते हैं और जो कुछ निर्णय होता है वह उन्हींकी बुद्धिकी उपज है

बाकी सब मूक समर्थक-मात्र रहते हैं। अच्छी-से-अच्छी कौंसिलो-में यही होता है। यह बात सच है कि वहाँ प्रत्येक व्यक्तिको सोचने-विचारनेका कम अवसर मिलता है लेकिन अधिकांश मजूर ऐसे ही होते है जो सोच-विचारका काम दूसरोपर सौंप देते हैं। जिनमे सोचने विचारनेकी मादा है या जो अपना प्रभाव दूसरो-पर डाल सकते है उनका अधिकाधिक विकास होता रहता है और इस तरह वे अपने साथियो पर शासन करते है। लेकिन बाकी मजूरोका व्यक्तित्व कुण्ठित हो जाता है और उसका विकास नहीं हो पाता। इस तरह अधिकांश मजूर जहाँ-का-तहाँ पड़े रह जाते है और अपने व्यक्तित्वको विकसित करनेका उन्हें कोई उपयुक्त साधन नहीं मिलता। स्वतन्त्र साधन मिलनेपर ही वह अपनी विचारशक्तिका उपयोग कर सकते है। इस तरहका अवसर मिलनेपर ही मनुष्यको किसी निर्णयपर पहुँचनेके लिए प्रयास करना पड़ता है और इस तरहके प्रयासके द्वारा ही उसका विकास सम्भव है। लोगोके साथ बैठकर वह जो निर्णय करता है उसमे उसके विकासकी कम ही सम्भावना रहती है। यह बहुत महत्वपूर्ण बात है और इसे हृदयङ्गम कर लेना आव-श्यक है अन्यथा हम इसी भ्रममे रहेंगे कि किसी व्यक्तिका अपना स्वतन्त्र निर्णय और जनसमूहके साथ उसका निर्णय दोनों एक ही चीज है और दोनोका प्रभाव उसके चरित्र निर्माण पर समानरूपसे पड़ता है।

इसका यहाँ अन्त नहीं है। इस सम्बन्धमें यह भी दावेके साथ कहा जा सकता है कि जहाँ समुदायके साथ किसी निर्णय-पर पहुँचना पड़ता है वहाँ वैयक्तिक विचारको बाधा भी पहुँ-

चती है। उसे प्रकट करना तो दूरकी बात रही। समूहके निर्णय-के सामने व्यक्तिगत विचारोंको कुण्ठित हो जाना पड़ता है। यह देखा गया है कि जहाँ एक व्यक्तिको स्वयं किसी निर्णय-पर पहुँचना पड़ता है, वह निर्णय उससे सदा भिन्न होता है जब वही व्यक्ति समूहके साथ बैठकर उसी विषयपर कोई निर्णय करता है। उसका एकमात्र कारण यह है कि समूहके साथ होनेपर उसके ऊपर जिम्मेदारीका बोझ उतना ज्यादा नही रहता क्योंकि उसके विचारोंपर समूहके विचारोंका प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। समूहके साथ बैठनेपर अनेक तरहकी बातें पैदा हो जाती है जो मनुष्यके स्वतन्त्र विचारके मार्गमे रुकावट पैदा कर देती है—जैसे, दोस्त मित्रो या सङ्गी साथियो-का लेहाज, अपने दलके विचारोंका पालन, भावोत्पादक भाषणो-का प्रभाव, किसी महापुरुष या बड़े नेताका लेहाज, अथवा उन लोगोंका सङ्कोच जो उसके भविष्यको सुखमय बना सकते है या उसपर कृपाओंकी वर्षा कर सकते है। इस तरहकी अनेक बाते है जिनका प्रभाव जन समूहमे बैठनेपर किसी भी व्यक्ति-पर पड़ता है लेकिन यदि वही व्यक्ति स्वयं निर्णय करने बैठता है तो वह उससे भिन्न निर्णय भी कर सकता है।

इससे हम इस निर्णयपर पहुँचते है कि किसी भी व्यक्ति-की योग्यताके पूर्ण विकासके लिए जो अवसर उसे एकाकी होकर विचार करनेमे प्राप्त है वह समूहके साथ बैठकर विचार करनेमे प्राप्त नही हो सकता। इसलिये यह कल्पना करना कि कल-कारखानोमे काम करनेवाले मजूरोंका चारित्रिक विकास

उसी तरह होगा जैसा उस मजूरका जिसे खुद अपना काम करने-का अवसर मिलता है, गलत होगा। कल कारखानोंमे काम करनेवाले मजूरोंमे चारित्रिक जिम्मेदारीका उदय हो ही नहीं सकता।

(४) मनुष्यताका लोप :—आखिर मनुष्य और पशुमे अन्तर क्या है ? मनुष्यमें ज्ञान है, बुद्धि है, विवेक है, कलात्मक ज्ञान है, चरित्र है। ये सब बाते पशुमे नहीं पायी जाती। यदि मनुष्यमे भी इनका अभाव रहे तो वह भी पशुके समान ही माना जायगा। जिस समाजमे ये बाते नही पायी जायँगी वह सुसंकृत और सभ्य होनेका दावा किस तरह कर सकता है। मनुष्यके विकासके लिए ये तत्व आवश्यक हैं और प्रत्येक व्यक्तिमे इन तत्वोंका होना अनिवार्य है। लेकिन हम ऊपर देख आये है कि कारखानोमें काम करनेवाले मजूरोंमे इनका होना आवश्यक नहीं समझा जाता है। जो बाते कारखानोमे काम करनेवाले मजूरोपर लागू है वही बड़े पैमानेपर उत्पा-दनके सभी क्षेत्रोंमे लागू हैं। दोनोके डिग्रीमे अन्तर भले ही हो सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि बड़े पैमानेपर उत्पादनमे मनुष्य अपनी मनुष्यताकी श्रेणीसे गिर जाता है। यह परिणाम अनिवार्य और अवश्यंभावी है। प्रकृतिका यह अटल विधान है कि मनुष्य अपना विकास तभी कर सकता है जब वह अपनी बुद्धि, चरित्र और कलात्मक ज्ञान-को किसी उपयोगी काममे लगाता रहे जिनसे इन गुणोंका विकास हो सकता है और जो इनके उपयोग बिना पूरा नहीं हो सकता। इन गुणोंकी वर्षा आकाशसे नहीं होती बल्कि जीवनके सम्पर्कमे पड़कर मनुष्य स्वयं इन्हे प्राप्त और विकसित

करता है। जिन अवयवोंका प्रयोग नही होता वे धीरे धीरे मुर्दा हो जाते है। इसलिए यदि मनुष्यको भी अपनी बुद्धि तथा कलात्मक ज्ञानके उपयोगका अवसर नहीं मिलता तो ये भी कुण्ठित होकर मर जायँगे। यदि मनुष्य निरन्तर ऐसे ही कामोमे लगा रहा जहाँ इनके उपयोगकी सम्भावना अधिक कालतक नहीं है तो निश्चल यन्त्र और मनुष्यमे जो भेद है उसका लोप हो जायगा। कल-कारखानोमे यही होता है। इसीलिए कल-कारखानोमे काम करनेवाले मजूरोको कारखानेका हाथ (फैक्टरी हैण्ड) कहा जाता है, क्योकि कारखानोके मस्तिष्कसे उनका कोई सम्बन्ध नही रहता। इनकी बुद्धि, चरित्र तथा कलात्मक ज्ञानका वहाँ कोई उपयोग नही है क्योकि जिसका एकमात्र काम यन्त्रोको चालू रखना है उन्हे इनसे क्या मतलब! इस तरह वह मशीनका चक्का या धुरा बन जाता है, मनुष्यता इसमे रह नहीं जाती और यन्त्र के समान काम करता रहता है। यदि किसी संस्था या व्यवसायकी अन्तिम कसौटी यह है कि मानव समाजपर उसका अच्छा या बुरा कैसा प्रभाव पड़ता है तब तो बड़े पैमानेपर उत्पादन अवश्य ही हानिकर है और उसकी जितनी भी निन्दा की जाय थोड़ी है। बड़े पैमानेपर उत्पादनसे मनुष्यके पास सामग्रीकी ढेर भले ही हो जाय लेकिन इसे प्राप्त करनेके लिए उसे अपनी सबसे मूल्य-वान् वस्तु गँवानी पड़ती है अर्थात् अपना व्यक्तित्व। जीसस क्राइस्टके शब्दोमे यदि मनुष्य अपनी आत्माका बलिदान कर सारे विश्वकी विभूति ही प्राप्त कर ले तो उससे क्या लाभ!

(५) बड़े पैमानेपर काम करनेवालोकी जमात इतनी बड़ी होती है कि सच्चे भ्रातृभावकी स्थापना असम्भव है:—बड़े पैमानेपर उत्पादनका एक फल यह होता है कि छोटे-छोटे आत्म-निर्भर व्यवसायिक संगठनोके अस्तित्वका लोप हो जाता है और वे बड़े-बड़े संगठनोमे विलीन हो जाते है। पहले जमानेमें एक गरोह या क्षेत्र अपनी आवश्यकताकी सारी चीजें पैदा करता था। लेकिन बड़े पैमानेपर उत्पादनमे उसकी आवश्यकताकी चीजे कहीं अन्यत्र तैयार होती है और उसे कोई ऐसी चीजोके तैयार करनेमें श्रम करना पड़ता है जिसकी उसे एकदम जरूरत नहीं रहती। मीलो जमीन संयुक्त खेतीके काममे लायी जा रही है। उनमे गेहूँ पैदा किया जा रहा है। इसी तरह बड़े-बड़े व्यवसायिक केन्द्र खड़े किये जाते है जिनमे समस्त देशकी आवश्यकताकी चीजें तैयार की जाती है अर्थात् एक-एक कारखानेमे समस्त देशकी आवश्यकताकी एक चीज तैयार की जाती है और उसे चारो ओर भेजा जाता है। इस तरह जो क्षेत्र आत्मनिर्भर था उसे दूसरी इकाइयोंके साथ जोड़कर एक बड़ी इकाई खड़ी की जाती है जिसका विस्तार देशव्यापक होता है।

प्रश्न यह उठता है कि यदि हम लोगोंके बीच सहयोग और भ्रातृभावकी भावना जाग्रत करना चाहते हैं तो क्या यह समुचित तरीका है? समाजवादियोंका कहना है कि हमलोगोंको ऐसी आर्थिक व्यवस्था कायम करना चाहिये जिसका पथप्रदर्शक सिद्धान्त हो, जो 'जितना काम कर सके उससे उतना काम लिया

जाय और जिसे जितनेकी आवश्यकता हो, उसे उतना दिया जाय।' इसे वास्तविक रूपसे चरितार्थ करनेके लिए हमे ऐसा गरोह भी कायम करना चाहिए जिसके प्रत्येक प्राणी एक दूसरेसे प्रेम रखे और अन्य भावनाका त्याग कर केवल गरोहकी कल्याण कामना ध्यानमे रखे। यह तभी सम्भव है जब एक गरोह एक बड़े संयुक्त परिवारके समान हो। गरोह जितना ही बड़ा होगा, उपरोक्त आदर्शका पालन उतना ही कठिन होता जायगा। बड़े पैमानेपर उत्पादनकी प्रवृत्ति—जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है—छोटे-छोटे गरोहोंको एक बड़े गरोहमे लुप्त कर देनेकी है। ऐसी व्यवस्थामे उपरोक्त आदर्शको सफल नहीं बनाया जा सकता।

उत्तरमे यह कहा जा सकता है कि बड़े पैमानेपर उत्पादनमें—बड़े-बड़े कल-कारखानोंमे—काम करनेवाले अपना छोटा-छोटा गरोह बना लेते है। इसलिए उनके बीच सच्चे भ्रातृभाव और सहयोगका विकास सम्भव होगा। प्रत्येक गरोहके लोग एक साथ रह सकते हैं, पढ़-लिख सकते है, खेल-कूद सकते है और खा-पी सकते है। रूसमें इसी तरहका प्रयोग हो भी रहा है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि बड़े पैमानेपर उत्पादन समाजमे भ्रातृभाव तथा सहयोगके भावके विकासमे किसी तरहकी बाधा नही उपस्थित कर सकता। बल्कि आशा तो यही की जाती है कि बाधक न बनकर वह साधक ही बनेगा। लेकिन यदि इस तरहके भ्रातृभावकी स्थापनाकी कल्पना समाजवाद करता है तब तो वर्तमान पूँजीवादी प्रथामे भी इस तरहके भ्रातृभावकी स्थापना सम्भव है। यह तो प्रत्यक्ष

देखा जाता है कि वर्तमान ग्रेट ब्रिटेन, जापान तथा स्वयं हिन्दुस्तानमे कल-कारखानोमे काम करनेवाले मजूरोमें समान जीवन व्यतीत करनेके लिए सङ्गठनकी प्रवृत्ति दिखायी देती है। लेकिन जहाँतक मेरा विचार है समाजवाद केवल इतना ही नही चाहता। समाजवाद समस्त आर्थिक ढाँचेको ही पारिवारिक सिद्धान्तके आधारपर कायम करना चाहता है अर्थात् समाजवाद चाहता है कि उत्पादन और व्यय (बँटवारा) का सारा काम एक परिवारकी नाईं चलता रहे अर्थात् राष्ट्रका प्रत्येक प्राणी परिवारके एक सदस्यकी भाँति अपनी योग्यता और शक्तिका पूरा उपयोग कर प्रत्येक व्यक्तिके कल्याणको सामने रखकर उत्पादनके लिए श्रम करे। अपना निजी स्वार्थ उसके सामने न रहे और उत्पादनमेंसे अपने परिश्रमके अनुसार लाभका अंश न लेकर अपनी आवश्यकताके अनुसार ले। समाजवाद आर्थिक जीवनको वर्तमात भौतिकवादके गड्ढेसे—जिसमे वह गिर गया है—निकालकर उसे आध्यात्मिक और मानवीय बनाना चाहता है। केवल वैयक्तिक लाभके सिद्धान्तको लेकर वह आगे बढ़ना नहीं चाहता जिसका आधार उत्पादन और आवश्यकता है और जहाँ दूसरोके सुख-दुःखका जरा भी विचार नहीं किया जाता। उसके सिद्धान्तका आधार है पड़ोसीके सुख-दुःखका ख्याल, परस्पर प्रेम और सद्भाव। इसीके आधारपर मनुष्य अपनी हानि तथा लाभपर आँख न रखकर दूसरोकी सहायता कर सकता है, उसके आवश्यकतापर ध्यान रख सकता है। यदि आर्थिक व्यवस्थाको उपरोक्त आधारपर काम करना है तो इसकी

पूर्तिके लिए केवलमात्र इतना ही आवश्यक नहीं है कि एक कारखानेमें काम करनेवाले मजूरोमे भ्रातृभाव और परस्पर सहयोगकी भावनाका उदय हो। पारिवारिक भावना या सच्चा प्रेम केवल एक कारखानेमे काम करनेवालोके बीच ही होना पर्याप्त या आवश्यक नहीं है। बल्कि इस भावनाका उदय समस्त उत्पादकों और समस्त उपभोक्ताओंके बीच होना चाहिए। कहनेका मतलब यह कि यह भ्रातृभाव केवल पञ्जाबके गेहूँ पैदा करनेवालोके बीच ही आपसमे नहीं होना चाहिए बल्कि उनके तथा कोयम्बतूरके कपड़ेके कारखानोंमे काम करनेवालोके बीच भी होना चाहिए, बङ्गालके पाट पैदा करनेवालो तथा कानपुरके चमड़ेके कारखानोंमे काम करनेवालोके बीच होना चाहिए। उसी हालतमे पञ्जाबके खेतिहर अन्य प्रान्तोके अपने भाइयोके ख्यालसे ज्यादा-से-ज्यादा पैदा कर सकते हैं और उनके मालसे अपने लिए केवल उतना ही ले सकते है जितनेकी उन्हे नितान्त आवश्यकता है। लेकिन सैकड़ो मीलोकी दूरीपर स्थिति उत्पादको और उपभोक्ताओंके बीच इस तरहका पारिवारिक भाव पैदा होना असम्भवसा प्रतीत होता है। इस तरहकी भावनाका उदय वहीं सम्भव है जहाँ जमात या गरोहका दायरा सीमित है, जहाँ उत्पादन स्थानीय आवश्यकताके लिहाजसे ही होगा और जो लोग अपना उपार्जित सामान ही काममे लावेगे। ऐसी हालत उत्पन्न करनेके लिए बड़े पैमानेपर उत्पादनसे सदा बचना होगा। किसी भी परिवारका व्यक्ति कमानेके लिए जी तोड़ परिश्रम इसलिए करता है और अपने निजी स्वार्थकी चिन्ता इसलिए नहीं करता, क्योकि वह परिवार-

के प्रत्येक प्राणीको अपना अङ्ग समझता है, और उन्हे सुखी तथा निश्चिन्त रखना अपना कर्तव्य समझता है। इस तरहका प्रेम तथा कर्तव्यकी भावना उन लोगोके लिए कैसे उदय हो सकती है जो एक दूसरेसे सैकड़ो मीलकी दूरीपर रहते है। यह तभी सम्भव है जब गरोहका दायरा इतना ज्यादा सीमित हो कि वे आपसमे वरावर मिलते जुलते रहे और एक दूसरेके सम्पर्कमे रहे। और यदि इस तरहके गरोहको अपनी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए आत्मनिर्भर वनकर रहना है—यदि इस तरहके प्रत्येक प्राणीके बीच पारिवारिक सद्भाव और प्रेम स्थापित करना है जो नितान्त आवश्यक है—तो वड़े पैमानेपर उत्पादनकी नीतिसे काम नही चल सकता। इसलिए जवतक समाजवादी वड़े पैमानेपर उत्पादनका स्वप्न देखते रहेगे तवतक वे अपने उस उद्देश्यकी पूर्ति नही कर सकेगे।

हमने ऊपर जो कुछ कहा है उसे गलत सावित करनेके लिए रूसका उदाहरण नही पेश किया जा सकता, जहाँके लिए यह कहा जाता है कि वहाँके लोग एक परिवारकी भाँति प्रेम और उत्साहसे काम करते हैं। कोई भी राष्ट्र—चाहे वह साम्राज्यवादी हो, फासिस्ट या नाजी हो—अधिनायकत्वमें राष्ट्रीय सङ्कटके समय सभी अन्य भावनाओंको त्यागकर एक हो जाता है और एक परिवारकी तरह काम करता है। लेकिन केवलमात्र इतनेसे ही यह सावित नही किया जा सकता कि उन्हे अपने पड़ोसियोंके लिए वही प्रेम है जो एक परिवारके सदस्यको अपने परिवारवालोंके लिए होता है। समाजवादके आदर्शकी पूर्तिके लिए इसी तरहके भ्रातृभावकी आवश्यकता है।

एक बात और विचारणीय है। समाजवाद उत्पादन और उपभोगके लिए बड़े-बड़े कारखाने खोलनेकी व्यवस्था करना चाहता है। क्या यह सम्भव है कि इतने बड़े-बड़े कारखानोमे सच्चे भ्रातृभावकी भावनाका उदय हो सकता है। यदि किसी संस्थाको पूर्णताके साथ चलाना है तो उसमे किसी तरहका पक्षपात या भेदभाव नही होना चाहिए। वहाँ नियमोका पूरी तरह पालन होना चाहिए, खासकर जब लाखो व्यक्तियोको एक साथ लेकर चलना है। किसी व्यक्ति विशेषके विचारसे उसे अपने नियमोको ढीला नही करना चाहिए बल्कि सबके साथ बिना किसी भेदभावके, समान व्यवहार करना चाहिए। अन्यथा इस संस्थापर अनेक तरहकी विपत्तियाँ आ सकती है। इस तरहकी संस्थाका काम मशीनकी तरह ही चल सकता है, व्यक्ति विशेषका ख्याल वहाँ नहीं हो सकता। यही कारण है कि किसी भी संस्थाका संचालक—चाहे वह संस्था अस्पताल हो, स्कूल हो, अदालत हो, या जेलखाना—अपने व्यक्तिगत व्यवहारमे कितना भी उदार या दयालु हो लेकिन संस्थाके अधिकारीकी हैसियतसे तो उसे कड़ा होना ही पड़ता है और निष्पक्ष होकर नियमका कड़ाईसे पालन करना पड़ता है। नियम या कानूनका उद्देश्य है सबके साथ बराबरीका न्याय। संस्थाका अफसर नियमकी आड़मे पनाह ले सकता है और कह सकता है कि "तुम्हारे साथ हमारी सहानुभूति अवश्य है लेकिन हम हर तरहसे लाचार हैं क्योकि हम नियमसे बँधे है और नियमके अनुसार हम अन्यथा कुछ नही कर सकते। जहाँ सैकड़ों आदमियोका प्रश्न है—चाहे वे रोगी, छात्र,

या कैदी हो—वहाँ सदिच्छा रहते भी संचालक प्रत्येक व्यक्तिके लिए अलग-अलग व्यवहारका तरीका नहीं अख्तियार कर सकता, उसके सामने समस्याएँ और कठिनाइयाँ है। इसका परिणाम यह होता है कि बड़े-बड़े सङ्गठन मशीनकी तरह निर्जीव हो जाते है। जहाँ समस्त राष्ट्रके लिए उत्पादन और उपभोग एक सूत्रमे सङ्गठित किया जायगा और देशभरमें वह जालकी भाँति फैला रहेगा वहाँ इसी तरहकी अवस्था उत्पन्न होगी। ऐसी हालतमे इस बातकी कल्पना नहीं की जा सकती कि उन लोगोमे परस्पर प्रेम या भ्रातृभावका उदय होगा। प्रेम वैयक्तिक भाव है और संस्थाको चलानेके लिए नियम और विधान कठोर और भावनाशून्य होता है। जिस वातावरणमें वैयक्तिक भावनाके लिए कोई स्थान नहीं है वहाँ इस बातकी आशा कैसे की जा सकती है कि किसी भी प्रकार परस्पर प्रेम और सद्भावनाका उदय होगा। इस तरहकी भावनाका उदय और विकास वहीं हो सकता है जहाँ व्यक्तियोंका एक दूसरेसे हेलमेल हो। इसके लिए छोटा गरोह ही उपयुक्त है। समाजवाद जिस बड़े पैमानेपर उत्पादन और उपभोगकी कल्पना करता है वहाँ तो इसकी सम्भावना ही नहीं है।

(६) बड़े पैमानेपर उत्पादनमें शक्तिका केन्द्रीकरण—उसका दोष :—

उत्पादनका काम ऐसे दक्षोके हाथमे चला जाता है जो उन मशीनोको चला सकते है। इस तरह राष्ट्रका समस्त आर्थिक जीवन चन्द दक्षो और संचालकोके हाथमे चला जाता है। दक्षो द्वारा इस तरहके संचालनको टेकनाक्रेसी या संचालक शासन कहते है। इस तरह समाजवाद पूँजीवादसे पिण्ड छुड़ाकर उनके स्थानपर ऐसे लोगोको कायम कर देता है जिनका एकाधिपत्य स्थापित हो जाता है। २-११-३४ के 'हरिजन'मे महात्मा गांधीने एक लेखमे लिखा था—"मै एकाधिपत्य और विशेषाधिकारसे घृणा करता हूँ। सर्वसाधारण जिसमे हिस्सा न बँटा सके वह मेरे लिए तुच्छ है।" उनकी इस धारणासे कौन समाजवादी सहमत नही होगा? तोभी समाजवाद अपने इस आदर्शसे बलात् हट जाता है और उत्पादनका नियन्त्रण कतिपय दक्षोके हाथमे दे देता है क्योकि वह बड़े पैमानेपर उत्पादनका पक्षपाती है।

हम ऊपर कह आये है कि बड़े पैमानेपर उत्पादन तथा विभाजनके लिए बहुत बड़े सङ्गठनकी आवश्यकता पड़ती है। किसी भी सङ्गठनमे काम करनेकी वैयक्तिक स्वतन्त्रताका अपहरण हो जाता है और वह स्वतन्त्रता या अधिकार कुछ चुने हुए व्यक्तियोके हाथमे चला जाता है जो उसकी ओरसे उसका प्रयोग करते है। इस तरह अधिकारोका केन्द्रीकरण हो जाता है। सङ्गठन जितना बड़ा होगा उतना ही ज्यादा अधिकारोका केन्द्रीकरण होगा और चोटीके चुने हुए व्यक्तियोके हाथमे सारा अधिकार चला जायगा। बड़े पैमानेपर उत्पादन स्थानीय आवश्यकताकी पूर्ति करनेसे ही सन्तुष्ट न होकर समस्त राष्ट्र-

की आवश्यकताकी पूर्तिका प्रयास करता है, इसलिए उसे चलानेके लिए जो संस्था कायम की जाती है वह समूचे राष्ट्रकी होती है। समाजवादमे राष्ट्र ही इस संस्थाका रूप ग्रहण करता है। इस तरह राष्ट्रका एकछत्र शासन कायम हो जाता है। पूँजीवादी प्रथासे भी वह शक्तिशाली हो जाता है क्योंकि पूँजी-वादी प्रथामे उत्पादन और विभाजन व्यक्तिविशेषके हाथमे रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि आर्थिक क्षेत्रमे भी अधिकार अधिनायक तथा उसके कतिपय पार्श्वचरोंके हाथमे आ जाता है।

इस तरहका एकाधिपत्य या एकछत्र शासन स्वयं बुरी चीज है क्योंकि इस प्रथामे कतिपय व्यक्तियोंके हाथमे पूरा अधिकार आ जाता है जो अच्छे-से-अच्छे व्यक्तिके लिए भी उपयुक्त या समीचीन नहीं है। समाजवादी वैयक्तिक उद्योगको इसलिए मिटाना चाहते हैं कि उस व्यवस्थामे उत्पादनका समस्त साधन कतिपय व्यक्तियोंके हाथमे हो जाता है और इस तरह चन्द लोगोंका प्रभुत्व बहुतोंपर स्थापित हो जाता है जिन्हें उनके इशारेपर चलना पड़ता है। लेकिन बड़े पैमानेपर समाजवादी उत्पादन व्यवस्थामे भी उस हालतमे किसी तरहका सुधार नहीं होता क्योंकि अन्ततोगत्वा वहाँ भी राष्ट्रके समस्त व्यक्तियोंको उन कतिपय व्यक्तियोंके इशारेपर ही चलना पड़ता है जिनके हाथमे राष्ट्रके समस्त आर्थिक साधनोंकी बागडोर आ जाती है। उत्पादनपर व्यक्तिविशेषके अधिकारको बुरा बतलाकर समाज-वादी उसका मूलोच्छेद करना चाहते हैं। इसकी बुराई केवल-मात्र यही है कि इस प्रथामे सारा अधिकार मालिकके हाथमें

रहता है। उस प्रथाका अन्तकर तथा राष्ट्रके हाथमे समस्त आर्थिक अधिकार सौपकर हम उस बुराईसे त्राण कहाँ पाते हैं वह तो ज्यो-का-त्यो कायम रहती है। यहाँ भी बहुतोका भाग्य कतिपय व्यक्तियोके हाथमे ही केन्द्रित रहता है। अधिकार बुराइयोकी जड़ है। समाजवादके अन्दर राष्ट्रके हाथमे जो एकाधिपत्य आ जाता है, वह भी बुराईसे मुक्त नही हो सकता।

यह तो कल्पनाके बाहरकी बात है कि सर्वहाराका अधिनायकत्व, जिसमे एक व्यक्तिके हाथमे एकाधिपत्य आ जाता है, अपने अस्तित्वको समूल नष्ट कर देगा। जिन्हे एक बार अधिकारका रस मिल गया—चाहे वह एक व्यक्ति हो या समूह हो—वह अधिकारको जल्दी त्यागना नही चाहेगा। इतना ही नही, बल्कि जबतक राष्ट्र बड़े पैमानेपर उत्पादनकी प्रथाका कायल रहेगा तबतक राष्ट्रका यह केन्द्रित नियत्रण अनिवार्य है। उससे पिण्ड नही छुड़ाया जा सकता। क्योंकि जबतक उत्पादन और विभाजन सामूहिक रूपसे चलता रहेगा तबतक उसका नियन्त्रण इसी प्रकार चन्द व्यक्तियो द्वारा होते रहना अनिवार्य है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना काम करनेके लिए स्वतन्त्र हो जाय तब तो कोई भी सङ्गठन या संस्था—खासकर ऐसी जटिल संस्था जिसकी बड़े पैमानेसे उत्पादन और विभाजनके सञ्चालनके लिए नितान्त आवश्यकता है—घड़ी भरके लिए भी नही टिक सकती। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जबतक समाजवादी बड़े पैमानेपर उत्पादनके सिद्धान्तसे चिपका रहेगा तबतक राष्ट्रहीन समाजका उसका ध्येय पूरा नही हो सकता। राष्ट्र या केन्द्रित नियन्त्रणका धीरे धीरे तभी लोप हो सकता

है—जैसा समाजवादी चाहते हैं—जब उत्पादन और विभाजन विकेन्द्रित कर दिये जायँ और छोटे-छोटे गरोह कायम हो जायँ जो अपना काम खुद-बखुद चलाने लग जायँ।

(ख) गृह-कलह—अधिकारके साथ ही डाह, इर्ष्या, द्वेष, द्वन्द्व और कलह उत्पन्न होता है और चूँकि समाजवादी प्रथामे अधिकार-सम्पन्न व्यक्तियोंके हाथमें उत्पादन तथा विभाजनका भी पूरा नियन्त्रण रहेगा इसलिए इसकी पूरी सम्भावना है कि ईर्ष्यालु प्रतिद्वन्द्वी जीवनकी प्रत्येक विषमताओंके लिए उन्हे बदनाम करना चाहेगे क्योंकि उनके हाथसे अधिकार छीन लेनेके लिए वे सदा प्रतिद्वन्दी दल तैयार करनेके यत्नमे रहेगे। इस तरह राष्ट्रोंमें स्थिरता नही आने पावेगी और वह सतत गृह-युद्धका अखाड़ा बन जायगा। दूसरोंपर शासन करनेके अधिकारका लोभ दिन-पर-दिन बढ़ता जायगा। समाजवाद सिद्धान्ततः दूसरोंपर शासन करनेका यह अधिकार पूर्णरूपसे समाजवादी सङ्गठनको देता है इसलिए समाजवादी-राष्ट्र अधिकार प्राप्त करनेके लिए राजनीतिक द्वन्द्वका अखाड़ा बन जायगा।

(ग) युद्ध:—अधिकारकी इस लिप्साका कहाँ अन्त होगा, कोई नहीं कह सकता, क्योंकि साम्राज्यवादी शक्तियोंकी भाँति यह अपने देशकी सीमाको पारकर अन्य देशोके जीतनेके लिए भी प्रेरणा प्रदान कर सकती है। पूँजीवादियोंकी तरह यह भी राष्ट्रीयताकी दोहाई देकर सारे विश्वको युद्धके खतरेमे डाल सकती है। हम पीछे दिखला आये है कि मार्क्सके सिद्धान्तमे सबसे बड़ा दोष यह है कि उसने राष्ट्रीयताकी सर्वथा उपेक्षा की है। वर्तमान युगमें राष्ट्रीयता एक राष्ट्रको दूसरे राष्ट्रके साथ

जा सकता। हम ऊपर दिखला आये है कि जबतक बड़े पैमानेपर उत्पादन और विभाजनकी व्यवस्था जारी रहेगी, तबतक इस तरहकी बात कल्पनामात्र ही रहेगी। केन्द्रीकरणका अर्थ ही होता है व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका अपहरण और केन्द्रमे या राष्ट्रके हाथमे सारी शक्तिका सञ्चय। इसमे किसी तरहका विकल्प नही हो सकता। उत्पादनमें केन्द्रीकरणके बावजूद भी पूँजीवादी प्रथामे किसी हद्तक वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा वैयक्तिक संपत्तिके लिए स्थान है। पूँजीवादी प्रथाकी तरह यहाँ भी मालिक चन्द ही होते है इसलिए बाकी सब गुलाम हो जाते हैं। समाजवाद वैयक्तिक सम्पत्तिके भी सर्वथा खिलाफ है। इसलिए समाजवादी प्रथामे वैयक्तिक स्वतन्त्रताका सर्वथा लोप हो जाता है। समाजवादी केन्द्रीकरणका यह सबसे पहला अभिशाप है। इस दृष्टिसे समाजवादी प्रथाको पूँजीवादी प्रथाका प्रौढ़ या समीचीन रूप ही कह सकते है अर्थात् पूँजीवादी प्रथाकी कमजोरियोको दूरकर यह केन्द्रीकरणकी दृढ़ भित्तिपर अपना अधिकार कायम करता है और वैयक्तिक सम्पत्तिको सदाके लिए हवा कर देता है। हम पीछे दिखला आये है कि पूँजीवादी केन्द्रीकरण प्रथामे ज्यो-ज्यो व्यवसाय आगे बढ़ता है वह छोटे छोटे उद्योगोको उदरस्थ करता जाता है। इसका विस्तार इतना व्यापक होता है कि एक भी वैयक्तिक उद्योग कायम नही रह जाते, एक-एक करके सभी उसमे समा जाते हैं। इस तरह सभी कारोबार या उद्योग राष्ट्रीय या राष्ट्रकी सम्पत्ति बन जाते है। इस दृष्टिकोणसे विवेचन करनेपर तो

यही प्रतीत होता है कि पूँजीवादी प्रथा आप-ही-आप समाजवादकी ओर खिचती चली जा रही है, वह इसे रोक नहीं सकती। जिन देशोंमें पूँजीवादी प्रथा चरमोत्कर्षपर पहुँच चुकी है, कमसे-कम उन देशोंकी यही हालत है। इस तथ्यको समाजवादके ही अनेक विद्वान् इतना ज्यादा समझने लगे हैं कि वे इस मतका प्रतिपादन करने लग गये है कि समाजवादकी स्थापनाके लिए किसी तरहकी क्रान्तिकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि पूँजीवाद धीरे-धीरे उत्पादनके समाजीकरणकी तरफ अग्रसर हो रहा है। लेकिन व्यक्तिके दृष्टिकोणसे विचार करनेपर इसका क्या परिणाम निकलेगा? अभी हालकी बात है, संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाकी सरकारने इस बातकी धमकी दी थी कि वह रेलवे कम्पनियोका वैयक्तिक अधिकार लेकर राष्ट्रके हाथमें सौंप देगी। क्यों? केवल इसलिए कि रेलके कर्मचारी हड़ताल न करने पावें और इस तरह युद्धोद्योगोंमें बाधा न पहुँच सके। इससे तो यही तात्पर्य निकलता है कि सरकार मजदूरोंके हाथसे उनका यह अस्त्र भी छीन लेना चाहती है अर्थात् अपनी शिकायतोंको दूर करानेके लिए हड़तालरूपी जो एकमात्र अस्त्र उनके पास है। उसका प्रयोग भी वह उन्हे नहीं करने देना चाहती। पूँजीवादी प्रथामे कमसे कम इतनी स्वतन्त्रता तो उसके हाथमे रह जाती है। और जहाँ पूँजीपति मालिक मजूरोंका मुकाबला करनेकी पूरी ताकत नहीं रखता है वहाँ मजूरोंकी माँगे पूरी कर दी जाती है। लेकिन जब उद्योग और व्यवसाय राष्ट्रके हाथमे आ जायगा तो हड़तालकी स्वतन्त्रता

भी मजूरोंको नहीं रह जायगी क्योंकि यह राष्ट्रके प्रति विद्रोह समझा जायगा और विद्रोह तथा विद्रोहियोंके दमनके लिए राष्ट्रकी सारी शक्ति और उपकरणोंका प्रयोग किया जायगा। इस तरह केन्द्रीकरणकी पूर्णताके साथ-ही-साथ मजदूरोंकी स्वतन्त्रताका अन्त हो जाता है। समाजवादी प्रथामें भी इस तरहकी बातोंका होना असम्भव नहीं है। क्योंकि मार्क्सवाद खुद इस बातका एलान करता है कि जनताका जीवन तथा विचारधारा निर्धारित करनेमें उत्पादनके तरीके सबसे ज्यादा महत्त्व रखते हैं। उत्पादनकी केन्द्रित प्रथाको कायम रखकर अपने सिद्धान्तके अनुसार समाजवादमें ही वह जनतापर उसी तरहके प्रभावकी आशा करेगा, जैसा पूँजीवादी प्रथामें रहता है अर्थात् गुलामी और अधीनता। चूँकि समाजवादी प्रथामें केन्द्रीकरण चरम सीमापर पहुँच जाता है इसलिए वहाँ इसकी और भी अधिक सम्भावना है।

जिस तरह पूँजीवादी प्रथाने लोगोंकी सम्पत्तिका अपहरण कर लिया और जो जनसाधारणका था उसे पूँजीपतियोंके हाथमें सौंप दिया उसी तरह समाजवादी प्रथा जनसाधारणकी स्वतन्त्रताका अपहरण कर उसे राष्ट्रके हाथमें सौंप देता है। अधिकारका केन्द्रीकरण सम्पत्तिके केन्द्रीकरणसे कम खतरनाक नहीं है। अधिकारका मद बहुत ज्यादा खतरनाक होता है और अधिकारमत्त व्यक्ति अपने विरोधियोंके प्रति उसका प्रयोग बड़ी निर्दयतासे करता है। अधिकारी वर्गके साथ जिन लोगोंका मत नहीं मिलता उनके पीछे खुफिया और गुप्तचर लगे रहते हैं, उनका जीवन संकटापन्न हो जाता है, अपने

विचारोंके प्रचारकी उन्हे स्वतन्त्रा नही रहती, और अन्तमे हत्या, फाँसी, कारावास या निर्वासनद्वारा वे रास्तेसे दूर कर दिये जाते है । यदि कोई व्यक्ति अपनी आजादी कायम रखना चाहता है और अधिकारीवर्गकी आलोचना करना चाहता है तो उसे सबसे पहले अपने सङ्गठनको—जिसके द्वारा उसके कार्यका संचालन होता है—छोटा-से-छोटा रखना होगा और दूसरे उसे अपने पैरोपर खड़ा होनेकी शक्ति प्राप्त करनी होगी । लेकिन समाजवादी प्रथामें बड़े पैमानेपर उत्पादन होनेसे समूचे राष्ट्रका ही एक सङ्गठन होता है और राष्ट्रके सारे अधिकार उसे प्राप्त होते है। इसका फल यह होता है कि व्यक्तिकी आर्थिक स्वतन्त्रताका अपहरण हो जाता है क्योंकि वह उस बड़ी जमातका अङ्ग हो जाता है जो कारखानों या खेतोंमे बड़े पैमाने-पर उत्पादन करनेमें संलग्न हैं । इसलिए इतने बड़े संगठनका वह किसी भी तरह मुकाबला नही कर सकता । इसका एक कारण यह भी है कि इतने बड़े संगठनमें काम करनेका फल यह होता है कि उसमे क्षमता और आत्मनिर्भरता नहीं रह जाती । इसलिए या तो उसे दब जाना पड़ता है या वह मटियामेट कर दिया जाता है । अगर संस्थाका उद्देश्य व्यक्तिको इस तरह शून्य बना देना नहीं है तो इसका एकमात्र उपाय उत्पादनको विकेन्द्रीकरण कर उसे व्यक्तियोंके हाथमें छोड़ देना चाहिये ताकि वे अपनी शक्ति और योग्यताके अनुसार उत्पादन करे । यही एक रास्ता है जिससे समाजवादियोंके आदर्शकी पूर्ति हो सकती है अर्थात् अधिकाधिक व्यक्तियोको अधिकाधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है ।

करता है। उदाहरणके लिए यदि कोई व्यक्ति एकाएकी दुश्मनका मुकाबला करने चले तो वह परास्त हो सकता है, लेकिन यदि वह अपने साथ अन्य अनेक व्यक्तियोको ले लेता है तो वह सफल हो सकता है। यदि वह अपनी वैयक्तिक सत्ता खो भी देता है तो प्रकारान्तरसे उसे उससे कही ज्यादा स्वत्व प्राप्त हो जाता है। लेकिन वास्तविकता तो इससे कोसो दूर है। ऊपर जो उदाहरण दिया गया है उसमे कोई बल नही है। वह बहुत ही लचर है, क्योंकि इस तरहकी संयुक्त क्रियामे—जहाँ लोग आपसमे मिलजुलकर काम करते है, यह मान लिया जाता है कि उस गरोह या दलके प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है। केवल कार्य-विशेषके लिए उन्होने अपना दल कायम कर लिया है या एक हो गये है। लेकिन जिस एक समाजकी बात समाजवाद कहता है उसे सहयोग नही कह सकते। दोनोमे उत्तर-दक्षिणका अन्तर है। उस समाजमे वैयक्तिक सत्ताका सर्वथा लोप हो जाता है, लेकिन सहयोगमे वह सत्ता स्वतन्त्र रूपमे वर्तमान रहती है और प्रत्येक व्यक्तिके लिए इस बातकी आजादी रहती है कि चाहे वह शामिल हो या न हो। सहयोग ऐसे ही व्यक्तियोमे सम्भव है जो स्वतन्त्र है और जमात या दलसे अलग रहकर भी वे अपना काम हर तरह चला सकते है; लेकिन समाजीकरण वह संगठन है जिसमे व्यक्ति अपनी सारी सत्ता खो देता है और वह इस प्रकार मातहत या दूसरोपर निर्भर हो जाता है कि जमातसे अलग होकर वह कुछ कर ही नही सकता। सहयोग ऐसे दो व्यक्तियोंका मिलन है जिनके सम्पूर्ण अवयव अपना पूरा काम करते है और दोनों एक दूसरेके

कामको समुन्नत बनानेके लिए मिल जाते हैं और समाजीकरण दो ऐसे व्यक्तियोंका मिलन है जो अपङ्ग है, जैसे एक अन्धा तो दूसरा लँगड़ा। यदि इन दोनोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाना है तो ये अलग-अलग नहीं पहुँच सकते, एक दूसरेकी सहायतासे ही निर्दिष्ट स्थानतक पहुँच सकते हैं। इसलिए इनकी निजी कोई सत्ता नहीं है।

यदि हमलोग वैयक्तिक स्वतन्त्रताको पवित्र धरोहर मानते हैं और उसे इसी तरह कायम रहने देना चाहते हैं तो उसके लिए सबसे उपयुक्त तरीका यही होगा कि उत्पादनका विकेन्द्रीकरण कर दिया जाय और जहाँतक सम्भव हो, प्रत्येक व्यक्तिको अपने पैरोंपर खड़ा होनेका अवसर दिया जाय। लोकतन्त्र अथवा प्रजासत्तात्मक शासनकी पहली कसौटी यही है कि आर्थिक व्यवस्था सुसम्पन्न हो। इस तरहकी केन्द्रित आर्थिक व्यवस्था, जिसमें अधिकार जनताके हाथमें न रहकर केन्द्रमें व्यवस्थित हो, सच्चे लोकतन्त्रके उपयुक्त नहीं है। केन्द्रित आर्थिक व्यवस्थाकी बुराईको दूर करनेके लिए लोकतन्त्रके बाहरी आवरणसे उसे ढँक देनेसे काम नहीं चलेगा। सच्चा गणतन्त्र शासन तभी सम्भव हो सकता है जब आर्थिक व्यवस्था ऐसी हो कि प्रत्येक व्यक्ति यथासम्भव अपने उद्योगका मालिक हो; जबतक आर्थिक व्यवस्था ऐसी नहीं होती कि प्रत्येक व्यक्तिको अपना मालिक बननेकी सम्भावना हो, तबतक स्वायत्त शासन खोखला रहेगा। यदि अपने निजी दैनिक कामके लिए व्यक्तिको स्वतन्त्रता और आजादी नहीं मिल सकती तो व्यापक रूपसे राष्ट्रीय स्वतन्त्रताकी चर्चा उसके लिए कोई महत्त्व

नहीं रखती। वह तो ऐसा आलोक होगा जो उसकी पहुँचके बाहर होगा।

समाजवाद जिन बड़ी-बड़ी देनोकी चर्चा करता है उसका किसी भी व्यक्तिके लिए तबतक क्या उपयोग हो सकता है जबतक उसे वे प्राथमिक आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त नही हो सकतीं जो उसके विकासके लिए नितान्त आवश्यक है और जिनपर उसका सारा भविष्य निर्भर करता है। मनुष्यके विकासके सबसे बड़े साधन स्वतन्त्र सत्ताको कायम रखनेके लिए यदि जीवनके थोड़े ही साधन उपलब्ध हो सके तो भी मनुष्य उससे सन्तोष कर सकता है। यदि आत्मविकास और बहुतायतके बीच चुनाव करनेकी स्वतन्त्रता हो तो मनुष्य निश्चय ही उस मार्गको पसन्द करेगा जिसके द्वारा उसका आत्मविकास सम्भव हो। इससे विपरीत दशामे हम स्वतन्त्र मानव तो नही ही पैदा कर सकते, स्वस्थ और सॅवारा हुआ गुलाम भले ही तैयार कर ले। मेरा खयाल है कि कोई भी समाजवादी इस अवस्थाको पसन्द नही करेगा यदि उसका वास्तविक ध्येय पददलितो और मजूरोको वर्तमान निरीह अवस्थासे उठाकर उन्हे स्वतन्त्रता प्रदानकर पूर्ण मानव बनाना है। आत्माकी स्वतन्त्रता ही सच्ची सम्पत्ति है और प्रत्येक मनुष्यको उसीकी प्राप्तिके लिए यत्न करना चाहिए, चाहे इस उद्योगमे सांसारिक वस्तुओकी प्राप्ति कम ही हो सके। धन अथवा अगणित वस्तुओका मालिक बननेकी अपेक्षा प्रत्येक मनुष्य आत्मिक स्वतन्त्रता तथा अपने अधिकारोका पूरा प्रयोग अधिक पसन्द करता है।

समाजवादियोका भी यही अन्तिम ध्येय है, क्योकि वे

मनुष्यके सुखके साधनोंकी उन्नति करना चाहते हैं। उसके मार्गमें केवलमात्र बाधा बड़े पैमानेपर उत्पादन है जिसे उसने पूँजीपतियोंसे प्राप्त किया है। बड़े पैमानेपर उत्पादनमें केन्द्रीकरण अनिवार्य है और केन्द्रीकरणमे वैयक्तिक स्वतन्त्रताका सर्वथा लोप हो जाता है। यदि वैयक्तिक स्वतन्त्रताको कायम रखना है तो केन्द्रीकरणका अन्त कर उसके स्थानपर विकेन्द्रीकरणको कायम करना होगा और प्रत्येक व्यक्तिको अपने निजी साधनोंपर निर्भर रहने देना होगा ताकि अपनी व्यवस्था आप करके उसे ऊपर उठने और विकसित होनेका अवसर मिले। यदि एकाकी नहीं तो दूसरोंके सहयोगसे उसे वैसा करनेका अवसर प्राप्त हो। इस अवस्थामे वह अपना विकास ही नहीं कर सकेगा बल्कि वह देखेगा कि दूसरेके कल्याणमे उसका भी कल्याण निहित है। ग्रामोद्योग इसीके लिए प्रयत्नशील है।

———

है। उसे उठाकर जङ्गलमे ले जाता है। वहाँ उसकी हत्या कर डालता है और उसका आभूषण उतारकर बेचनेके लिए ले जाता है। उससे वह आभूषण खरीदनेकी लालसा किसे होगी ? क्या वह सम्पत्ति नहीं है ? लेकिन उसे प्राप्त करनेका तरीका जघन्य है। यहाँ सदाचार रास्ता रोककर खड़ा हो जाता है और लाभके लोभको आगे बढ़ने नही देता। यह मालूम हो जानेपर कि किसी निरीह बालककी हत्या करके ये आभूषण चुराये गये है, उन्हे खरीदनेके लिए कोई तैयार नहीं होगा, चाहे कितने ही सस्ते दरपर वे क्यो न बेचे जायँ।

अथवा जब हमलोग कपड़ा ही खरीदने लगते हैं तो क्या भावना काम करती है ? एक कपड़ा सादा और मोटा है उसका मूल्य ६ आने गज है, दूसरा महीन और चमकदार है, उसका मूल्य १२ आने गज है। क्या हमलोग हमेशा सस्ता कपड़ा ही खरीदते है ? क्या कभी-कभी अन्य आवश्यकताओंको दबाकर हमलोग महँगा कपड़ा नही खरीदते ? क्यो ? इसका कारण यह है कि सदा सस्तापन ही हमारे दृष्टि-पथपर नही रहता। हमलोग सौन्दर्य और साथ ही साथ अपने पड़ोसीका आदर भी चाहते है।

अथवा किसी वैज्ञानिक, दार्शनिक या सन्तका जीवन ले लीजिये। सत्यकी खोजमे वह इतना तल्लीन रहता है कि सुख और आरामको तिलाञ्जलि देकर वह रातदिन परिश्रममे डूबा रहता है। कितना बड़ा भी आर्थिक प्रलोभन क्यो न हो, वह उन्हे अपने पथसे विचलित नही कर सकता। इतना ही नहीं,

राजदण्ड और कहीं-कहीं मृत्युका सामना करके भी वे अपने सिद्धान्तपर अटल रहते हैं, उससे विचलित नहीं होते।

अथवा मजूरीको ही ले लीजिये। क्या ज्यादा-से-ज्यादा मजूरीके लोभमें आदमी कोई भी काम करनेके लिए राजी हो जायगा? चाहे वह काम चोरी या हत्या ही क्यो न हो? क्या स्वामिभक्त नौकर केवल इसलिए अपने मालिकको छोड़ देगा कि दुरवस्थाके कारण वह मालिक उस समय उसे उतना वेतन देनेमें असमर्थ है जितना दूसरा कोई उसे दे सकता है? क्या हमलोगोंके देशमे इस तरहके उदाहरण मौजूद नहीं हैं कि लोगोने विदेशी सरकारकी सेवा कर मोटी तनखाह पानेकी अपेक्षा दरिद्र रहना और कठोर यातना सहना ही पसन्द किया है?

और भी, क्या कोई भी माता-पिता अपनी सन्तानको मृत्युके पञ्जेसे छुड़ानेके लिए अपना सब कुछ निछावर कर देनेके लिए तैयार नहीं रहते? क्या माता-पिता अपनी सन्तति-की शिक्षापर अपना सब कुछ होम नहीं कर देते? क्या कोई भी व्यक्ति आर्थिक लाभके लिए अपने मित्रके साथ विश्वासघात करेगा या धनके लिए अपनी बहिन और बेटीकी इज्जत बेच देना पसन्द करेगा?

कभी नहीं। इस समस्यापर जितना ही गम्भीर विचार किया जाय उतना ही यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्यके लिए भौतिक सुख ही सब कुछ नहीं है। यदि किसीसे यह कह दिया जाय कि वह दिनरात रुपयेके पीछे ही पागल रहता है तो इसे वह अपना अपमान समझेगा। तो भी अर्थशास्त्रियोंने मनुष्यका

चित्रण इस तरह किया है मानो वह निर्जीव मशीन है और आमद तथा माँगके कड़े विधानका प्रयोग कर उसके जीवनका मापदण्ड आर्थिक आधार ही बताया है। अर्थशास्त्रियोने जहाँ एक बार इस विधानको तैयार किया, बस वे स्थिर, अटल और सर्वव्यापी मान लिये जाते है। सबसे दयनीय बात तो यह है कि व्यक्ति भी उनमे अटल विश्वास कर लेता है और उन्हे अपनी आर्थिक नीतिका आधार मानने लगता है। यदि मानव प्रकृतिका यह चित्रण पुस्तकोतक ही सीमित रहता तो विकृत होनेपर भी उससे किसी तरहकी क्षति नही हो सकती थी, लेकिन दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि मनुष्य इन्हे सच मानकर इनपर अमल करने लगता है और अर्थशास्त्रियोकी कल्पनाके अनुसार मनुष्य भी शैतानका रूप धारण कर लेता है मानो मनुष्य धन कमानेका यन्त्र है और इसके सिवा दुनियामे उसे दूसरा कोई काम नही है अर्थात् वह उस पशुके समान है जिसे अपना पेट भरनेके सिवा और किसी बातकी चिन्ता नही है।

यह भूल केवल अर्थशास्त्रियोने ही नही की है। प्रत्येक विशिष्ट विज्ञानने इस तरहकी भूले की हैं। इस तरहके प्रत्येक विज्ञानने वास्तविकताके एक अंशको ले लिया है और अपना सारा अन्वेषण और विकास उसीपर स्थिर रखा है और अन्य बातोका विचार छोड़ दिया है। इससे उपकार तो अवश्य हुआ है, क्योकि उतने अंशमें उसने पूर्ण तथ्यको खोज निकाला है, लेकिन उसकी सबसे बड़ी भूल यही है कि वह अपने प्रयोग और अनुसन्धानके लिए लेता है केवल अंशको, लेकिन खोजसे वह जो सिद्धान्त निकालता है उसका प्रयोग वह करता है पूर्णपर

और वह यह भूल जाता है कि उससे परे भी कोई चीज है। इस तरह अर्थशास्त्री उन नियमोंका अध्ययन करता है जिनका सम्बन्ध व्यवसायके सञ्चालन और नियन्त्रणसे है। वह उसे इतना स्थूल मान लेता है कि अन्य विचार जिनका संसर्ग प्रबन्धसे हो और जिनका असर प्रबन्धपर पड़ना चाहिए, उन्हें वह अपनी समीक्षामें स्थानतक नही देता और उसी आधारपर वह यह विधान तैयार करता है जिनसे यह तात्पर्य निकलता है कि रुपया कमानेके अतिरिक्त मनुष्यको और कुछ नहीं करना है। हम ऊपर दिखला आये हैं कि मानव जीवनका एकमात्र उद्देश्य धन-संग्रह ही नहीं है। इसके अलावा बौद्धिक, सदाचारिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सौन्दर्य जनित आदि अन्य बातोंसे भी उसे प्रयोजन है—और जब इनका प्रभाव मानव जीवनपर पड़ता है तो ये आर्थिक दृष्टिकोणको एकदम उलट देती है। यह ऐसी वास्तविकता है कि इसे देखते हुए इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि जबतक मनुष्यमे मनुष्यता कायम रहेगी तबतक आर्थिक प्रश्नोंके साथ-ही-साथ इनका प्रभाव भी उसके जीवनपर पड़ता रहेगा।

वर्तमान आर्थिक विचारधारामे यह जो मौलिक दोष है उसका परिहार करते हुए ग्रामोद्योग अपना काम आरम्भ करता है। वह मनुष्यको उसके असली रूपमे देखता है—एक जटिल व्यक्ति, आशाओ, आदर्शों, तथा आकांक्षाओंसे सञ्चालित, केवल आर्थिक लाभका शिकार नहीं। ग्रामोद्योग ऐसी आर्थिक व्यवस्थाकी योजना सामने रखता है जो मनुष्यकी सभी आकांक्षाओंको तृप्त कर सके। मनुष्य केवल धनसे ही सन्तुष्ट नहीं

रह सकता। जिन वस्तुओंको वह अपने जीवनमें अधिक मूल्यवान समझता है, उन्हें त्यागकर वह सस्तेपनकी ओर दौड़नेके लिए जानबूझकर तैयार नही है। वह केवल भौतिक सम्पत्ति अथवा वस्तुओंका बाहुल्य ही नही चाहता, वल्कि वह उस तरहकी सम्पत्ति चाहता है जो मनुष्यके अनुकूल हो। दूसरे शब्दोंमे यह कह सकते हैं कि वह मानव जगत्‌का कल्याण चाहता है। कोई भी आर्थिक व्यवस्था जो पूर्ण, स्थायी और आधारस्तम्भ बनकर रहना चाहती है, उसे इसकी उपलब्धिके लिए प्रयत्नशील होना पड़ेगा। जो आर्थिक व्यवस्था इन साधनो-को सम्पन्न करनेमे सफल नही हो सकती वह टिकाऊ नहीं हो सकती—चाहे उससे भौतिक लाभ कितना ही ज्यादा क्यो न होता हो। इसके प्रतिकूल जो आर्थिक व्यवस्था पूर्ण मानव बनानेका यत्न करेगी वह स्थायी और टिकाऊ होगी – चाहे उसे जीवनकी केवलमात्र आवश्यकता ही क्यो न सम्पन्न होती हो।

इस दृष्टिकोणसे विचार करनेपर यह भी कहा जा सकता है कि जो आर्थिक व्यवस्था प्रत्येक व्यक्तिके कल्याणकी कामना करती है वह व्यवस्था समाजके लिए अन्ततोगत्वा सबसे कम खर्चीली भी होगी क्योकि उसके स्वार्थके विरुद्ध काम करनेवालो-के अभावमे उन्हे दबानेके लिए जो विशाल सैनिक संगठनकी आवश्यकता होती, उसकी जरूरत नहीं पड़ेगी। हम देख आये हैं कि पूँजीवादी प्रथामे सङ्घर्ष, द्वन्द्व और गृह-कलह अनिवार्य है। समाजवादी प्रथामे भी उसकी सम्भावना बनी रहती है। जबतक यह भय कायम रहेगा तबतक राष्ट्रका बहुतसा धन

पुलिसपर व्यय होता रहेगा, सेना रखने तथा हथियार खरीदने या तैयार करानेमे व्यय होता रहेगा। धन-क्षयके साथ-साथ अगणित जनकी भी हानि होती रहती है। इसलिए अर्थशास्त्र-की दृष्टिसे भी उस आर्थिक व्यवस्थाको अधिक समीचीन और अनुकूल मानना चाहिए जिसमें दंगा-फसाद और सङ्घर्षकी आशङ्का कम हो। वह आर्थिक व्यवस्था कभी भी समीचीन नहीं मानी जा सकती जो शान्तिकालमें अत्यधिक उत्पादन करके भी आन्तरिक युद्ध अथवा गृहकलहके समय राष्ट्रका बहुतसा धन व्यय करती है। इसलिए जो व्यवस्था मानव-जातिके कल्याणपर अधिक ध्यान देती है वह अन्ततोगत्वा समाजके भौतिक साधनको भी अधिक सम्पन्न कर सकेगी। राष्ट्र या समाजके जो दो उद्देश्य पूँजीवादी तथा समाजवादी प्रथामे एक नहीं हो सकते थे और एक दूसरेसे अलग रह जाते थे, वे दोनों इस प्रथामें एकाकार होकर पूर्ण हो जाते है।

ग्रामोद्योगका यही आधार है। उसका उद्देश्य मानव-जाति-का कल्याण है। उसे इस बातका विश्वास है कि केवल भौतिक साधनोंके बाहुल्यसे ही स्थायी आर्थिक व्यवस्था कायम नही हो सकती। गान्धीजीके शब्दोमें, सच्ची और पूर्ण आर्थिक व्यवस्था-की सच्ची कसौटी अहिंसा है। यदि किसी व्यवस्थामें मनुष्यको दबाया जाता है, उसे लूटा जाता है, अथवा उसे पूर्ण विकासका अवसर नही मिलता है तो गान्धीजीकी भाषामे यह हिंसा है क्योंकि इससे व्यक्तिको चोट पहुँचायी जाती है, इसलिए वह व्यवस्था निन्दनीय है चाहे उससे कितना भी ज्यादा आर्थिक लाभ होता हो। आर्थिक व्यवस्थाका अन्तिम लक्ष्य आध्यात्मिक

होना चाहिए। उसकी सच्ची कसौटी यह नहीं है कि उससे भौतिक साधनोमे कितनी वृद्धि होती है वल्कि व्यक्ति का विकास कितना होता है, सहयोग, आत्मत्याग तथा भ्रातृभावकी वृद्धि उसमे कितनी होती है।

(ख) भारतकी प्राचीन आर्थिक प्रणाली—

ऊपर जो बाते कही गयी हैं उनका समर्थन भारतकी प्राचीन आर्थिक तथा सामाजिकप्रणालीसे भी होता है जिसका आंशिक रूप आज भी हमारे देशमे जहाँ-तहाँ देखनेमे आता है, यद्यपि पश्चिमी सभ्यताके विकट प्रभाव और भीषण प्रहारके फलस्वरूप उनका बहुत-कुछ ह्रास हो गया है तो भी उसका समूल नाश नहीं होने पाया है। उसके अध्ययन और मननसे स्पष्ट प्रकट होता है कि भारतका प्राचीन आर्थिक तथा सामाजिक संगठनका आधार और ध्येय केवलमात्र भौतिक या आर्थिक नही था, वल्कि सत्य तथा अहिंसाके आधारपर जनताका अधिकाधिक कल्याण था। प्रत्येक व्यक्तिको अपनी इच्छाके अनुसार काम करनेकी पूरी स्वतन्त्रता थी और अपने स्वतन्त्र व्यवसायद्वारा वह अपनी हर तरहकी आवश्यकताकी पूर्ति करता था। इस अर्थमे भारतकी प्राचीन आर्थिक प्रणालीको हम वैयक्तिक कह सकते है। स्वभावतः इस तरहकी आर्थिक प्रणालीमे व्यक्तिगत स्वार्थको लोककल्याण या अहिंसाकी भावना दबा देती थी और गरोहके सुख साधनकी ओर प्रवृत्त करती थी। इस उद्देश्यकी सिद्धि अनेक उपायोसे की गयी थी—जैसे, सम्मिलित परिवार, वर्ण-व्यवस्था, गाँवोकी आत्मनिर्भता तथा वदलैनका तरीका। यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती कि जमानेकी गतिके साथ इनमे अनेक ऐसे

रिवाज या चलन घुस गये जो बुराइयोंसे भरे थे। लेकिन यहाँ हमारा उद्देश्य उन बुराइयोंको दिखलाना नहीं है। हम तो उनके उन गुणोंका ही उल्लेख करना चाहते है जो बीजरूपसे उनमें वर्तमान थीं और उन गुणोंमे हमें उन मूल सिद्धान्तोंके दर्शन होते है जिनके आधारपर हम अपने राष्ट्रीय जीवनका पुनः निर्माण कर सकते है।

सयुक्त परिवार—सबसे पहले संयुक्त परिवारको ही ले लीजिये। अपने सीमित दायरेमें यह एक प्रकारका लोकतन्त्र ही था। घरका सबसे बड़ा प्राणी मालिक होता था और प्रत्येक व्यक्तिकी कमाईका उपभोग घरके सभी प्राणी समान रूपसे करते थे। व्यक्तिगत स्वार्थको तिलाञ्जलि देकर प्रत्येक व्यक्तिको परिवारके सुख-साधनको ही अपने दृष्टिपथपर रखना पड़ता था। इससे गरोह-जीवनकी शिक्षा मिलती थी। परिवारके प्रत्येक प्राणीकी कमाई परिवारभरकी समझी जाती थी, कमाने-वालेका उसपर किसी तरहका वैयक्तिक दावा नहीं रहता था। समस्त परिवारके कल्याण और सुख-साधनके लिए उसका प्रयोग होता था। इससे यह प्रकट होता था कि पारिवारिक जीवनका उद्देश्य गरोहको अधिकाधिक सुखी बनाना है, अर्थो-पार्जन तो जरिया मात्र है। इसके विपरीत आजकल क्या हालत है। संयुक्त परिवारके कायम न रहनेके कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने ही स्वार्थमें व्यस्त रहता है। उसे इस बातकी जरा भी चिन्ता नहीं रहती कि उसके बन्धुबान्धवो तथा दायादोंकी क्या हालत है। कहनेका मतलब यह कि प्राचीन सभ्यतामें आध्यात्मिकता बीज रूपसे वर्तमान थी। अर्थलोलुपता ही उसका मुख्य उद्देश्य नहीं

हो सकता था जिसमे समाज उसे लगा देता था। समाजके लिए हर हालतमे उसे अपना काम पूरा करना पड़ता था। इसका फल यह होता था कि प्रत्येक जातिके लोग अपने-अपने काममे लगे रहते थे और अधिक नफावाले पेशेकी तरफ दौड़ नही पड़ते थे, जैसा कि आजकल पश्चिमी सभ्यताके प्रभावसे हो रहा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी एक ही पेशेकी तरफ दौड़ रहे है और आपसमे होड़ ले रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि प्राणीवर्ण-व्यवस्थाका सर्वथा ह्रास होकर समाजमे विशृङ्खलता फैल रही है। प्राचीन युगमे समाजका प्रत्येक प्राणी अपनी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए एक दूसरेपर निर्भर रहता था और इस तरह दूसरेकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए अपने हिस्सेका काम ईमानदारीके साथ पूरा करता था। वर्ण-व्यवस्थाका उद्देश्य समाजका कल्याण था, वैयक्तिक स्वार्थसाधन नही।

और भी, प्रत्येक जातिके भीतर सम्पत्तिका कोई मूल्य नही था। धनी और गरीब सभी बिरादरीके समान व्यक्ति माने जाते थे। वर्ण-व्यवस्थामे एकताकी भावना थी, सम्पत्ति या धन किसी तरहका भेदभाव उत्पन्न नही कर सकता था। वर्ण-व्यवस्था इस बातका द्योतक था कि प्रत्येक जातिके अन्दर कोई भी व्यक्ति केवल अपने लिए नही कायम रह सकता, बल्कि उसे अपने बन्धु-बान्धवोंका भी ध्यान रखना होगा। वर्त्तमान वैयक्तिक आर्थिक व्यवस्थके समान एक-दूसरेका गला काटनेवाली प्रति-स्पर्धा, लोभ, स्वार्थपरता उस युगमे नही थी और न धनके लिए कोई व्यक्ति अपने पड़ोसीके प्रति विद्रोह ही खड़ा कर सकता

था। वल्कि उस जमानेके आर्थिक सङ्गठनमें सहयोग, एकता, सहकारिता, परस्पर निर्भरता थी और एक दूसरेको सुखी वनानेके लिए आदान-प्रदानकी भावना वर्त्तमान थी। उस युगकी आर्थिक व्यवस्थाका उद्देश्य येनकेन प्रकारेण धन उपार्जन करना मात्र नहीं था, वल्कि अहिसा तथा शान्तिके आधारपर गरोहके प्रत्येक व्यक्तिके लिए सुखका साधन सम्पन्न करना था और इसे पूरा करनेके लिए प्रत्येक व्यक्तिको निजी स्वार्थको दवाना पड़ता था।

यह सङ्गठन इतना महान् समझा जाता था कि भगवद्गीताके अनुसार अपने कर्त्तव्यका पालन ही प्रत्येक व्यक्तिका सवसे वड़ा धार्मिक तथा सदाचारिक कर्त्तव्य समझा जाता था। इस तरह कोई भी पेशा हीन नहीं माना जाता था। छोटे-से-छोटा पेशा भी कर्त्तव्य-पालनकी दृष्टिसे महान् समझा जाता था। कर्त्तव्य-पालनकी दृष्टिसे समाजके लिए जूता वनानेवाले मोची तथा देव-मन्दिरमे पूजा करनेवाले ब्राह्मणोमे कोई अन्तर नही था क्योंकि दोनोका उद्देश्य समाजका हित-साधन था। क्योंकि कैसा भी साधारण काम क्यो न हो, उसे अपने व्यक्तिगत लाभके लिए नही किया जाता था, वल्कि उसे पूरा और सम्पन्न करनेका उद्देश्य समाजका कल्याण था। इसलिए उसकी भी पूजाकी भाँति ही समाजमें प्रतिष्ठा थी। इसलिए आजकलकी भाँति 'व्यवसाय व्यवसाय ही है' के नामपर उस युगमें आर्थिक व्यवस्था धार्मिक कृत्यसे अलग नहीं मानी जाती थी। व्यवस्थाको शोषण और लूटका जरिया नहीं वनाया जाता था और धर्मको आडम्वर और अन्ध-विश्वासका आवरण नहीं

दिया जाता था। बल्कि धर्म और व्यवसाय एक ही आधारके दो अमोल स्वरूप थे क्योंकि दोनोंका अन्तिम ध्येय एक ही था अर्थात् समाजका कल्याण। इस तरह धनोपार्जन भी धार्मिक कामही माना जाता था क्योंकि उसका उद्देश्य समाजका कल्याण रहता था।

आत्म-निर्भर ग्राम-इकाई :—वर्णव्यवस्थाके अनुसार कामका विभाजन कर देनेका सबसे बड़ा फल यह होता था कि प्रत्येक गॉव अपनी आवश्यकताकी पूर्ति आपसे आप कर लेता था; अपनी प्रारम्भिक आवश्यकताकी पूर्तिके लिए अपने आपपर निर्भर रहता था। आत्मनिर्भरताकी इस भावनासे सङ्गठन, मेलजोल, एकता आदिका उदय होता था और समूचा गॉव एक बृहत् परिवारकी भॉति प्रतीत होता था और प्रत्येक जातिके लोग एक दूसरेके सुख साधनके लिए तत्पर रहा करते थे। इस तरहकी आर्थिक व्यवस्थामे मनुष्यका परस्पर सम्बन्ध व्यक्तिगत होता था, न कि आजकलकी तरह व्यावसायिक अर्थात् स्वार्थमूलक, क्योकि उत्पादनका उद्देश्य धन बटोरना नहीं रहता था बल्कि प्रत्येक व्यक्तिके कल्याण तथा आवश्यकताकी पूर्तिको ध्यानमे रखकर ही उत्पादन किया जाता था। इस व्यवस्थासे कोई भी व्यक्ति अतुल धनराशि पैदा करनेकी आशा भी नहीं रखता था; क्योंकि उसकी उत्पादित वस्तुका बाजार उसके गॉवतक ही सीमित था। लेकिन इससे प्रत्येक व्यक्तिको समान लाभ और समृद्धिका अवसर प्राप्त था, क्योकि अपने हिस्सेका काम पूरा करके वह अपनी सारी आवश्यकताओंकी पूर्ति कर लेता था और आजकलकी भॉति

उसे दलालोंका शिकार बनकर लूटे खसोटे या ठगे जानेकी आशंका नहीं थी। इसलिए उस युगमे यदि बहुत बड़े सम्पत्तिशाली देखनेमे नहीं आते थे तो दरिद्र भी दिखायी नहीं देते थे। इसके प्रतिकूल इस युगमें वर्तमान युगकी अपेक्षा स्थायित्व और निश्चिन्तता अधिक थी क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिको आवश्यकताके साधन उपलब्ध थे, क्योकि प्रत्येक व्यक्ति गॉवके प्रत्येक प्राणीके कल्याणके लिए काम करता था।

लेनदेनका तरीका—इसके साथ ही लेनदेनका आधार द्रव्य न होकर वस्तु ही थी। प्रत्येक व्यक्तिको अन्नवस्त्र उसकी आवश्यकताके अनुसार दिया जाता था, न कि उसके कामके अनुसार; क्योकि उन प्राथमिक आवश्यकताओंकी पूर्ति कर्तव्य माना जाता था। इस तरह उसे सुखकी आवश्यकीय वस्तुएँ मिल जाया करती थीं। इस दृष्टिसे बड़े और छोटे, योग्य और अयोग्यमे एक प्रकारकी आर्थिक समानता थी। उदाहरणके लिए शिक्षक और वैद्यके पास कोई स्थूल सम्पत्ति नहीं थी, लेकिन उसकी हर तरहकी आवश्यकताकी पूर्ति उनके शिष्य तथा रोगी कर दिया करते थे। इसलिए उन्हे अन्न और वस्त्र तथा अन्य आवश्यकताओंकी पूर्तिकी चिन्ता नहीं रहती थी। समाजमे उनका आदर धनके लिए नहीं होता था बल्कि अपनी सेवाओंके कारण वे आदरणीय थे। इस तरह धनका स्थान समाजमे गौण था।

इस तरह प्राचीन युगकी आर्थिक व्यवस्थाका विवेचन हम जहाँ कहीं करें—चाहे वह परिवार हो, वर्ण हो या गॉव हो—सभी जगह एक ही बात देखनेमें आती है। हम देखते हैं कि व्यक्तिके सामने परिवार, जाति या समाजका कल्याण प्रमुख है

और निजी स्वार्थ समझनेके लिए वहाँ कोई स्थान नहीं है अर्थात् हर जगह वास्तविक अहिंसाकी भावना प्रत्यक्ष दिखायी देती है।

(ग) भावी कार्यक्रम—

इससे हमारा यह मतलब नहीं है कि भावी कार्यक्रम तैयार करनेमे हम आँख मूँदकर अतीतका अनुकरण करे। यह सम्भव भी नहीं है। उस पुरानी प्रणालीको—जिसमे उस तरहका सङ्गठन पूर्ण सफलताके साथ कायम था और अपने उद्देश्यको पूरा कर सका—पुनः स्थापित करना सम्भ नहीं है। हमलोगोको तो यह देखना है कि देशकी वर्तमान दशामे किस तरहका आर्थिक सङ्गठन हमारे लिए सबसे अधिक उपयुक्त होगा। इस उपक्रम-मे हमे अपनी प्राचीन धार्मिक प्राणालीपरभी ध्यान देना चाहिये और उन प्रतिपादी सिद्धान्तोको भूल नही जाना चाहिए जिनके आधारपर हमारी प्राचीन आर्थिक पद्धत्ति कायम थी। हमलोगों-को यह स्मरण रखना होगा कि जीवनका उद्देश्य केवलमात्र भोग-विलास नहीं है, मानव-जातिका कल्याण वस्तुओंकी बहुलतासे कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है। इस उपायसे हम केवल अपनी सांस्कृतिक परम्पराकी मर्यादाकी ही रक्षा नहीं कर सकेंगे बल्कि मानव समाजके कल्याणमे हम अपना भी उपयुक्त हिस्सा ले सकेंगे।

हमारे लिए यह भी उपयुक्त नहीं होगा कि हम आँख मूँदकर उन राष्ट्रोंकी नक्ल करे जो वर्तमान भौतिकवादके चमक दमकसे भड़कीले दिखायी दे रहे है। हमे उनसे अनेक तरहकी सीख मिल सकती है और हम उनके उन तरीकोको अपना भी सकते है जो हमारे लिए उपयुक्त प्रतीत हो। लेकिन उनका अन्धानुकरण कर हम अपनी वुद्धिका दिवालियापन ही नहीं प्रमाणित करेंगे बल्कि

हमारा उस अन्धकूपमें पतन भी हो सकता है जिसकी ओर वे लोग तेजी से बढ़ रहे हैं। हमलोगोको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि वे राष्ट्र अभी कलके बच्चे हैं जो कतिपय नये आविष्कारो, अनुकूल परिस्थितियो, तथा नवजीवनकी प्रेरणा शक्ति और पराक्रमसे भौतिक क्षेत्रमे आशातीत सफलता प्राप्त कर सके है। लेकिन हमारी सांस्कृतिक परम्परा जितनी प्राचीन है उतनी ही विशुद्ध और श्रेष्ठतम है, इसलिए हमलोगोंको केवल बाहरी तड़क-भड़कके आकर्षणमें अपनेको भूल नही जाना चाहिए वल्कि हमलोगोके कार्यकी कसौटी होनी चाहिए आध्यात्मिक मापदण्ड। वर्तमान युगके अनुकूल शब्दोंमें हम उसे इस प्रकार रख सकते है कि हमारे प्रत्येक अध्यवसायका मापदण्ड मानव-जातिका कल्याण होना चाहिए। हमारे देशकी यही आध्यात्मिक परम्परा रही है और इसकी प्राप्तिके लिए हमारे पूर्व पुरुषोने भौतिक वैभवकी ओरसे मुँहतक मोड़ लिया था। हमारे देशमे सबसे अधिक प्रतिष्ठा व्यवसायियों और धनियोंकी न तो थी और न है। हमारे यहाँ सबसे अधिक आदर और पूजा धार्मिक विद्वानो और बुद्धिमानोकी होती थी और आज भी है। इस देशके बड़े-बड़े राजे-महाराजे उन भिखारी तपस्वियोके स्वागतमे अपना राजसिंहासन त्यागकर उठ खड़े होते थे जिन तपस्वियोके पास एक कौड़ी भी नही रहती थी और जो दर दर भीख माँगकर अपनी पेट-पूजा करते थे। हमारे देशका प्राचीन सामाजिक और आर्थिक संगठन यही वतलाता है कि वे लोग रात-दिन समाजके कल्याणमे ही लगे रहते थे, सांसारिकतासे उन्हे कोई मतलव नहीं था, धनका

यदि समाजवादका भी यही आदर्श है तब तो समाजवाद और ग्रामोद्योग दोनो एक ही चीज है। ग्रामोद्योग हिंसा-रहित विकेन्द्रित समाजवादका समर्थक है क्योंकि यही एक उपाय है जिससे समाजवादके इस ध्येयकी पूर्ति हो सकती है कि प्रत्येक व्यक्ति समाजके लिए और समाज प्रत्येक व्यक्तिके लिए है। हम पीछे लिख आये है कि व्यक्तिका समाजके साथ तथा समाजका व्यक्तिके साथ इस तरहका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध तभी सम्भव है जब आर्थिक सङ्गठन छोटे-छोटे दलोमे विकेन्द्रित हो, न कि जब उसका दायरा इतना बड़ा हो कि समस्त राष्ट्र उसके गर्भमे केन्द्रित हो और उत्पादन केन्द्रित आधारपर स्थित हो। इसलिए ग्रामोद्योग समाजवादका वह रूप है जो उसके आदर्शोंको विकेन्द्रीकरण और अहिंसाद्वारा पूरा करना चाहता है।

पूँजीवादमे सबसे बड़ा दोष यह है कि वह व्यक्तिको पूरी स्वतन्त्रता प्रदान करता है कि वह जहाँतक चाहे अपना हाथ-पैर फैलाता जाय, चाहे दूसरोपर इसका जो भी असर पड़े। इसका परिणाम यह हो रहा है; संकीर्ण स्वार्थपरता, लोभ और सामाजिक असमानता या अन्यायका उदय हुआ है। इसके विपरीत समाजवाद प्रत्येक प्राणीका कल्याण चाहता है, लेकिन बड़े पैमानेपर उत्पादनकी व्यवस्थाको अपनाकर वह भी व्यक्तिकी स्वतन्त्रताको समाजके कल्याणके लिए होम कर देता है। ये दोनो प्रणालियाँ भूलसे भरी हैं, समाजसे भिन्न व्यक्तिका कल्याण नहीं है और व्यक्तिसे भिन्न समाजका कल्याण नही है। दोनोका एक दूसरेसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीलिए ग्रामोद्योग दोनोके

बीचका मार्ग लेकर चलना चाहता है। यदि हीगलका यह सिद्धान्त सही है कि वास्तविक सत्य न तो thesis मे है, न Antithesis मे बल्कि synthsis में है क्योंकि इसमें thesis तथा Antithesis दोनोके सत्य अंशतः वर्तमान है, तब हम भी जोर देकर यह कह सकते है कि हम जिस परिणामपर पहुँचे है वही सत्य है। समाजवादियोकी परिभाषामें हमलोग यहाँ पूँजीवाद thesis (अनियंत्रित वैयक्तिक स्वतन्त्रता, सामाजिक कल्याणके प्रति उदासीनता) के thesis तथा समाजवाद (पूर्ण राष्ट्रीय नियन्त्रण वैयक्तिक स्वतन्त्राके प्रति उदासीनता) के Antithesis से हटकर हम ग्रामोद्योग या वैयक्तिक स्वतन्त्रताके Synthesis पर पहुँचते है, जिसमे व्यक्ति समाजके कल्याणमें ही अपना कल्याण देखता है। लेकिन ग्रामोद्योगके विकासके लिए समाजवादियोकी तरह न तो हम यह दावा ही पेश करते हैं कि इसके विकासका आधार ऐतिहासिक घटनाएँ है और न हीगलके अनुयायियोके अनुसार हम यही कहना चाहते है कि मानव-जीवनके आर्थिक सङ्गठनके विकासमे यह भी एक अवस्था है जिसमे मानव-समाज अन्य अवस्थाओसे होकर आया है।

इसके साथ ही हम यह भी देखेंगे कि इसी प्रकारका हल हमारी राष्ट्रीय परम्पराके अनुकूल भी है। हमारा इतिहास इस बातका साक्षी है कि सदियोसे जिन भिन्न जातीयता तथा धार्मिक विश्वास रखनेवाले लोगोंके सम्पर्कमें हम आये, हम लोगोने न तो उनका विरोध किया और न उन्हे निकाल ही बाहर किया बल्कि हमने उन्हे अपनाकर अपनेमे मिला लिया। कदाचित् मिलापका वही दृष्टिकोण—जो भिन्न-भिन्न जातियो,

धार्मिक विश्वासो तथा संस्कृतियोके सम्मिश्रण तथा उनके दीर्घ विवेचनसे हमे प्राप्त हुआ है, हमलोगोको वह प्रेरणा प्रदान करता है जिसकी सहायतासे हम पश्चिमकी उस अपरिपक्व मूर्खतापूर्ण प्रयाससे अपनी रक्षा कर सके, जो विना विचारके एक सिरेसे दूसरे सिरेका चक्कर लगानेमे व्यस्त है अर्थात् पूँजीवादसे समाजवादकी तरफ दौड़ता है और पूँजीवादके अनियंत्रित वैयक्तिक स्वतन्त्रताका नाश कर उसके स्थानपर समाजवाद अर्थात् सम्पूर्ण राष्ट्रका अधिकार कायम करना चाहता है। ग्रामोद्योग बीचका रास्ता ग्रहण करना चाहता है अर्थात् पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनोमेसे केवल अच्छाईको अलग कर लेना चाहता है और उसीको अपनाना चाहता है। इस दृष्टिसे ग्रामोद्योग हमारी राष्ट्रीय परम्पराका पूरी तरह पालन करता है और उसके उपयुक्त है। यही निरपेक्ष वृत्ति, जो किसी भी प्रणालीका सर्वनाश न चाहकर, दोनोके गुणोका स्वागत करती है और उन्हे अपने ढॉचेमे ढालकर उपयोगी वनाना चाहती है, पूर्ण रूपसे अहिसात्मक हो सकती है। भारतकी सीमाके भीतर जिन भिन्न जातियो तथा उपजातियोने समय-समयपर प्रवेश पाया, उनसे उसे यही अनुभव प्राप्त हुआ कि अनवरत रक्तपात तथा युद्धको रोककर उन्हे एकमे मिलाकर रखनेका केवलमात्र उपाय यही है कि वे भी वसे और दूसरोको भी बसने दे अर्थात् यहॉ बसनेवाली सभी जातियॉ सहिष्णुतासे काम ले। अहिसाके सिद्धान्तका यह अन्तिम रूप है क्योकि विरोधी तत्वोके परस्पर सङ्घर्षको उत्तेजना न देकर वह उन्हे मिलाकर रखना चाहता है। इस विचारधाराके अनुसार

ग्रामोद्योगको आर्थिक क्षेत्रमें भारतकी अहिंसात्मक आत्माका मूर्तरूप कहा जा सकता है। आज सारा संसार हिंसा और संघर्षके विषम जंजालमें पड़ा हुआ है ; इस विषम परिस्थितिसे निकलकर वह निर्मल प्रकाशमें आनेके लिए अन्धेरेमें मार्ग टटोल रहा है। आज भारत अपने समृद्ध उत्तराधिकारीसे संसारको यह समाधान प्रदान कर सकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि ग्रामोद्योग हमारे सामने जो आदर्श उपस्थित करता है उसकी पूर्तिके लिए हमें कौनसा मार्ग ग्रहण करना चाहिए। इसके लिए पर्याप्त सामग्री हमारे प्राचीन आर्थिक सङ्गठनमें वर्तमान है। हम पीछे दिखला आये है कि प्राचीन युगमे प्रत्येक व्यक्तिको अपनी इच्छाके अनुसार अपने व्यवसायको उस हद्तक फैलानेकी पूरी स्वतन्त्रता थी जहाँतक समाज उन्हें स्वतन्त्रता दे सकता था। न तो हम व्यक्तिगत व्यवसायको ही बुरा समझते हैं और न सामाजिक नियन्त्रणको ही। व्यक्तिगत व्यवसाय तभी बुरा हो जाता है जब वह अपनी सीमाको पारकर दूसरोंको हानि पहुँचाने लगता है। इसी तरह समाजका नियन्त्रण भी बुरा नहीं है ; लेकिन जब सामाजिक नियन्त्रण अपनी सीमाको पारकर व्यक्तिकी स्वतन्त्रताका अपहरण करने लगता है, तब वह दोषपूर्ण हो जाता है। इसलिए हमारा अध्यवसाय ऐसा होना चाहिए जिसमें दोनोंकी गुञ्जायश हो अर्थात् व्यक्तिको काम करनेकी पूरी स्वतन्त्रता भी हो और उसपर समाजका नियन्त्रण भी रहे। यदि हम व्यक्तिकी स्वतन्त्रताको कायम रहने देते है, जिसका समाजवाद अपहरण कर लेता है—और साथ ही हम इस बातपर भी पूरा ध्यान रखते

हैं कि वर्गके स्वार्थका अपहरण नहीं होता, जैसा कि पूँजीवादमें देखनेमे आता है, तो इसके लिए एकमात्र यही उपाय है कि व्यक्तिको इस बातकी स्वतन्त्रता रहनी चाहिए कि वह अपना व्यवसाय अपनी इच्छाके अनुसार चलाता रहे पर साथ ही उसके ऊपर यह नियन्त्रण रहना चाहिए कि वह वर्गके स्वार्थका किसी भी तरह दुरुपयोग नही करता और उसके व्यवसायसे समाजका कल्याण होता है। इन दो बातोपर हमे सदा ध्यान रखना होगा और निम्न लिखित दो उपायोका अवलम्बन कर हम इसे पूरा कर सकते है। (क) उत्पादनमे विकेन्द्रीकरण (ख) स्वदेशीका व्रत।

(क) उत्पादनमें विकेन्द्रीकरण

इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक व्यवसायको व्यक्तियोके हाथमे छोड़ देना चाहिए जो उसे बड़े-बड़े कल-कारखानोके रूपमे न चलाकर अपने घरोमे चलावे और अपनी योग्यताके अनुसार उसका विकास करे, एक तरहका व्यवसाय चलानेवाले सभी आपसमे मिलकर सहयोगसे काम करें, लेकिन जिस इकाईके लिए वे माल तैयार करेगे उसकी सीमा बँधी हुई रहेगी। उनके मालकी खपतका क्षेत्र उनका गाँव मात्र होगा अथवा आसपासके दो-चार गाँव मिलकर एक सङ्गठन कर लेगे और आपसमे मिलकर अपनी आवश्यकता पूरी करेगे। लेकिन कुछ चीजे ऐसी भी है जिनके लिए गाँव या गाँवोके सङ्घकी आत्मनिर्भरता समान नहीं रहेगी। उन वस्तुओके लिए उत्पादन और उपभोगके क्षेत्रका दायरा लम्बा होगा—एक ताल्लुका, एक जिला या

एक प्रान्त। इसलिए आत्म-निर्भरताके सिद्धान्तको लागू करनेमें उतनी कड़ाईकी जरूरत नहीं होगी। केवल इतना स्मरण रखना होगा कि दैनिक आवश्यकताकी जो भी वस्तुएँ गाँवोमें तैयार हो सकेगी, उनका उत्पादन वही किया जायगा—खासकर भोजन और वस्त्रकी सामग्री। अन्य आवश्यकताओके लिए गाँवके लोग अपने पड़ोसी, गाँवोके उत्पादनपर निर्भर कर सकते हैं जिसे सभी गाँवके लोग मिलकर तैयार करेंगे। जहाँ यह सम्भव नही होगा वहाँ गाँववालोके लिए राष्ट्र इन वस्तुओंको तैयार करावेगा।

विकेन्द्रीकरण भारतीय अवस्थाके अनुकूल—हम पीछे कह आये हैं कि दूसरे राष्ट्रोके अन्धानुकरणसे हमारा काम नही चलेगा। हमारा आर्थिक सङ्गठन हमारी परम्पराके अनुकूल होना चाहिए। हमारे देशके जीवनकी विशेषताके सर्वथा अनुरूप होना चाहिए। प्रत्येक पेड़ एक ही मिट्टी और जलवायुमें नही पनप सकते। एक तरहकी मिट्टी तथा जलवायु उनके अनुकूल हो सकती है, लेकिन दूसरे तरहकी मिट्टी और जलवायु उनके अनुकूल नही हो सकती। यदि उस मिट्टी और जलवायुमें उन्हे लगानेका यत्न किया जाय तो कभी भी सफलता नहीं मिल सकती। इसलिए प्रत्येक कामके लिए हमे अपने देशवासियोकी योग्यता तथा अपने देशकी प्रचलित अवस्थापर सदा ध्यान देना होगा। एक तरहका औद्योगिक सङ्गठन एक देशमे सफल हो चुका है, महज इतने ही ख्यालसे हमे उसे अपने देशमे भी चला देना उपयुक्त नहीं होगा।

१—जब हम अपने प्राचीन इतिहासका अध्ययन करते हैं

और अपने देशकी परम्परा तथा रहन सहनका अध्ययन करते हैं तब हमे यही प्रतीत होता है कि विकेन्द्रीकरण ही हमारे देशके लिए सर्वथा उपयुक्त है। हमारे देशके प्राचीन आर्थिक सङ्गठनका यही आधार था। उस युगमे ग्राम ही उत्पादनका इकाई था। राजनीतिक जीवनमें भी प्रत्येक गॉव आत्मनिर्भर था। प्रत्येकका शासन ग्राम-पञ्चायत या ग्रामकी सभाद्वारा होता था। साथ ही हमारे देशका हिन्दू धर्म धार्मिक क्षेत्रमे भी केन्द्रीकरणपर विश्वास नही करता था। हिन्दू धर्ममे प्रत्येक व्यक्तिको अपने विश्वासके अनुसार धार्मिक आचरणकी पूर्ण स्वतन्त्रता थी, केवल वह समाजके विपरीत कोई आचरण नही कर सकता था। यही कारण है कि ईसाई या इस्लाम धर्मकी तरह हिन्दू धर्ममे कोई एक केन्द्रीय धार्मिक व्यवस्था कायम कर उसीके अधीन प्रत्येक व्यक्तिको रखनेका कभी प्रयास नही किया गया। उपासनाके लिए भी हिन्दू धर्म वैयक्तिकताको अधिक प्रश्रय देता है। ईसाई या इस्लाम धर्मकी तरह जमातमे इकट्ठा होकर पूजाकी विधि हिन्दू धर्मका आधार नही है। हिन्दू संगीतकी भी यही हालत है क्योंकि हिन्दू-सङ्गीत-कला राग-रागिणियोपर निर्भर है, पश्चिमी संगीत-कलाकी भॉति कई स्वरोको मिलाकर एक मिश्रित मधुर स्वर उसका आधार कभी नही रहा है। यदि इस विचारधाराका विस्तार किया जाय और अन्य क्षेत्रोका भी अध्ययन किया जाय तो वहॉ भी यही वैयक्तिकताकी प्रधानता पायी जायगी और हम इसी निष्कर्षपर पहुॅचेगे कि हमारे देशके सभी क्षेत्रोमे विकेन्द्रीकरणकी ही प्रधानता थी। इससे यह नही समझना चाहिए कि केन्द्रीकरणके लिए जिस सङ्गठनकी आवश्यकता है उसका हममे

अभाव था, बल्कि हमारे देशमें जो भी सङ्गठन थे, संयुक्त परिवार, जाति, आत्म-निर्भर ग्राम-संगठन—सभीका एकमात्र उद्देश्य स्वार्थी तथा दुष्ट लोगोके प्रयाससे ग्रामके प्रत्येक प्राणीकी रक्षा करना था। लेकिन बड़े पैमानेपर उत्पादन करनेके लिए हम जो सङ्गठन कायम करेंगे वह इस उद्देश्यकी पूर्ति नहीं कर सकेगा क्योंकि उस सङ्गठनका उद्देश्य असंख्य व्यक्तियोका एक जमातके अन्दर आकांक्षाके लिए नही बल्कि उत्पीड़नके लिए लाना है। सबलोंसे दुर्बलोकी रक्षा नहीं बल्कि सबलोको और भी अधिक बलशाली और योग्य बनाना उसका उद्देश्य है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि न तो हममें केन्द्रीकरणकी योग्यता उत्पन्न हो सकती है और न पश्चिमके लोगोमे विकेन्द्रीकरणकी योग्यता पैदा हो सकती है। मानव प्रकृति सर्वत्र ही समान है। हमारे देशकी प्राचीन परम्पराके अनुसार विकेन्द्रीकरण हमारी प्रकृतिके अधिक अनुकूल हो सकता है और हम अपनी सर्वांगीन उन्नति और विकास अपनी परम्पराके अनुकूल वातावरणमें ही भली प्रकार कर सकते है। हम अपने अतीतसे अलग नहीं हो सकते क्योंकि अन्य उपकरणोकी सहायतासे अतीतने ही हमारे वर्तमानका निर्माण किया है और इस वर्तमानकी ही सहायतासे हम अपने भविष्यका निर्माण कर सकते है।

२—हमारा देश कृषि-प्रधान है। हमारे देशके अधिकांश निवासियोंका प्रधान व्यवसाय कृषि होनेके कारण जन संख्याका अधिक भाग गॉवोमे रहता है। इसलिए हमे प्रत्येक उद्योगकी स्थापना गॉवोमे करनी होगी और उसे कृषिका सहायक पेशा बनाना होगा ताकि गॉवके लोग अपने वेकारीका समय उपयोगी

कामोमे लगा सकें। सालमे कुछ दिन ऐसे होते है जब खेतोमें कोई विशेष काम नही रहता। बड़े बड़े कल कारखानोमे इन खेतिहरोकी गुञ्जायश नहीं हो सकती है क्योकि अपनी खेतीका काम छोड़कर वे कहीं अन्यत्र नही जा सकते। प्रत्येक दिनका कुछ न कुछ भाग उन्हे खेतोमे लगाना पड़ता है इसलिए हमारे देशके उद्योग ऐसे होने चाहिए जिन्हे प्रत्येक गॉवका निवासी अपनी सुविधाके अनुसार हाथमे ले और छोड़ सके। बड़े बड़े कल-कारखानोमे जहॉ मशीने चलती हैं, वहॉ यह सम्भव नहीं है क्योकि उन कारखानोको नफाके साथ चलानेके लिए मशीनोको नियत समयतक लगातार चलाते रहना नितान्त आवश्यक है।

३—गॉवोंमें पूँजीकी बहुत बड़ी कमी है। इसलिए यदि गॉवोमे उद्योग कायम कर गॉववालोके भरोसे ही उसे चलाना है तो बड़े पैमानेपर उद्योग नही कायम किया जा सकता क्योकि उसके लिए जितनी पूँजीकी जरूरत पड़ेगी वह गॉवोमे प्राप्त नहीं हो सकती। गॉवोके लोग आवश्यक औजारो और अन्य उपकरणो-पर चन्द रुपयोसे ज्यादा नहीं खर्च कर सकते। कोई भी योजना जो इन बातोकी उपेक्षा करेगी, वह कदापि सफल नहीं हो सकती। अनेक सुन्दर और उपयोगी योजनाएँ इसीलिए अ-सफल हो गयी कि उनको चलानेके लिए उपयुक्त साधन और उपकरण गॉवोमें नही प्राप्त हो सके।

४—इस देशमे मजूरोका बाहुल्य है। बड़े पैमानेपर उत्पा-दनमे मजूरोकी सदा कटौती होती रहती है। इससे बेकारी बढ़ती है। इससे बचनेके लिए हमारे देशमे बड़े पैमानेपर व्यव-

सायकी स्थापना कदापि नही होनी चाहिए । नीचेकी तालिकामें कपड़ेके उत्पादनके चार तरीकोका परिणाम दिखाया गया है। इससे प्रकट होगा कि जहाँ पूँजीका अभाव है और मजूरोंका बाहुल्य है वहाँके लिए ग्रामोद्योग ही सबसे ज्यादा उपयुक्त है।

उत्पादनकी प्रणाली	पूँजी प्रति-मजूर लागत	प्रति मजूर उत्पादन	अनुपात	पूँजीकी प्रति इकाईपर लगे मजूर
१—आधुनिक मिल	रु० १,२००	रु० ६५०	१·९	१
२—पावर लूम	,, ३००	,, २००	१·५	३
३—आटोमेटिकलूम	,, ९०	,, ८०	१·१	१५
४—हाथके करघे	,, ३५	,, ४५	९·८	२५

यदि हम गावोमे सुख और समृद्धि लाना चाहते है तो यह आवश्यक है कि गॉवके प्रत्येक प्राणीको हमे लाभके काममे लगाना चाहिए। हमारे देशमे प्रायः ४० करोड़ व्यक्ति बसते है। यदि हम बड़े पैमानेपर केन्द्रित उद्योग कायम करना चाहे तो हम सबको किस तरह काम दे सकते है? १९३९ की तालिकाके अनुसार इस देशमे बड़े-बड़े कल-कारखानोमे काम करनेवालोकी कुल संख्या २० लाखसे कुछ ज्यादा थी। १९३१ और १९४१ के बीच जन-संख्यामे ५ करोड़की वृद्धि हुई है अर्थात् प्रतिवर्ष ५० लाखके हिसाबसे। देशके उद्योगीकरणमें हम कितनी भी शीघ्रता क्यो न करे हमारे लिए यह सम्भव नही हो सकेगा कि हम प्रतिवर्ष बढ़ती हुई इस ५० लाखकी जन-संख्याको काम दे सके यदि हम पुरानी जन-संख्याका

ध्यान छोड़ भी दे जो खेतीपर अपना निर्वाह करती आ रही है। इसलिए हमारे देशके समान घनी आबादीको सुखी बनानेका एक ही उपाय दिखायी देता है और वह है उद्योगोका विकेन्द्रीकरण। जिस देशकी आबादी इतनी ज्यादा हो और जहाँ मजूरोका इतना बाहुल्य हो, वहाँ बड़े पैमानेपर उद्योग कायम कर बडी-बड़ी मशीनोद्वारा उन्हे चलानेकी कोई भी सार्थकता नही दिखायी देती और न न्यायतः उसका समर्थन ही किया जा सकता है। उत्पादनके काममे इस जन-संख्याका प्रयोग किया जाय या न किया जाय, लेकिन इनका भरण-पोषण तो करना ही होगा। इस तरह बड़े पैमानेपर उद्योग स्थापित कर देशपर दोहरा बोझ डाला जायगा क्योकि जन-संख्याका भरण-पोषण तो करना ही होगा, साथ ही बडी बड़ी मशीनोके बनाने और उन्हे कायम रखनेके लिए भी व्यय करना पड़ेगा। ऐसे देशकी सबसे बड़ी आवश्यकता यह देखना है कि उसके एक भी निवासी बेकार नही रहते और मशीनोका प्रयोग तभी किया जाय जब उस कामको 'सम्पन्न करनेके लिए पर्याप्त मजूर न प्राप्त हो या मजूरोद्वारा वह काम होने लायक न हो। मशीनोका काम मजूरोकी सहायता करनामात्र होना चाहिए। अन्यथा हम इस दोषके भागी होगे कि हमने अपने देशमे प्राकृतिक साधनोको बर्बाद होने दिया और उनका उचित उपयोग नही किया।

५—हमारे देशमे जो माल तैयार होगा उसका बाजार भी सीमित है। एक ओर तो हमारी जनसंख्या अपार है पर साथ ही दूसरी ओर तैयार मालके लिए हमारे पास कोई भी बाहरी

बाजार नहीं है। क्योंकि सभी बाजारोंपर किसी न किसी बलशाली विदेशी राष्ट्रका अधिकार है। यदि कोई दूसरा राष्ट्र इसपर अधिकार जमानेका प्रयास करे तो वह उससे लोहा लेनेके लिए तैयार है। यदि हम अपने देशके ४० करोड़ निवासियोंको कलकारखानोंमे लगाकर माल पैदा करने लगते है तो हम इस तैयार मालको बेचेंगे कहाँ? व्यावहारिक विज्ञानकी वेगवती प्रगतिके कारण उत्पादनके कामके लिए बहुत कम संख्यामें मजूरोंकी जरूरत होगी। निकट भविष्यमे ऐसा समय आ सकता है जब एक छोटा देश भी समस्त संसारकी आवश्यकताको पूरी कर सकेगा। ऐसी हालतमे हमलोगोंको बाजार कहाँ मिलेगा। बड़े पैमानेपर उत्पादन करके ब्रिटेन समृद्धशाली हो गया क्योंकि वह उसके सर्वथा अनुकूल था। उसकी जनसंख्या कम थी और संसारका बाजार उसके हाथमें था। केवल उसे सस्ता और अच्छा माल तैयार करना था। उसने उसे सम्पन्न किया। सीमित जनसंख्या तथा संसारभरके बाजारपर अधिकार होनेके कारण बड़े पैमानेपर उत्पादनसे ब्रिटेन लाभ उठा सका। लेकिन हमारे देशकी हालत उससे सर्वथा विपरीत है। हमारे देशमें करोड़ो व्यक्ति बेकार है, जिन्हें काम नहीं मिलता, साथ ही हमारे हाथमें एक भी बाजार नहीं है, यहाँतक कि हमारा अपना बाजार भी विदेशियोंके कब्जेमें है जो अपने देशके मालसे बाजारको पाट देते हैं और इतना सस्ता माल बेचते हैं कि देशी उद्योग-धन्धोंको धक्का लग रहा है। इसलिए हमारे देशमे मजूरी बचानेकी समस्या नहीं है बल्कि करोड़ो भूखोंको काम देनेकी समस्या है। अपने देशके मजूरोंको हम तभी काम दे सकते हैं

जब हम बड़े पैमानेपर उत्पादनसे मुँह मोड़ लें और ग्राम-उद्योगो-पर निर्भर करे। इसके उत्तरमे यह कहा जा सकता है कि बड़े पैमानेपर हम उतना ही उत्पादन करेंगे जितना हमारे देशकी जनताके लिए आवश्यक है। तब प्रश्न यह उठता है कि उन करोड़ो व्यक्तियोका क्या होगा जिनकी जरूरत बड़े बड़े कार-खानोंमे नही पड़ेगी।

६—हमारे देशके लोग गरीब है। इस व्यापक गरीबीकी समस्याका समाधान बड़े पैमानेपर उत्पादनसे नहीं हो सकता। क्योकि इस प्रणालीमे सबसे बड़ा दोष यही है कि देशकी सारी सम्पत्ति चन्द लोगोके पास इकट्ठी हो जाती है। हमारे देशकी गरीबीका समाधान तभी हो सकता है जब हम उत्पादनको व्या-पक बनावे और अधिकसे अधिक लोगोके हाथमे इसे सौप दे ताकि वे लोग अपने अपने लिए उपार्जन करें। इससे सम्पत्तिका बॅटवारा आपसे आप समान रूपसे होगा। बड़े पैमानेपर उत्पादन करके यदि हम देशव्यापी छोटे छोटे कारखाने कायम कर दे तो देशमे कतिपय करोड़पतिपर करोड़ो बेकार और भूखे नही दिखायी देगे बल्कि इसके विपरीत शायद एक भी करोड़पति देखनेको न मिले और जो सम्पत्ति उन्हे करोड़पति बनानेके लिए उनकी जेबमे जाती है वह हजारो गॉवोमे बॅटकर गॉवोको समृद्ध बनानेमे सहायक होगी। सदाव्रत या भीखसे गरीबोकी सहायता करना उत्तम दान नही समझा जाता क्योकि इससे देनेवाले और लेनेवाले दोनोका अधःपतन होता है। उत्तम दान तो उन गरीबोको काम देना है जिससे उनका पेट भरे और जो उनके जीवनमे आशा, विश्वास तथा शान्ति और सुखका संचार करे।

ऊपर जो कारण दिखलाये गये है उनसे हम इसी परिणाम-पर पहुँचते है कि देशको पुनः समृद्ध बनानेके लिए आवश्यक है कि एक बार फिर ग्रामोद्योगोकी पुनःस्थापना हो जिसका संचालन और प्रबन्ध व्यक्ति अपनी योग्यताके अनुसार करे। इसीको हम उत्पादनमें विकेन्द्रीकरण कहते हैं।

विकेन्द्रित उत्पादनमें केन्द्रित उद्योगोंका स्थान

हम ऊपर लिख आये हैं कि सभी उद्योगोंका विकेन्द्रित करनेकी आवश्यकता नहीं है। यह सम्भव भी नही है। कुछ ऐसे उद्योग है जिन्हे केन्द्रित करना ही होगा। उदाहरणके लिए, (१) ऐसे उद्योग जिन्हें अन्य उद्योगोकी कुंजी कहा जा सकता है, जैसे मशीन तैयार करनेवाले तथा छोटे-छोटे उद्योगोके लिए ईंधन तथा कच्चा माल तैयार करनेवाले कल-कारखाने। यदि हमें सीनेवाली कलोंकी जरूरत है तो हमे ऐसे कारखानोकी जरूरत होगी जहाँ हम इन मशीनोको तैयार कर सके। इसी तरह छोटे-छोटे कारखानोके लिए बिजली या कोयला हर जगह नहीं तैयार किया जा सकता। रासायनिक द्रव्योको तैयार करनेके लिए भी बड़े-बड़े कारखानोकी जरूरत होगी। इसी तरह कागज बनानेका पल्प (लुगदा) भी बड़े-बड़े कारखानोमे तैयार कर कागज बनानेवाले केन्द्रोको दिया जायगा। (२) सार्वजनिक हितके काम जैसे, रेल, तार तथा टेलीफोन वगैरहकी चीजोका उत्पादन बड़े पैमानेपर ही होगा क्योकि इन चीजोके उत्पादनका काम व्यक्तियोके हाथमे नहीं रह सकता। राष्ट्रकी ओरसे इनके उत्पादनके लिए बड़े-बड़े कारखाने खोले जायँगे अथवा सहकारिताके आधारपर जनता ही यह काम करेगी। इन कामोमे

नफा कमानेका ध्येय नहीं रहेगा बल्कि सार्वजनिक हितकी दृष्टिसे इनका उत्पादन होगा।

अन्य उद्योग विकेन्द्रित कर दिये जायँगे और ग्रामोंमे फैला दिये जायँगे। कहनेका मतलब यह है कि ग्रामोद्योगके साथ बड़े-बड़े उद्योगोंकी स्पर्धा नहीं होगी। दोनोंके क्षेत्र अलग-अलग होंगे और जो काम ग्रामोद्योगोंसे नहीं सम्पन्न हो सकेंगे उन्हींके लिए बड़े-बडे कारखाने खोले जायँगे। ये ग्रामोद्योगके लिए सहायकका काम करेंगे। ऊपर कहा गया है कि बड़े कल-कारखाने केवल इन चीजोंके उत्पादनके लिए खोले जायँगे जिनसे ग्रामोद्योगको सहायता मिले, लेकिन ऐसा समय भी आ सकता है जब उन चीजोंके लिए भी बड़े बड़े कारखाने खोलने पड़ें जो ग्रामोंमे पैदा होती है। उदाहरणके लिए बहुत अधिक खादीकी जरूरत पड़ गयी और ग्रामोद्योग उतना देनेके लिए समर्थ नहीं है, अथवा अखबारोंके लिए कागज जो ग्रामोद्योगके द्वारा तैयार ही नहीं हो सकता। ऐसी अवस्था उत्पन्न होनेपर बड़े-बड़े कारखाने अस्थायी रूपसे खोले जा सकेंगे। इस तरहके कल कारखाने केवल मजबूरी हालतमे आवश्यकताकी पूर्तिमात्रके लिए खोले जायँगे, अन्यथा आदर्श यही रहेगा कि जहाँतक सम्भव हो सभी चीजें ग्रामोद्योगद्वारा ही तैयार करायी जायँ। लेकिन वर्तमान युगमे हमारे देशकी हालत एकदम उलटी है। लोगोंकी प्रवृत्ति बड़े-बड़े कल-कारखानोंको स्थापित करनेकी ओर है। ग्रामोद्योगको लाचारी हालतमे ही प्रश्रय दिया जाता है। इस सम्बन्धमे हमारे देशके अर्थशास्त्रियों और राजनीतिज्ञोंकी विचारधारामे भी साम्य नहीं है। ये लोग दोनों तरहकी

बातें करते है। देशको उद्योग-प्रधान भी बनाना चाहते हैं और ग्रामोद्योगको प्रोत्साहन भी देना चाहते है। लेकिन एक साथ ही दोनो सम्भव नही है क्योकि प्रतिस्पर्धाको मुक्त स्थान देनेपर दोनोका टिक सकना सम्भव नही है क्योंकि यदि दोनोमे एक ही तरहकी चीजे पैदा होने लगेगी तो ग्रामोद्योगोको जिन्दा रहना भी कठिन हो जायगा। यह तभीतक सम्भव है जबतक एक इतना माल नहीं तैयार कर सकता जो देशकी समस्त आवश्यकताकी पूर्ति कर सके। हमलोगोको यह सदाके लिए तै कर लेना होगा कि हम किस तरहका उद्योग देशमे कायम करना चाहते है। तभी हमलोग यह स्थिर कर सकते हैं कि किस तरहके उद्योगको प्रोत्साहन दिया जाय और किसे अनुत्साहित किया जाय। अभीसे ही शहरके कल-कारखाने देहातोमे आतंक मचाये हुए हैं क्योंकि इनके उदयसे उन ग्रामोद्योगोको धक्का लगा है जिनसे वे सुखी थे। लेकिन इसे इसी तरह अनन्त कालतक नही चलने दिया जा सकता। जिस घरके प्राणियोमे परस्पर मतभेद हो, वह ज्यादा दिनतक नहीं टिक सकता। देशके कल्याणके लिए यह आवश्यक है कि शहर और देहात दोनो मिलकर काम करें, न कि एक दूसरेके विरुद्ध। किन्तु यह तबतक सम्भव नहीं है जबतक यह निश्चय न हो जाय कि विकेन्द्रित उद्योगोंके साथ केन्द्रित उद्योगोका किस तरहका सम्बन्ध रहेगा। यह हो जानेपर ही दोनो मेल-जोलसे एक दूसरेकी सहायता करते हुए चल सकते हैं। दोनोके कर्तव्य-क्षेत्रको निश्चित कर देना होगा। यदि दोनोके कार्य-क्षेत्रको अलग अलग रखना है तो इसका एकमात्र यही उपाय है कि उन्हीं वस्तुओंके लिए केन्द्रित उद्योग स्थापित

किया जाय जो विकेन्द्रित क्षेत्रमे उत्पन्न नही किया जा सकता। उन व्यवसायोको छोड़कर बाकी सभी उद्योगोको विकेन्द्रित कर दिया जाय और वह भी केवल इसलिए नही कि हमारे देशकी अवस्थाके अनुसार विकेन्द्रित व्यवसाय ही अधिक अनुकूल होगा बल्कि इसलिए कि व्यक्तिका विकास और उसकी वृद्धि विकेन्द्रित व्यवसायमे ही सम्भव दिखायी देती है।

विकेन्द्रित उत्पादनमे विज्ञान और मशीनोंका स्थान

अभीतक विज्ञानका ध्यान एकमात्र केन्द्रित उद्योगकी समस्याकी ओर था लेकिन इस नये अर्थशास्त्रमे विज्ञानको ग्रामोद्योगकी तरफ ध्यान देना होगा, उसके औजारोको सुधारनेका साधन निकालना होगा, तथा काम करनेका नया तरीका बतलाना होगा। ग्रामोद्योगकी सहायतामे विज्ञानका यह काम नही होगा कि वह उन्हे ऐसा साधन दे जिससे सैकड़ो और हजारो अन्य व्यक्तियोको लूटकर वे सारा धन बटोरकर अपने अधीन कर ले बल्कि ऐसे साधन उत्पन्न करने होगे जिनसे उनका काम हलका हो जाय। वैज्ञानिक खोज और अनुसन्धानका उद्देश्य स्वार्थ और लाभ न होकर उत्पादकोकी आवश्यकता होगी। इस नये प्रयोगमे आजकी अपेक्षा विज्ञानकी खोजका दायरा बहुत अधिक व्यापक और विस्तृत होगा क्योकि बहुव्यापी और जटिल मशीनोको तैयार करना जितना आसान है उतना आसान अल्पव्यापी, और सीधी-सादी मशीनोको तैयार करना नही है और देहातोकी सीमित सम्पत्तिमे इसी तरहकी मशीनोका उपयोग हो सकता है।

बहुधा यह कहा जाता है कि ग्रामोद्योग देशको पुनः उसी प्रारम्भिक अवस्थामे ले जाना चाहता है और विज्ञानने जो कुछ

सम्भव कर दिया उससे देशको पीछे हटाना चाहता है। यदि ग्रामोद्योगका यही उद्देश्य है तो यह सचमुच बड़ी भारी भूल होगी और उसे इसका कुफल भोगना पड़ेगा। लेकिन ग्रामोद्योग विज्ञानसे मुँह क्यों मोड़ लेगा? प्राचीनसे सटे रहना कोई बुद्धिमानी और योग्यता नहीं है। पर इसके साथ ही कोई कारण नहीं है कि हम अपनी बुद्धि और ज्ञानका प्रयोग कर कामको हलका न बनावें और जीवनका उपभोग न करें। ईश्वरने मनुष्यको बुद्धि इसलिए दी है कि वह जीवनके संघर्षमे उसका प्रयोग करे। यदि हम उसका उपयोग नहीं करते तो वह क्षीण होकर मुर्दा हो जायगी। इसलिए किसी भी प्रकार विज्ञानकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। विज्ञान सदा हमारा प्रकाशमय पथप्रदर्शक बना रहेगा और पुरानी समस्याओंको हल करनेके लिए हमे नये नये साधन देता रहेगा और कर्तव्य-क्षेत्रमें हमे अधिकाधिक योग्य बनाता रहेगा, केवल उसका कार्य-क्षेत्र बदल जायगा। अब विज्ञानका प्रयोग व्यवसायको केन्द्रित करनेमे नहीं होगा क्योंकि जैसा हम पीछे दिखला आये हैं उससे मजूर गुलाम बन जाते हैं और उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है। ग्रामोद्योग विज्ञानका विरोधी नहीं है, बल्कि इसका विरोध उन तरीकोंसे है जिनमे आजकल विज्ञानका प्रयोग हो रहा है—चाहे वे तरीके पूँजीवादके अन्तर्गत हो या समाजवादके। विज्ञानकी अधिकाधिक आवश्यकता देशको होगी, केवल उसका झुकाव मजूरोंकी सहायता तथा विकेन्द्रित उत्पादनकी ओर होगा।

इससे हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि इस नयी आर्थिक-व्यवस्थामे भी विज्ञानकी अधिकाधिक आवश्यकता होगी और

ज्यादा-से-ज्यादा मशीनोकी जरूरत पड़ेगी। केवल फर्क इतना ही होगा कि उनका ढॉचा ऐसा नहीं होगा जिससे व्यवसायका केन्द्रीकरण हो सके। लोग वड़े तपाकके साथ यह कहते सुनायी देते है कि यदि वड़ी-वड़ी मशीनोद्वारा हमारी किसी तरहकी क्षति हुई है तो इसमें मशीनोका कोई दोप नहीं है, वल्कि दोष तो उन व्यक्तियोका है जिन्होने मशीनोका प्रयोग इस तरह किया है कि उनसे इस तरहका खतरनाक परिणाम निकला है। इस तरहकी वाते उन लोगोकी जवानपर अकसर रहती है जिनका झुकाव समाजवादकी ओर है। लेकिन इन लोगोका उत्तर तो स्वयं मार्क्सने दे दिया है। उसने लिखा है कि उत्पादनके तरीके या मशीनोका वहुत अधिक प्रभाव जनतापर पड़ता है। वड़ी वड़ी मशीनोका प्रयोग निजी लाभके लिए चाहे पूँजीपति करे, या जनताके कल्याणके लिए समाजवादी करें, इनका दूषित प्रभाव मजदूरोपर समान रूपसे पड़ेगा अर्थात् उनकी बुद्धिका दमन, सूक्ष्म और दिमागका ह्रास, कलात्मक ज्ञानका नाश, जैसा कि हम समाजवादकी आलोचनामे दिखला चुके है। इसलिए यह कहना उचित नही है कि दोष केवल मशीनोके प्रयोग करनेवालोमे है। सच बात तो यह है कि वड़ी मशीने स्वतः मानवताके लिए वहुत बड़ा अभिशाप है। बड़ी मशीनोकी स्थापनासे ही उद्योग केन्द्रित हो जाता है। इसका फल यह होता है कि उत्पादनके काममे व्यक्तिको अपनी बुद्धि लगानेका अवसर नही मिलता। वह उससे वञ्चित हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्तिकी बाढ़ रुक जाती है। इसीलिए ग्रामोद्योगकी पहली शर्त यही है कि मशीने ऐसी

नहीं होनी चाहिए जिससे व्यवसायके केन्द्रित होनेकी सम्भावना हो। जिन मशीनोसे ग्रामोद्योगमे हर तरहकी सहायता मिलनेकी सम्भावना होगी, मजूरोको काममे आसानी होगी, उस तरहकी सभी मशीनोका स्वागत किया जायगा।

तर्कके लिए यह कहा जा सकता है कि एक समय ऐसा भी आ सकता है जब इन छोटे कारखानदारोमे कोई ऐसा होशियार पैदा हो सकता है और अपना काम इतना बढ़ा सकता है कि उस तरहके काम करनेवालोको पछाड़कर उस रोजगारपर अपना एकाधिपत्य कायम कर सकता है। तब तो हमारे सामने एक बार पुन. वही बड़े पैमानेपर उत्पादनकी समस्या उठ खड़ी होगी। केन्द्रित व्यवसाय-प्रधान पश्चिममे वास्तवमें ऐसा ही हुआ है। इसे हमलोग किस तरह रोक सकेंगे? इसे रोकनेका एकमात्र साधन उसके निजी स्वार्थको समाज और देशके व्यापक स्वार्थके सामने सीमित कर देना होगा। स्वदेशीके सिद्धान्तका प्रचार कर हम इस काममे सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

(ख) उपभोगमें स्वदेशी

बिना किसी परिमाणके माल तैयार करनेको रोकने, दूसरोपर उसे लादने, आर्थिक समताको डावॉडोल करने तथा जनतामें बेकारी उत्पन्न करनेको रोकनेका एकमात्र उपाय यही है कि लोगोमे स्वदेशीकी भावना जागृत की जाय अर्थात् उन्हे यह बतलाया जाय कि किसी दूर स्थान या देशसे आये मालको खरीदनेकी अपेक्षा उनका यह परम कर्तव्य है कि वे अपने आसपासमें ही तैयार माल खरीदे। इससे यह तात्पर्य निकला कि

आर्थिक पुनः सङ्गठनमे एक गॉव या दो चार गॉवोंको मिलाकर उनकी इकाईको सभी प्रारम्भिक आवश्यकताओंके लिए आत्म-निर्भर बनाना होगा ताकि उस गॉव या उन गॉवोंमे बसनेवालोंकी सभी प्रधान आवश्यकताएँ वहींसे पूरी हो जायॅ। इस तरह प्रत्येक इकाई बाहरसे आये मालको काममे न लाकर अपने यहॉ तैयार मालको ही काममे लायेगी। ऐसी अवस्थामे यदि कोई व्यक्ति स्थानीय आवश्यकतासे अधिक माल तैयार कर उसे बाहर भेजनेका प्रयास करे तो उसे विदित होगा कि उसके इस मालको खरीदनेवाला कोई नहीं है। इस उपायसे वह बड़ा उत्पादक बननेसे आप-ही-आप रुक जायगा। यदि बाहर तैयार माल स्थानीय तैयार मालसे अधिक आकर्षक और भड़कदार है तो भी विदेशी मालको स्थानीय बाजारमे स्थान नहीं दिया जायगा बल्कि स्थानीय उत्पादकोंको प्रेरित किया जायगा कि वे भी उसी तरहका आकर्षक माल तैयार करे। इस तरह उपभोक्ता लोग अपनी आवश्यकताको स्थानीय मालपर ही सीमित रखेंगे और उसे प्रोत्साहन देगे।

इस तरहके स्वदेशीका अर्थ सङ्कीर्ण साम्प्रदायिकता नहीं है जो अपने सम्प्रदायके सही और गलत सभी कामोंका समर्थन करता है और अन्य दलोंके साथ प्रतिद्वन्द्विता करने लगता है। यदि इस तरहकी किसी सङ्कीर्ण भावनाका उदय हुआ तो वह राष्ट्रमे विशृंखलता पैदा कर देगी। इस खतरेको हर तरहसे दूर करना होगा। हमलोगोंको अनेक तरहके वर्तमान विरोधी तत्वोंसे लड़ना है। इसलिए एक और विरोधी तत्वको जन्म देना बुद्धिमानी नहीं होगी। इस युगमे जब कि रेडियो, हवाई जहाज, टेली-

फोन आदि साधनोंने लोगोंको एक दूसरेके अति निकट ला दिया है, और संसारसे दूरीका प्रश्न ही उठ गया है, तब हमलोगोंके लिए यह मूर्खताके सिवा और क्या होगा कि हम अपनेको तथा सारे संसारको टुकड़ोंमे बॉटना चाहे और उसे इस तरह जकड़ देना चाहे कि उसपर किसी तरहका बाहरी प्रभाव न पड़ सके। सच्चे स्वदेशीका यह अभिप्राय कदापि नहीं है। सच्चा स्वदेशी जिस नीतिका प्रवर्तक है उसका निर्देश इस कहावतमें निहित है कि, 'सदाव्रत घरसे ही शुरू होता है' अथवा 'घरमे चिराग जलाकर तब मस्जिदमे चिराग जलाया जाता है।' अपने निकट पड़ोसीके प्रति हमारा पहला कर्तव्य है। और तब उसके बाद इसका दायरा बढ़ता है और सारे संसारमें फैलता है। उदाहरणके लिए परिवारको ही ले लीजिये। किसी भी व्यक्तिके लिए परिवारका आकर्षण अन्यकी अपेक्षा सबसे अधिक होगा। अन्य लोगोंकी अपेक्षा उसीका यह प्राथमिक कर्तव्य है कि वह अपने परिवारके लोगोंका भरण-पोषण करे। अपने इस कर्तव्यका पालन कर वह समाज तथा मानव जातिके प्रति अपने कर्तव्यका पालन कर रहा है। परिवारका यह दायरा वहींतक सीमित नहीं है बल्कि दूसरोंसे यह सम्बन्धित है। पारिवारिक दायरा तथा मानव समाजके दायरेमे परस्पर विरोध नहीं है। पारिवारिक दायरेके भीतर ही अपनेको रखकर हम मानव समाजकी भी सेवा करते है। इसलिए स्वदेशीका तात्पर्य यही है कि हम अपने कर्तव्यका पालन उन लोगोंके प्रति सबसे पहले करते हैं जो हमारे निकटतम हैं। अन्य लोगोंकी अपेक्षा हमारी जिम्मेदारी उनके प्रति

बहुत ज्यादा है, इसलिए हमारा कर्तव्य भी उनके प्रति बहुत अधिक है। लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हम अपने-को उन्हींमें सीमित रखे और अन्य किसीके प्रति अपना कोई कर्तव्य न समझें। यही पर 'घरमे चिराग जलाकर तब मस्जिदमे चिराग जलाया जाता है' वाली कहावत हमारा पथ-प्रदर्शन करती है। घरमे चिराग जला देनेसे ही हमारे कर्तव्यकी इतिश्री नहीं हो जाती। उसके बाद हमे मस्जिदमे भी चिराग जलाना है और उसके लिए भी हमे यत्न करना चाहिए। पारिवारिक सम्बन्धके साथ-ही-साथ समाजके प्रति भी व्यक्तिका कर्तव्य है। इसलिए समाजको क्षति पहुँचाकर व्यक्तिको अपने परि-वारके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करना कदापि उचित नही कहा जा सकता। जिस तरह परिवारके प्रति उसका कर्तव्य पवित्र है उसी तरह यहाँ स्वदेशीका भी तात्पर्य है। जिस तरह हम पारिवारिक बन्धनकी निन्दा यह कहकर नहीं कर सकते कि इससे व्यक्ति गरोह या समाजके स्वार्थको गौण स्थान देगा, उसी तरह उपरोक्त अर्थमे हम स्वदेशीकी भी निन्दा नही कर सकते। लेकिन सीमाके बाहर जानेपर कोई भी गुण अवगुण हो जाता है, परन्तु केवल इसके कारण स्वतः गुणकी निन्दा नही की जा सकती।

स्वदेशी भारतीय अवस्थाके अनुकूल—हमारे देशकी अवस्था उपभोगमे स्वदेशीके इस सिद्धान्तके प्रचारके अनुकूल है। क्योकि आर्थिक-क्षेत्रमे स्वदेशीका प्रचार हिन्दू-धर्मके तत्त्वका प्रकटीकरण है। हिन्दू धर्म केवल उन्ही लोगोको अपने दायरेके

भीतर मानता हैं जो हिन्दू-परिवारमें उत्पन्न हैं। जो लोग अन्य धर्ममे उत्पन्न हैं उन्हे वह अपने धर्मके अनुसरणकी स्वतन्त्रता प्रदान करता है। आवश्यकतानुसार वे अपने धर्मका सुधार करे, न कि अन्य धर्मोंकी तरफ दौड़ते रहें। इसलिए हिन्दू-धर्मावलम्बियोके रास्तेमे इस आदर्शके पालनमें किसी तरहकी कठिनाई या वाधा नहीं उपस्थित हो सकती। क्योकि धार्मिक विश्वासके कारण यह उनकी स्वाभाविक प्रकृतिका एक अंग बन जाता है। इसके अलावा जैसा हम पीछे दिखला आये है, संयुक्त परिवार, जाति तथा ग्राम सङ्गठन आदि सामाजिक सङ्गठनोके कारण गरोह प्रेम और गरोह नियन्त्रणका यह आदी भी है जो स्वदेशीकी भावनाके आधार है। पश्चिमकी अपेक्षा हमारे देशमे पारिवारिक बन्धनकी मात्रा कहीं ज्यादा है। क्योकि व्यावसायिक विकासके फलस्वरूप पश्चिममे पारिवारिक बन्धन टूटता चला जा रहा है और निजत्वकी भावना व्यापक होती जा रही है। पारिवारिक जीवनका ममत्व स्वदेशीके सिद्धान्तका दूसरा रूप है इसलिए हमारे देशके लोग इसे वहुत आसानीसे समझ और अपना सकेंगे।

स्वदेशीका प्रचार कैसे किया जाय—उपभोक्ताका यह समझानेकी वहुत ज्यादा आवश्यकता नहीं पड़ेगी कि उसे अपने सबसे निकटतम पड़ोसीद्वारा उत्पादित मालका ही उपभोग करना चाहिए। स्वयं उत्पादक होनेके कारण वह इसकी उपयोगिताको सहजमे समझ जायगा। यदि वह यह चाहता है कि उसके तैयार किये हुए मालकी खपत उसके पड़ोसी करे तो साथ ही उसे यह भी समझना होगा कि जवतक वह अपने पड़ोसीके मालका उपभोग नहीं करेगा, उनके पास उसके मालके खरीदनेके लिए साधन

नहीं तैयार हो सकता। इसलिए यह बात बहुत आसानीसे उसकी समझमें आ जायगी कि यदि वह यह चाहता है कि उसका माल उसके पड़ोसी खरीदे तो बदलेमे वह भी अपने पड़ोसीका माल खरीदे। इस पारस्परिक लाभके लिए किसी बडे आदमीको खड़ा करनेकी आवश्यकता नही है। इसी आदर्शको व्यवहार-मे लानेके लिए केवल शिक्षाकी जरूरत है जिसके द्वारा लोग स्वदेशीके वास्तविक तात्पर्यको समझ सकें और यह देख ले कि स्वदेशीके व्यवहारसे उन्हे तथा उनके पड़ोसी दोनोको समान लाभ है और वे स्वदेशीका प्रयोग करने लगे। इसके प्रयोगके लिए निम्न लिखित उपाय भी काममे लाये जा सकते हैः—(क) पञ्चायतोद्वारा, इस तरहका कानून बनावे कि गाँवके लोग स्थानीय मालका ही प्रयोग करेंगे (ख) बाहरके मालपर कड़ी चुङ्गी बैठाकर (ग) अपनी सीमाके भीतर कल-कारखानोकी स्थापना रोककर (घ) जो लोग समाजकी बातोकी अवहेलना करके बाहर-के मालका उपयोग करते पाये जायँ उन्हे विद्रोही करार देकर उनका सामाजिक बहिष्कार करके।

३—ग्रामीण अर्थ-शास्त्रका प्रयोग

ग्रामीण अर्थ-शास्त्र या ग्रामोद्योगको भली-भाँति समझनेके लिए हमें निम्नलिखित बातोपर अधिक ध्यान देना होगा—(क) आर्थिक रूप। (ख) राजनीतिक रूप। (ग) सांस्कृतिक रूप। विशेष रूपसे हमे यह देखना है कि इन तीनो सिद्धान्तोके आधारपर वर्त्तमान अवस्थामे हम ग्रामोद्योगको किस तरह चालू कर सकते है।

(क) आर्थिक रूप—

१—ग्रामोद्योगका प्रयोग

उत्पादनको विकेन्द्रित कर देनेपर जब उत्पादनका काम व्यक्तिके हाथमे आ जायगा और जब वह केवल अपने पड़ोसी-की आवश्यकताको पूरा करनेके ही लिए उत्पादन करने लगेगा तो आर्थिक प्रणालीके समस्त आधारमे उलट-फेर हो जायगा।

(१) ग्राम-सगठन—अन्तिम आर्थिक इकाई एक गॉवका या कई गॉवोंका गरोह होगा। गॉवकी सारी भूमिपर सबका समान अधिकार होगा और खेतीके लिए केवल उन्ही लोगोको जमीन दी जायगी जो भली प्रकार उसे जोत-बो सकेगे। आज-कलकी भॉति जबतक भूमिपर वैयक्तिक अधिकार कायम रहेगा, तबतक खेतके मालिकोको यह समझाना पड़ेगा कि उन्हे अपने खेतोको सार्वजनिक ट्रस्टके रूपमे समझना चाहिए और उन्हें इसका प्रबन्ध गॉवके कल्याणकी दृष्टिसे करना चाहिए। उन्हे केवल उतनी जमीन लेनी चाहिए जितनी उनके लिए आवश्यक हो अथवा वर्त्तमान समयमे कम-से-कम खेतका बारह गुना। सम्भव है इसे लागू करनेके लिए आरम्भमे राजको हस्तक्षेप करना पड़े। लेकिन धीरे-धीरे जब जनताके मनमें इस तरहका परिवर्त्तन हो जायगा तब बड़े-से-बड़े जमींदारको भी जनताके सङ्गठित विचारोकी अवहेलनाका साहस नही होगा क्योकि उस तरहके सहकारी अर्थशास्त्रमे, आजकलकी भॉति व्यक्ति अपने समाजके लाभका ख्याल छोड़कर केवल अपने स्वार्थ-साधनके काममे नही लगा रहेगा। इसके प्रतिकूल, गॉवमें उसका जीवन

समाजके अधीन होगा, इसलिए उसकी भूमिको सार्वजनिक ट्रस्टके अन्दर लानेमें बहुत बड़ी कठिनाईका सामना नहीं करना पड़ेगा। इस तरह गाँवके सहयोग-सङ्गठनमें उसे यह बतला दिया जायगा कि उसे कितना खेत जोतना होगा, पैदावारका कितना भाग उसे अपने काममें लाना होगा, खेतमें काम करनेवाले मजूरोंको कितनी मजूरी देनी होगी, और कितना उसे गाँवके अन्य व्यक्तियोंकी आवश्यकताके लिए देना होगा तथा कितना राजको देना होगा। ऐसा हो जानेपर, जमीनका प्रयोग इस तरह होगा मानो वह गाँवकी सम्पत्ति है, भूमिपति उसका प्रबन्ध इस प्रकार करेगा मानो वह गाँवकी इच्छाका पालन कर रहा है, अर्थात् वह ट्रस्टीके रूपमें काम करेगा। वर्त्तमान वैयक्तिक अर्थशास्त्रमें ट्रस्टीशिपका जो भाव है वही उस वक्त नहीं रह जायगा। वर्त्तमानकालमें जिस तरह ट्रस्टीलोग अपनी इच्छाके अनुसार कोई काम न करके ट्रस्टके विधानके अनुसार ही ट्रस्टको चलाते हैं उसी प्रकार ग्रामोद्योगमें जमीनके मालिकोंका अपनी जमीनपर तबतक अधिकार कायम रहने दिया जायगा जबतक वे जमीनका उपयोग समाजके कल्याणके लिए करते हैं। पूँजीवादके अध्यायमें पूँजीवादी व्यवस्थाकी समीक्षा करते हुए हमने यह दिखलाया है कि पूँजीवादी व्यवस्था पूर्णरूपसे वैयक्तिक होते हुए भी धीरे-धीरे सामाजिक नियन्त्रणकी ओर अग्रसर हो रही है। हम यह प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि जबतक नियन्त्रण या मालकाना हक समाजके हाथमें है तबतक उसे छीननेका यत्न करना उपयोगी नहीं प्रतीत होता। चूँकि हम यह भी देख रहे हैं कि बिना रक्तपातके पूँजीवादमें भी वह अधिकार

समाजके हाथमें जा रहा है इसलिए सहयोग-सङ्गठित ग्रामोद्योग-में उसे समाजके हाथमे देनेमे किसी तरहकी कठिनाई नहीं उपस्थित होगी। ग्रामोद्योगका सारा ढाँचा सहकारिताके आधार-पर होगा, इसलिए भूपिपति स्वतः अपनी इच्छासे भूमिको समाजके नियन्त्रणमे दे देगा। इस तरह भूमिपर जो अबतक वैयक्तिक प्रभुत्व चला आ रहा है और जो समाजके लिए अ-हितकर सिद्ध हो रहा है उसे अहिंसात्मक ढंगसे हल कर लिया जायगा। बलपूर्वक भूमिपतिको जमीनसे निकालकर बाहर कर उसकी जमीनको जब्त कर लेनेकी अपेक्षा यह तरीका कहीं सुगम होगा क्योंकि उस तरह भूमि-पति समाजका दुश्मन हो जाता है। इसके साथ-ही साथ भूमिके प्रबन्धमें ट्रस्टीके रूपमे उसका हाथ रहनेके कारण, उसकी मर्यादा अक्षुण्ण बनी रहती है और वह सदा मित्रकी भाँति अपनी बुद्धिका प्रयोग गाँवके कल्याणके लिए करता रहेगा।

ऊपर जो लिखा गया है वह केवल संक्रान्ति कालके लिए अस्थायी व्यवस्था है क्योंकि अनन्तोगत्वा भूमिपरसे वैयक्तिक अधिकारका :लोप अनिवार्य है। भूमिके मालिकोको उचित मावजा देकर यह काम सम्पन्न किया जा सकता है। इसके लिए यह भी आवश्यक होगा कि उनके अधिकारोकी जाँच कर यह देख लिया जाय कि भूमिपर उनका मालिकाना हक जायज है, जालसाजी या धोखा देकर उन्होने यह अधिकार नहीं प्राप्त किया है। जब युद्धोके लिए प्रत्येक राष्ट्र करोड़ो रुपये पानीकी तरह बहानेके लिए तैयार है तब कोई कारण नहीं दिखायी देता कि किसानोंको कृषक गुलामीसे मुक्त करानेके लिए कुछ करोड़ रुपये

खर्चकर खेतोको जमींदारोंसे छुड़ा न लिया जाय। कड़ा उत्तराधिकारत्व या मृत-कर लगाकर भी धीरे-धीरे खेतोका राष्ट्रीयकरण हो सकता है।

गाँवमे एक ही पेशेके सभी लोग एक इकाई माने जायँगे। अपनी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए गाँवके लोग इस गरोहसे लेन देन करेगे, किसी व्यक्ति-विशेषसे नहीं। इसका फल यह होगा कि आजकलकी तरह एक ही पेशा करनेवाले आपसमें चढ़ाऊपरी नहीं करेगे. वल्कि उत्पादनमे एक दूसरेकी सहायता करेगे। वुद्धिमान और दक्ष उत्पादकोंका सहयोग पाकर अन्य उत्पादक भी चतुर कारीगर और दक्ष वन जायँगे तथा गला काटनेवाले चढ़ाऊपरीके कारण कमजोर उत्पादक क्षेत्रसे भागनेके लिए मजबूर नहीं होगा। प्रत्येक उत्पादकदलकी आमदनी उसके उत्पादनके आधारपर होगी इससे दलके सभी लोग अधिक-से-अधिक उत्पन्न करनेका प्रयत्न करेगे और अपनी पूरी योग्यताका प्रयोग करेगे। इससे उत्पादनको प्रोत्साहन मिलेगा। दलकी कुल आमदनी दलके सदस्योमें वरावर-वरावर बॉट दी जायगी, वशर्ते कि दलका प्रत्येक सदस्य ईमानदारीसे काम करेगा। यही एक व्यवस्था है जिसके अनुसार दुर्वल और अयोग्यकी रक्षा हो सकेगी और जो जन्मसे ही अयोग्य हैं उन्हे आजकी भाँति कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। यह तो मानना ही होगा कि जो जन्मजात अयोग्य है वे अपनी अयोग्यताको किसी भी प्रकार दूर नहीं कर सकते और इसके लिए वे स्वयं जिम्मेदार भी नहीं हैं।

आरम्भमे गॉवमे व्यवसायका वॅटवारा पुश्तैनी पेशेके अनुसार हो सकता है क्योंकि अपने पुश्तैनी पेशेके कामसे सभी

परिचित होंगे और उसे वे आसानीसे स्वाभाविक ढंगसे चला सकेंगे। इसके लिए सिर्फ एक काम करना आवश्यक होगा। पेशेमें ऊँच नीचका भेदभाव मिटा देना होगा। सर्वसाधारण उपासना, शिक्षा, जलाशय, भोज, आमोद-प्रमोद तथा ग्राम-शासन आदि द्वारा गाँवके प्रत्येक व्यक्तिमें समानताका भाव इस तरह भर देना होगा कि ऊँच नीचका भेदभाव उनके बीच न रह जाय। जबतक सभी पेशे समान रूपसे मर्यादित समझे जाते रहेंगे तबतक कोई भी व्यक्ति एक पेशा छोड़कर दूसरेमे नहीं जाना चाहेगा। उदाहरणके लिए मोचीका पेशा करनेवाला अतिशय बुद्धिमान व्यक्ति भी उसे छोड़कर अध्यापक बननेके लिए उत्सुक नहीं होगा क्योंकि वह समझता है कि उसके पेशेमें ही उसकी बुद्धिकी पर्याप्त आवश्यकता और कद्र है। वर्तमान युगमे ही व्यवसायमे इस तरहकी विशेषता आ गयी है और व्यवसायने ऐसा रूप धारण कर लिया है कि व्यक्तिके श्रम और बुद्धि दोनोका उपयोग साथ-साथ नहीं होता। इसका परिणाम यह है कि एक मजूरका सारा जीवन कड़े परिश्रममें ही बीत जाता है और उसे अपनी बुद्धिके प्रयोगका लेशमात्र भी अवसर नहीं मिलता। यह किसी भी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता कि कुछ व्यक्ति शारीरिक श्रम करे और कुछ व्यक्ति केवल मस्तिष्कसे ही काम ले। यह अवस्था दोनोमेसे एकके लिए भी वाञ्छनीय नहीं है क्योंकि एक तो हाथ-पैर हिलानेका पुतला बन जाता है और दूसरा किताबी कीड़ा। दोमेसे एकका भी पूर्ण विकास नहीं होने पाता। यदि ऐसा न होकर हर तरहका काम दोनो तरहके लोगोमे बराबर-बराबर बाँट दिया जाय तो उनमें जो बुद्धिमान है वह अपने

सहयोगसे उस काममे लगे अन्य लोगोकी बुद्धिका भी विकास कर देगा, जैसा पीछे लिखा जा चुका है। ग्रामोद्योगोके इस तरह गिरी दशामे पड़ जानेका एक प्रधान कारण यह भी है कि वर्तमान चढ़ा ऊपरीके कारण वे लोग देहातोका काम छोड़कर चले गये जो सफल और दक्ष थे तथा ग्रामोद्योगका काम उनलोगोके ही हाथमे रह गया जिन्हे बुद्धि नही थी, केवल शारीरिक श्रम कर सकते थे।

पुश्तैनी पेशेके अनुसार व्यवसायको चलानेकी व्यवस्थाका परिणाम यह भी होगा कि बहुत लोग चढ़ा-ऊपरी करनेके लिए उस पेशेमे प्रवेश नही पा सकेगे। इससे प्रतिस्पर्धाके कारण किसी भी व्यवसायमे विशृङ्खलता नहीं उत्पन्न होने पायेगी। इससे एक बातकी और भी सम्भावना प्रतीत होती है, लेकिन उस सम्बन्धमे अभी निश्चय रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता। वह यह है कि पुश्तैनी पेशेके हिसाबसे व्यवसायके बॅटवारेका यह भी फल हो सकता है कि भावी सन्तानकी स्वाभाविक प्रवृत्ति उस पेशेकी तरफ हो। इससे उनकी योग्यता दिन दिन बढ़ती जायगी। लेकिन पेशेके इस तरह बॅटवारेके नियमका पालन बहुत कड़ाईके साथ नहीं होना चाहिए। यदि उससे लाभके बदले हानि ज्यादा होती दिखायी दे तो उसका तुरत परित्याग कर देना चाहिए। ऐसे लोग जिनका झुकाव विज्ञान, साहित्य, कला तथा इस तरहके अन्य ज्ञान अथवा गॉवके किसी व्यवसाय विशेषकी ओर हो, तो उनके साथ विशिष्ट व्यवहार होना चाहिए और उन्हे अपनी योग्यता तथा रुचिके अनुसार उसीमे विशेषता प्राप्त करनेका अवसर दिया जाना चाहिए और उन्हें उन्हीं कामोमे लगाना चाहिए जिनकी ओर उनका झुकाव हो।

लेकिन साधारण तौरसे सम्प्रति लोगोको पुश्तैनी पेशेके अनुसार ही काममे लगाना चाहिए। किन्तु इसके माने यह नही है कि इसमें किसी तरहका विकल्प नहीं होना चाहिए और इसका प्रयोग स्थिर सिद्धान्त मानकर किया जाना चाहिए। भंगी आदिके छोटे पेशोको जहाँतक सम्भव हो, गाँवसे उठा देना चाहिए और शौचादिके लिए गड्ढे आदिसे काम लेना चाहिए जिसका प्रबन्ध प्रत्येक परिवारके लोग आप-ही-आप कर लिया करेंगे।

पूँजीवादकी भाँति इस आर्थिक व्यवस्थामे भी व्यक्ति तथा वह दल जिसके अन्तर्गत वह होंगे, दोनोको अपने ही साधनोपर निर्भर करना पड़ेगा और अपनी समस्याको यथासाध्य आप-ही-आप हल करना पड़ेगा, तो भी :उनके लोभका इस उपायसे नियन्त्रण होता रहेगा कि उत्पादनके औजार छोटे रहेंगे और उनका बाजार सीमित होगा। वे अपने पड़ोसमें ही अपना माल बेच सकेंगे। इसलिए उनके लिए बहुत अधिक माल तैयार करना असम्भव और व्यर्थ होगा, जिससे दूसरोको बेकार हो जानेकी आशङ्का हो। समाजवादकी तरह उत्पादनका उद्देश्य नफा कमाना नही रहेगा जिसके कारण पूँजीवादी प्रथामे अनेक तरहके दोष घुस आये हैं, बल्कि उत्पादनका उद्देश्य प्रयोग होगा अर्थात् उत्पादन लोगोकी प्रारम्भिक आवश्यकताकी पूर्तिको सामने रखकर किया जायगा। वर्तमान युगकी भाँति अनावश्यक चीजे—जैसे, बेमतलबके पोषक पदार्थ (टानिक) सुन्दर और आकर्षक विलासिताके सामान तथा हानिकर नशीली चीजे, दवाएँ और शस्त्रास्त्रके उत्पादनमे समय और शक्तिका दुरुपयोग नही किया जायगा। वर्तमान युगमें

उत्पादकोके सामने सबसे बड़ी समस्या मालकी खपतकी रहती है। ग्रामोद्योगमे यह समस्या अति सहजमे हल हो जायगी। ग्रामोद्योग-व्यवस्थामे प्रत्येक उत्पादकके लिए अपने पड़ोसका बाजार सुरक्षित रहेगा। वर्तमान युगकी भाँति दलालो और पोद्दारोकी आवश्यकता नही रह जायगी जो आजकल सीधे-सादे देहातियोको ठगकर बहुत अधिक नफा अपने लिए कमा लेते है और मालका दाम बहुत ज्यादा बढ़ा देते हैं। व्यावसायिक आदान-प्रदान आप-से-आप चलेगा और उसका प्रयोग प्रत्येकके लाभके लिए होगा। एक तरहका माल एक क्षेत्रमे पैदा होगा और दूसरे तरहका माल दूसरे क्षेत्रमे तैयार होगा। वह क्षेत्र इसका माल खरीदेगा और यह उसका। उसके उत्पादनपर असर डालनेवाले कारणोकी गाँववालोको जानकारी रहेगी। उसकी हालत वर्तमान युगकी भाँति नही रहेगी क्योकि वर्तमान युगमे उत्पादनपर अन्तर्राष्ट्रीय कारणोका प्रभाव पड़ता है। एक देहातीको न तो उसका कोई ज्ञान रहता है और न उन कारणोका वह नियन्त्रण या निराकरण कर सकता है। लेकिन उनका असर उसके जीवनपर पड़ता है और उसके फलस्वरूप वह धनी भी हो सकता है और निर्धन होकर बर्बाद भी हो सकता है। इस तरह गाँवका आर्थिक सन्तुलन बराबर कायम रहेगा। प्रत्येक गाँवकी दृष्टिमे उपभोक्ताओकी आवश्यकता रहेगी और उसीके अनुसार वह अपने उत्पादनकी व्यवस्था करेगा। उत्पादन हमेशा आवश्यकताके अनुसार होता रहेगा। वर्तमान युगकी भाँति माँगपर ध्यान न देकर बेशुमार उत्पादन नही किया जायगा। इसलिए आर्थिक सङ्कट और अस्थिरता उत्पन्न होनेकी

लेशमात्र भी आशङ्का नहीं रहेगी। किसी एक व्यक्तिके हाथमें सम्पत्तिका सञ्चय भी नहीं हो सकेगा क्योंकि अनेक व्यक्तियोंके उत्पादनमें लगे रहनेके कारण स्वभावतः नफेकी रकम उन लोगोंके बीच बँटती जायगी। इसके लिए यह परम आवश्यक है कि उत्पादन और उपभोगका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध बना रहे। उसी अवस्थामें राजके हस्तक्षेप बिना ही वे स्वतन्त्र रूपसे चलते रह सकते हैं। चाहे जो भी आर्थिक व्यवस्था हो उसे इसी तरह स्वाभाविक रीतिसे स्वच्छन्द गतिसे चलना चाहिए। वर्तमान पूँजीवादी युगमें जैसा हो रहा है, सङ्घर्ष रोकनेके लिए राजको हस्तक्षेप करनेकी आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए। क्योंकि सङ्घर्षसे काममें बाधा उपस्थित होती है, लोगोंको क्षति उठानी पड़ती है और बहुत अधिक हानि भी होती है। ग्रामो-द्योग आर्थिक व्यवस्थामें सम्पत्तिका बँटवारा समानरूप-से होगा, लोगोंमें बहुत ज्यादा अविषम असमानता नहीं होगी, इसलिए लोगोंको कामसे हाथ धोकर निराश्रय होनेका भय नहीं रहेगा, जैसा कि वर्त्तमान युगमें है। प्रत्येक मजूरको कामसे हाथ धोकर निराश्रय होनेका भय बना रहता है और इसलिए उनका जीवन असह्य हो जाता है। ग्रामोद्योग व्यवस्थामें गाँवके प्रत्येक प्राणीके लिए निर्धारित काम रहेगा, जिसे वह समाजके लिए सम्पन्न करेगा। बेकारीसे मुक्ति तथा आवश्यकताकी पूर्त्ति-की ओरसे निश्चिन्तता, ये दो सबसे बड़े वरदान हैं जो ग्रामो-द्योग गाँवके उत्पादकोंको प्रदान करेगा। इसके साथ-ही-साथ आलसी आदमीको कामसे छुटकारा भी नहीं मिल सकेगा क्योंकि जिस दलमें वह शामिल रहेगा, वह दल बराबर इस

बातकी देख-रेख करता रहेगा कि दलका काम करने लायक प्रत्येक व्यक्ति अपने हिस्सेका काम मन लगाकर पूरा करता है, क्योंकि यदि वह कामसे जी चुराता है तो इसका असर केवल उसीपर नही पड़ता है बल्कि अन्य लोगोपर भी उसका असर पड़ता है, क्योंकि एकके काम न करनेसे सबकी आमदनीमें टोटा पड़ेगा। गॉवके व्यवसायी दलका प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरेपर निर्भर करेगा, क्योंकि प्रत्येकके कामका असर अन्य दूसरोपर पड़ेगा। इसलिए उन लोगोने सहयोगकी भावनाका उदय होगा और एक दूसरेपर निर्भर रहना सीखेगे। गॉवके दलका दायरा छोटा होनेके कारण दलका प्रत्येक व्यक्ति यह देख और समझ सकेगा कि उसके श्रमसे उसे तथा दलके अन्य लोगोको कैसा लाभ हो रहा है क्योकि इससे उसकी तथा गॉवके अन्य लोगो-की समृद्धि सदा बढ़ती रहेगी। सबके लाभको इस तरह देखते रहनेके कारण उसे प्रोत्साहन मिलेगा कि वह अपनी समस्त योग्यताको काममे लगा दे। दैनिक-जीवनमे निकट सम्पर्क होनेके कारण तथा आर्थिक जीवनमे एक दूसरेपर निर्भर रहनेके कारण गॉवकी प्रत्येक इकाईके लोगोके बीच भ्रातृ-भाव और परस्पर प्रेम उदय होगा। इसलिए समान लाभकी भावना केवल सदाशयताके लिए प्रेरणा नही देगी बल्कि वह आर्थिक सङ्-ठनका दृढ़ आधार बन जायगी, लोभ और स्वार्थकी भावनाको दबाकर वह समाजकी सच्ची सेवाकी ओर व्यक्तिको प्रेरित करेगी। इस दृष्टिकोणसे ग्रामोद्योगको हम समवाय सङ्घटित अर्थ-शास्त्र कह सकते है जो पूँजीवादके वैयक्तिक और प्रतिस्पर्धा-युक्त अर्थ-शास्त्रसे एकदम भिन्न है।

ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्थाका जिस तरह प्रयोग होगा उससे हम यह भली-भाँति समझ सकते है कि जिस वर्त्तमान आर्थिक व्यवस्थासे हमलोग गुजर रहे हैं उससे यह कितना भिन्न होगा। यहाँतक तो हमने ग्रामोद्योग-आर्थिक-व्यवस्थाका साधारण चित्रण किया है। इसके बाद हम उसका सविस्तर वर्णन करना चाहते हैं—

कृषि और व्यवसाय—सहयोग आर्थिक व्यवस्थामे जहाँतक सम्भव होगा गाँवकी भोजन-सम्बन्धी तथा कच्चे मालकी सभी आवश्यकीय सामग्री गाँवमें ही पैदा की जायगी। उदाहरणके लिए हम यह मान लेते हैं कि किसी गाँवका मुख्य भोजन पदार्थ चावल है और कपड़ेके लिए कच्चा माल कपास है। उस गाँवकी मिट्टी इन वस्तुओंके उत्पादनके पूर्णतया योग्य हो या न हो, उसमें चावल, दाल, तरकारी, फल, तेलहन तथा कपास उपजानेकी ऐसी व्यवस्था की जायगी कि कमसे कम सालभरका सामान आवश्यकताके लिए अलग रख दिया जा सके। जहाँकी मिट्टी इन वस्तुओंके उत्पादनके लिए अनुकूल नहीं होगी उसे वैज्ञानिक उपायोंसे अनुकूल बनाया जायगा। वर्तमान युगमें जब विज्ञानकी सहायतासे ऐसी भूमि भी खेतीके योग्य बनायी जा रही है जहाँ कुछ पैदा नहीं हो सकता, तब विज्ञानकी सहायतासे प्रत्येक गाँवकी भूमिको इस योग्य बनाया जा सकता है कि उसमें आवश्यकताकी प्रत्येक वस्तु पैदा की जा सकती है। जहाँ यह सम्भव नहीं होगा वह एक गाँव दूसरे गाँवको वह वस्तु देगा जिसे वह पैदा करता है तथा दूसरे गाँवसे वह वस्तु लेगा जो वह पैदा नहीं कर सकता है—यह पीछे दिखलाया जा चुका है। लेकिन इस

बातपर सदा ध्यान रखना होगा कि इस तरहका आदान-प्रदान आवश्यक वस्तुओंका नहीं होगा क्योंकि यदि किसी अनिवार्य कारणसे यातायातमे कठिनाई उपस्थित हो गयी तो गॉववालोंको कठोर विपत्तिका सामना करना पड़ेगा—जैसा कि अभी हालने बर्मासे चावल न आ सकनेके कारण बङ्गाल और मलावारको घोर अकालके गालमें पड़ना पड़ा था।

इस अवस्थाके मुकावलेमें उस अवस्थाका अध्ययन कीजिये जो चढ़ा-ऊपरीकी आर्थिक व्यवस्थामे हो रहा है। गॉववालोंकी आवश्यकताकी ओर ध्यानतक नहीं दिया जाता। जमीनमे अच्छीसे अच्छी जो फसल उपजायी जा सकती है वह बहुत बडे पैमानेपर व्यवसायकी दृष्टिसे उपजायी जाती है, जैसे, पाट, सुरती, कपास, मूॅगफली, ऊख इत्यादि। ये बेच दिये जाते हैं या विदेश भेज दिये जाते है और इनकी बिक्रीसे जो रकम मिलती है उससे गॉवोंकी जरूरतकी चीजे बाहरसे खरीदकर भेजी जाती हैं। हमे देखना यह है कि इसका व्यावहारिक प्रयोग किस प्रकार होता है। व्यवसायकी वस्तुओंका मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय बाजारमे निर्धारित किया जाता है। उत्पादित वस्तुओंका मूल्य निर्धारित करनेके लिए उत्पादनका व्यय तथा किसानके परिवारके व्ययको आधार बनाना चाहिए। लेकिन चढ़ा-ऊपरीकी आर्थिक व्यवस्थामें इन बातोंपर विचारतक नहीं किया जाता, बल्कि उनका वही मूल्य स्थिर किया जाता है जिस मूल्यपर अमेरिका, कनाडा, अर्जेण्टाइन तथा आस्ट्रेलियामे उत्पन्न ये चीजे मिलती हैं। लेकिन इन देशोंको उत्पादनकी अनेक तरहकी सुविधाऍ प्राप्त हैं। आधुनिक ढंगके वैज्ञानिक औजारोंका प्रयोग वहॉ

होता है, इफरात परती जमीन उन्हे प्राप्त है, सिंचाईकी हर तरहकी उन्हे सुविधा है, लेकिन भारतके किसानोंकी क्या हालत है ? वही पुराने जमानेके औजारोसे इन्हें काम लेना पड़ता है। इनके पास पर्याप्त जमीन नही है। जो जमीन है भी वह छोटे-छोटे टुकड़ोंमे बॅटी है, सदियोसे जोतमे रहनेके कारण उसकी उर्वरा शक्ति क्षीण हो गयी है, सिचाईका कोई पर्याप्त साधन नहीं है, इन्हे अनियमित तथा अनिश्चित वर्षापर ही निर्भर रहना पड़ता है। इसके साथ ही फसलको नष्ट करनेवाले जङ्गली जानवरो तथा कीड़ो और फतिङ्गोंका इन्हें शिकार होना पड़ता है। जिस देशके किसानको इतने विरोधी तत्वोसे सङ्घर्ष करना पड़ता है वह अपना माल चढ़ा-ऊपरीके बाजारमे नफाके साथ कैसे बेच सकता है। उसकी इस दुरवस्थाको जानते हुए भी उसे अन्तर्राष्ट्रीय बाजारकी चढ़ा-ऊपरीमे झोंक देना, उसके प्रति अन्याय करना नही है क्या ? अर्थात् उसे मॅझधारमें छोड़ दिया जाता है कि यदि उसमे सामर्थ्य है तो वह तैरकर पार हो जाय नहीं तो बीचमे ही डूब मरे। ऐसी हालतमें यदि यहॉके किसनो-को जो इस देशका प्रधान पेशा है खेतीसे किसी तरहका लाभ नही हो रहा है और वे दिन-पर-दिन कर्जके बोझसे दवे जा रहे हैं, तो इसमें अचरजकी कौनसी बात है। कुछ लोगोका तर्क है कि यदि खेतीमे लाभ न होता तो किसान खेती करना छोड़ देता। इस तरहका तर्क भूलसे भरा है। वह खेतीमे इसलिए लगा है कि उसके लिए दूसरा कोई चारा नही है, यदि वह खेती करना छोड़ दे, तो भूखो मरने लगे। किसानोके ऊपर बढ़ता हुआ कर्जका बोझ इस बातका अकाट्य प्रमाण है कि खेतीकी आमदनीसे वह

अपना खर्च पूरा नहीं कर सकता। सरकारी ऑकड़ोंके अनुसार १८९५ ई०मे किसानोपर कर्जका बोझ ४५ करोड़ था। वह कर्ज बढ़कर १९३७ ई० मे १८०० करोड़ हो गया।

यह तो खेतीकी बात हुई। अब उद्योग-धन्धोपर आइये। यहाँ भी गॉववालोके प्रतिकूल ही सारी बातें है क्योकि उन्हे पश्चिमकी वड़ी-बड़ी मशीनोंके साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। हम पीछे लिख आये है कि प्रतिस्पर्धाके लिए वड़े पैमानेपर उत्पादनका वहुतसा व्यय—जैसे, सेना रखनेका व्यय, जहाजी बेड़ा तथा हवाई बेड़ेका व्यय, सहायता तथा संरक्षणात्मक चुंगी—सार्वजनिक कोषसे दिया जाता है या उपभोक्ताओसे वसूल किया जाता है, उद्योग-धन्धोपर उनका लेशमात्र भी भार नही रहता। लेकिन गॉवके उत्पादकोके लिए इस तरहकी कोई भी उदार सहायता नहीं है। वे मशीन-रूपी दैत्यसे युद्ध करनेके लिए निःसहाय अकेले छोड़ दिये जाते है, यद्यपि उनके हाथ बहुत कमजोर हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कारखानोमे तैयार किया हुआ सस्ता माल हर तरफसे गॉवोमे पहुँच जाता है और गॉवोके लोग बेरोजगारका हो जाते है। सरकार, आर्थिक कमीशन, योजनाएँ, कमेटियाँ, राजनीतिज्ञ, बड़े बड़े रोजगारी जिन लोगोको भी ग्रामोद्योगके अध्ययनका अवसर मिला है सभी इसकी उपयोगितकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते है और किसानोको बराबर यही सलाह दिया करते है कि सहायक पेशेके रूपमे इसे अपनावे, लेकिन इस तरह सलाह देनेवालोमेसे एकने भी क्या इस बातपर विचार किया है कि व्यवसायके इस चढ़ा-ऊपरीके युगमे किसान इसे काममे ला सकता है या नही जब कि

कारखानोंके माल बेशुमार गाँवोंमें पहुँच रहे हैं और मजदूरोंको बेकार करनेके लिए देहातोंमे भी मशीनोंके बैठानेका सतत प्रयत्न हो रहा है। कहा यह जाता है कि भारतका उद्योगीकरण आवश्यक है अर्थात् देशमे कारखानोंका जाल बिछ जाना चाहिए। साथ ही हमसे यह भी कहा जाता है कि यदि किसानोंको भूखो मरनेसे बचाना है तो ग्रामोद्योगकी स्थापना अनिवार्य है। लेकिन इस तरहकी बातें कहनेवालोंका ध्यान इस तरफ नही जाता कि बड़े-बड़े कारखानोंकी स्थापनासे ही गाँवोंके उद्योग-धन्धोंका नाश हुआ है और किसानोंकी यह दयनीय दशा हो गयी है जिसके निराकरणके लिए इतनी चिल्लाहट हो रही है। यह तो इसीके बराबर हुआ कि एक किसानकी समस्त गौओंको बाघ खा गया। उस किसानको सलाह दी जाने लगी कि वह नयी गौओंको खरीद-कर पाले लेकिन साथ ही पड़ोसमे नये-नये बाघोंके बसानेकी भी व्यवस्था की जाने लगी। गौ पालनेसे तो किसानको तभी लाभ हो सकता है जब बाघोंको मार भगाया जाय। यहाँ गौ है किसानोंके छोटे-छोटे कारखाने और बाघ हैं प्रतिस्पर्धायुक्त आर्थिक व्यवस्था। जहाँ दोनोंके पालन करनेकी व्यवस्था होगी वहाँ गौका संहार अनिवार्य है। ग्रामोद्योग सहयोग आर्थिक व्यवस्थाकी चीज है और वैयक्तिक स्वामित्वके आधारपर बड़े पैमानेपर उत्पादन चढ़ा-ऊपरीकी आर्थिक व्यवस्थाकी देन है। एक ही वस्तुके उत्पादनके लिए यदि दोनोंको साथ साथ चलाया जायगा तो इससे ग्रामोद्योगोंका नाश अनिवार्य है। जो लोग यह ख्याल करते है कि विदेशी कपड़ोंकी जगह देशी मिलोंमें बने कपड़ेको काममे लाकर वे देशके प्रति अपने कर्तव्यका पालन कर रहे हैं, उनमेंसे अधि-

काश ऐसे है जो ऊपरकी बातोको या तो समझनेमे असमर्थ हैं या उसपर ध्यान नहीं देते । उन्हे यह बात भली भाँति समझ लेनी चाहिए कि जबतक वे मिलोको प्रोत्साहन देते रहेगे और मिलोद्वारा तैयार माल इस्तेमाल करते रहेगे—चाहे वे मिले देशी हो या विदेशी—वे ग्रामोद्योगकी हत्या करते रहेगे और देशकी गरीब जनताकी जीविकापर कुठाराघात करते रहेगे ।

इसके उत्तरमे यह कहा जा सकता है कि बड़े पैमानेपर उत्पादनके लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसे व्यक्ति-विशेषके हाथमे छोड दिया जाय जो आपसमे चढ़ा-ऊपरी करते रहे । समाजवादके सङ्गठित आर्थिक व्यवस्थाद्वारा भी इसे चलाया जा सकता है । इसलिए यदि बड़े पैमानेपर उत्पादनके कामको समाजकी सम्पत्ति बना दिया जाय और राष्ट्रद्वारा उसका सञ्चालन हो, तब उसको ग्रामोद्योगके साथ क्यो नही जोड़ा जा सकता ? पर यह भी सम्भव नही है क्योकि समाजवादी व्यवस्थामे बड़े पैमानेपर उत्पादनका सारा प्रबन्ध राष्ट्रके हाथमे रहेगा और ग्रामोद्योगका सारा काम-काज गॉवके लोगोकी निजी देख रेखमे चलाया जायगा । यह वैयक्तिक होगा । दोनोके बीच प्रतिस्पर्धा-का भाव वहॉ मौजूद है । इससे गॉवका सहयोग आर्थिक व्यवस्था और आत्मनिर्भरता किसी भी तरह कायम नही रह सकती । इसके प्रतिकूल यदि बड़े पैमानेपर उत्पादन और ग्रामोद्योग दोनो राष्ट्रकी देख-रेखमे चलाये जायें और दोनोमे किसी तरहकी प्रतिस्पर्धा न रहे, तब तो हम घुमा फिराकर समाजवादी व्यवस्थामे ही पहुँच जाते है और समाजवादी व्यवस्थामे ग्रामोद्योगकी कोई आवश्यकता नही प्रतीत होती

क्योंकि सार्वजनिक आवश्यकताके आधारपर वस्तुओंका बड़े पैमानेपर उत्पादन होगा जो बहुत ही सस्ता पड़ेगा और आवश्यकतानुसार वह सबके पास पहुँच जाया करेगा। लेकिन यह अवस्था हमारे देशकी स्थितिके अनुकूल नहीं है। इसपर हम समाजवादवाले अध्यायमे काफी प्रकाश डाल चुके हैं।

बड़े पैमानेपर उत्पादन और ग्रामोद्योगको साथ-साथ चलानेके लिए एक और भी उपाय निकाला जा सकता है और यह कहा जा सकता है कि यदि हमारे देशकी अवस्थामे ग्रामोद्योग ही अनुकूल होगा तो हमलोगोंको जापानका अनुकरण क्यो नहीं करना चाहिए। बड़े पैमानेपर उत्पादनका काम करनेके लिए जिस तरह वहाँ एक ही वस्तुके भिन्न-भिन्न हिस्से गाँवोंमें तैयार कराये जाते है और सबको बटोरकर कारखानोंमें इकट्ठा किया जाता है जहाँ उनका अन्तिम निर्माण कर दिया जाता है। बाइसिकिल, मोटरगाड़ी, घड़ियाँ तथा अन्य मशीनें जिनका उत्पादन केन्द्रित तरीकेसे हो सकता है, वे इस तरह प्रस्तुत किये जा सकते हैं लेकिन जिन वस्तुओंका उत्पादन विकेन्द्रित तरीकेसे ही होना सम्भव है उनके लिए यह उपाय समीचीन नही हो सकता। क्योंकि इस तरहके ग्रामोद्योगद्वारा उत्पादनमें, बड़े-बड़े कारखानोमे वह कायम न होकर किसानोंकी झोपड़ियोमे होता जरूर है, लेकिन पूँजीवादी बड़े पैमानेपर उत्पादन-व्यवस्थाके सारे दोष वहाँ मौजूद है; जैसे, मजूरोंका दोहन, गला काटनेवाली प्रतिस्पर्धा, सम्पत्तिका संग्रह, बेशुमार उत्पादन,—जिसके फलस्वरूप बेकारी बढ़ती है, मालको बलके प्रयोगसे बेचना पड़ता है, इसके लिए साम्राज्यवादी लिप्सा बढ़ती है

और युद्ध अनिवार्य हो जाता है। जापानी व्यवस्था नामके लिए ग्रामोद्योग है पर वास्तविक अधिकार पूँजीपतियोका है, गॉवोमे काम करनेवाले तो उनके मजूर या दासमात्र होते है। इस तरह-की व्यवस्था समाजवादमे भी सहूलियतके साथ नही चलायी जा सकती क्योकि हम ऊपर बतला आये है कि व्यक्तिके मानसिक विकासके लिए निजी प्रबन्ध और अधिकार आवश्यक हैं।

इसलिए आवश्यकता इस बातकी है कि एक तरफ तो प्रबन्ध और नियन्त्रण व्यक्तिके हाथमे हो और दूसरी ओर प्रतिस्पर्धाका सर्वथा लोप हो अर्थात् उत्पादनका उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ या नफा न होकर समाजकी आवश्यकताकी पूर्ति हो। इन दोनो उद्देश्योकी पूर्ति ग्रामोद्योगकी आर्थिक-व्यवस्थामे ही सम्भव है क्योकि वहॉ उत्पादनका काम व्यक्तियोके हाथमे रहेगा और अपने पड़ोसीकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए ही वह माल तैयार करेगा। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है जो माल इस तरह तैयार नही किया जा सकेगा केवल वही माल तैयार करनेके लिए केन्द्रित कल-कारखाने खोले जायॅगे, चाहे उनकी स्थापना लोग मिल-जुलकर करे या राष्ट्रकी ओरसे वे खोले जायॅ। इन कारखानोका उद्देश्य भी नफा कमाना नहीं होगा बल्कि ये भी सेवा-भावसे ही खोले जायॅगे अर्थात् उनका भी एकमात्र उद्देश्य लोगोकी आवश्यकताकी पूर्ति होगा। इस तरह बड़े-बड़े कारखाने तथा गृह-उद्योग दोनो एक ही सङ्गठनके अधीन होगे और दोनोमे किसी तरहकी चढ़ा-ऊपरी नहीं होगी, बल्कि दोनो एक-दूसरेके सहायक होंगे।

जैसा कि हम ऊपर लिख आये है सहयोग आर्थिक-व्यवस्था-मे किसान अपने खेतोंमे हर तरहकी चीजे पैदा करेंगे और अपनी सारी आवश्यकताकी पूर्ति भी वहींसे करेंगे। अपने उद्योग-धन्धोके लिए वे लोग आवश्यक कच्चा माल भी तैयार करेंगे, यद्यपि कहीं-कहीं, जैसा कि लिखा जा चुका है—खेतकी मिट्टी सभी चीजोंके उत्पादनके लायक न भी होगी, उदाहरणके लिए कपास है। वर्त्तमान समयमे प्रतिस्पर्धायुक्त आर्थिक-व्यवस्थाके कारण अनेक गॉवोंमे कपासकी खेती होती ही नहीं, और वे ही चीजे पैदा की जाती है जो व्यावसायिक दृष्टिसे अधिक उत्पन्न हो सकती है। इसका परिणाम यह होता है कि यदि किसी किसान-को अपने लिए कपड़ा तैयार करना होता है तो उसे कपास बाहरसे खरीदकर मॅगाना पड़ता है। एक स्थानसे दूसरे स्थानको कपास ले जानेमे इतना ज्यादा खर्च पड़ जाता है कि बाहरसे कपास मॅगाकर कपड़ा तैयार करनेमे उसे कोई लाभ नहीं होता, महॅगा पड़ता है। इसलिए वे बाजारसे मिलोके बने कपड़े ही खरीदना श्रेयस्कर समझते है और बेकारीमे दिन काटते है। इसका उनके जीवनपर दोहरा प्रभाव पड़ता है। एक तो उनमे बेकारी बढ़ती है और दूसरे जो दो-चार रुपये नकद बचाकर वे रख सकते थे उसे उन्हे गँवा देना पड़ता है। लेकिन इसके प्रतिकूल यदि ग्रामोद्योगकी आर्थिक व्यवस्थाके अनुसार वे अपनी आव-श्यकताके लिए कपास उत्पन्न करें तो अपने फालतू समयमे वे सूत कातकर तैयार कर सकते है और उससे अपने लिए आवश्यक कपड़ा बिन सकते है। इस तरह वे अपना पैसा बचा सकते है क्योंकि बुनाईकी मजूरी भी वे सूतके रूपमे दे सकते हैं। इस

तरह खादीके महँगा होनेकी शिकायत नही उठ सकती क्योंकि उसके लिए लोगोंको नकद दाम नही देना पड़ेगा बल्कि अपने फालतू समयका उपयोग कर ही लोग अपने लिए आवश्यक खादी तैयार कर लेगे। इस उपायसे उन प्राचीन उद्योग-धन्धोका पुनरुत्थान हो जायगा जो प्रतिस्पर्धायुक्त आर्थिक व्यवस्थामे नष्ट हो गये थे और देशमे एक बार पुनः जीवन और ज्योति फैल जायगी।

३—प्रतिस्पर्धायुक्त आर्थिक व्यवस्थामें ग्रामोद्योगके नाशका परिणाम

(क) खेतोंपर अनुचित बोझ—प्रतिस्पर्धायुक्त आर्थिक व्यवस्थाके कारण जबतक उद्योग-धन्धोके लिए कच्चा माल देहातोमे उत्पन्न नही किया जाता और जबतक कलकारखानोके सस्ते मालसे देहातका बाजार पाट दिया जाता रहेगा तबतक गाँवके कारीगरोके उद्धारकी कोई आशा नही की जा सकती। हर तरहसे मजबूर होकर उन्हे अपने खेतोपर ही निर्भर करना पड़ता है। कृषिके अतिरिक्त अन्य धन्धोमें लगे मजूरोमेसे ६० फीसदीने १९३१ ई० मे अपने धन्धोको त्यागकर कृषि या उससे सम्बन्ध रखनेवाले धन्धोको अपना लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि खेतीपर निर्भर करनेवालोकी तादाद कही अधिक बढ़ गयी। इससे पहले जितने लोग खेतीपर निर्भर करते थे उतनेहीके पालनपोषणके लिए खेतोमे अनाज पैदा नही होता था। खेतीपर निर्भर करनेवालोकी तादाद १८९१ ई० मे जनसंख्याका ६१·१ सैकड़े थी। १९११ ई० मे वह ७१ सैकड़े हो गयी और १९३१ मे ७३ सैकड़े।

इससे इतना तो स्पष्ट है कि इस समय खेतीका काम करनेवालोंकी संख्या आवश्यकतासे कहीं ज्यादा है। उतना काम केवल दो-तिहाई आदमी कर सकते है। इससे यह नतीजा निकला कि या तो उसी कामको ज्यादा आदमी करते हैं या किसीको भी पूरा काम नहीं मिल रहा है क्योंकि जब खेतोंमे काम नही रहता तो वे बेकार बैठे रहते हैं और प्रतिस्पर्धाके कारण सहायक पेशोंकी कोई गुंजायश नहीं है।

कुछ लोगोका कहना है कि जन-संख्यामे इतनी तेजीसे वृद्धि हुई है कि उसके फलस्वरूप देशमे व्यापक दरिद्रता और खेतोपर बहुत अधिक बोझ पड़ा है। लेकिन दूसरे देशोंकी अपेक्षा हमारे देशकी जनसंख्यामें बहुत ज्यादा वृद्धि नहीं हुई है। १९३१ तथा १९४१ के बीचमे हमारे देशकी जनसंख्यामे १५ फीसदी वृद्धि हुई है लेकिन इसी अवधिमे संसारकी जनसंख्यामें १७ फीसदीकी वृद्धि हुई है। १८७० तथा १९३० के बीच यूरोपकी जनसंख्यामे १९८० लाखकी वृद्धि हुई जो वहाँकी आबादीके हिसाबसे ६४ फीसदी होती है। लेकिन इसी अवधिमे भारतकी आबादीमे केवल ८८० लाख अर्थात् ३१ फीसदीकी वृद्धि हुई। १९४० मे हमारे यहाँकी आबादी प्रति वर्गमील २४८ थी जबकि ब्रिटेनकी ७०३, बेल्जियमकी ७०२, तथा हालैण्डकी ६३९ थी। इससे यह परिणाम निकलता है कि जनसंख्याकी वृद्धिसे कोई भी घातक परिणाम नही उपस्थित हो सकता। हमारे देशमे इसका परिणाम इसलिए घातक प्रतीत होता है कि हमारे पास साधन नहीं है कि हम बढ़ती आबादीको उद्योग-धन्धोमें लगा सके। इसके विपरीत पिछले सौ वर्षोंमें

हमारे देशके निवासियोंके व्यावसायिक जीवनको बहुत ज्यादा धक्का लगा है और दिन-पर-दिन उनकी व्यावसायिक हालत गिरती ही जा रही है। पिछले विश्व-युद्धसे भारतीय व्यवसायको बहुत ज्यादा प्रोत्साहन मिला तो भी १६११से १६३१के बीच बड़े तथा छोटे कारखानोंमे काम करनेवाले भारतीय मजूरोंकी संख्या बहुत अधिक घट गयी है। १९११ मे हमारे देशकी जन-संख्या ३१ करोड़ ५० लाख थी। १६३१ मे यह बढ़कर ३५ करोड़ ३०लाख हो गयी। लेकिन कल-कारखानोंमे काम करने-वाले मजूरोंकी संख्या १६११ मे १ करोड़ ७५ लाखसे घटकर १९३१ में १ करोड़ ५३ लाख हो गयी अर्थात् २० सालके भीतर करीब २० लाख मजूर बेकार हो गये। इधर जनसंख्यामे ३ करोड ८० लाखकी और वृद्धि हुई। देशके व्यावसायिक धन्धोंमे इन्हे भी कोई काम नहीं मिल सका। इससे स्पष्ट है कि इस अदृष्ट पूर्व दरिद्रताका प्रधान कारण यही है कि प्रतिस्पर्धायुक्त आर्थिक व्यवस्थाके कारण हमारे देशवासियोंके व्यावसायिक जीवनको बहुत अधिक क्षति पहुँची है। दूसरा कोई पेशा न होनेके कारण लोग अधिकाधिक खेतीपर निर्भर करने लगे है जो इस अधिक बोझको बर्दाश्त करनेमें सर्वथा असमर्थ है।

(ख) कृषिकी असमर्थता :—अन्य पेशोंके अभावमे जब वे लोग भी खेतीकी ओर दौड़ पड़ते हैं जिनका पेशा खेती नहीं है, और जब किसानोंकी दरिद्रताके कारण बै या रेहनके कारण खेत उन महाजनों या धनिकोंके हाथमे चले जाते है, जिन्हे न तो खेतीका ज्ञान है और जो न तो खेतीकी परवा करते है तो उसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि कृषिकी योग्यताका

धीरे धीरे ह्रास होने लगता है। प्राचीन युगमें जाति-प्रथाके कारण खेतिहर मजूरोंमे विशेष योग्यता खेतीके कामकी पायी जाती थी। लेकिन वर्तमान युगमे खेतीके पेशेमे काम करनेवालोंमें अधिकांश ऐसे पाये जाते हैं जिनका वह पुश्तैनी पेशा नहीं है, इसलिए उन्हें उसकी कोई जानकारी या ज्ञान नही है। इससे खेतीके पेशेकी हालत बहुत गिर गयी है और इसका प्रत्यक्ष फल देशके आर्थिक जीवनपर पड़ रहा है।

(ग) खेतोंका टुकड़ोमें बॅटवारा :—एक तो हमारे देशके उत्तराधिकारत्वका कानून ही खराब है, क्योंकि इस कानूनके अनुसार प्रत्येक उत्तराधिकारीको खेतका बराबर हिस्सा मिलना ही चाहिए, दूसरे यहाँके निवासियोंके लिए जीविकाका दूसरा कोई भी साधन नहीं है। उन्हें हर तरहसे खेतीपर ही निर्भर करना पड़ता है। इसका फल यह हो रहा है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी खेतोंका लगातार विभाजन होता जा रहा है। यदि प्रत्येक उत्तराधिकारीके बीच तमाम खेत (प्रत्येक खेतके टुकड़े न करके) बराबर बाँट दिये जाते तो भी एक बात होती। लेकिन एक ही गाँवमें अनेक तरहके खेत होनेके कारण प्रत्येक उत्तराधिकारीके बीच प्रत्येक खेतका बराबर बॅटवारा हो जाता है। एक-दो पुश्त बीतते-बीतते खेत इतने छोटे-छोटे टुकड़ोमें बँट जाता है कि उसे जोतना और बोना आर्थिक दृष्टिसे कभी भी लाभदायक नही होता। खेतोंके छोटे-छोटे टुकड़े इधर-उधर फैले रहनेके कारण समय और श्रम दोनोंकी बर्बादी होती है क्योंकि उन टुकड़ोंको जोतनेके लिए खेतिहरको अपना हल और बैल लेकर एक खेतसे दूसरे खेतपर दौड़ना पड़ता है। इससे खेतीके पेशेसे किसी तरहका लाभ न होनेके कारण खेतिहरकी दरिद्रता दिन-

दिन बढ़ती जा रही है, कर्जका बोझ उसपर लदता जा रहा है और अपने खेतोंको वह दिनों दिन टुकड़ा-टुकडा करके बेचता या रेहन रखता जा रहा है। इससे खेतोंका आयात दिनोंदिन कम होता जा रहा है। वर्तमान समयमें औसत किसानके पास ३-४ बीघेसे ज्यादा खेत नहीं है और वे भी कई छोटे-छोटे टुकडोंमे बँटे हुए गाँवभरमें फैले है।

(४) ऋण, भुखमरी और अकाल—ऊपर हम दिखला आये हैं कि पिछले तीस वर्षोंके बीचमें किसानोंके ऊपर कर्जका बोझ बहुत ज्यादा बढ़ गया है। किसान अपने खेतोंके साथ इस तरह चिपका रहता है जिस तरह शरीर प्राणके साथ। लेकिन जब वह हर तरहसे लाचार हो जाता है तब अपने खेतको बेच देता है और साधारण मजूरकी भाँति खेतोंमे मजूरी करता है। प्राचीन ग्रामोद्योग आर्थिक-व्यवस्थामें किसान और महाजन-का परम्परागत सम्बन्ध रहता था। दोनों एक ही ग्राम-संगठनके सदस्य होते थे। उसका सञ्चालन निर्दिष्ट नियमके अनुसार होता था। इसलिए दोमेसे एक भी नियत सीमासे बाहर अपने हकका दावा नहीं पेश कर सकता था। लेकिन जिस दिनसे हमारे समाजमे इस प्रतिस्पर्धायुक्त आर्थिक व्यवस्थाने स्थान पाया है, और जबसे जीवनका उद्देश्य व्यक्तिगत स्वार्थ साधन हो गया है और कर्जदार तथा महाजनमें लेन-देनके व्यवहारने कानूनी रूप धारण कर लिया है, तबसे दोनोंके बीचका नैतिक और सामाजिक बन्धन शिथिल पड़ गया है। अब तो महाजन अदालतकी शरण लेकर किसानसे अपना पाई-पाई अदा करवा लेता है और उसे खेतसे बे-दखल कर देता है।

ज्यो-ज्यो कर्जका बोझ बढ़ता जा रहा है त्यो-त्यों किसानके हाथ-से खेत निकलकर महाजनोंके हाथमे चले जा रहे है। उदाहरण-के लिए पञ्जाबमे १८६६ और १८७४ के बीच किसानोने प्रतिवर्ष जहाँ ८०,००० एकड़ भूमिके हिसाबसे बेचा, वहाँ उसके बादके पाँच वर्षोंमें प्रतिवर्ष ९३,०००, १६०,०००, ३१०,००० तथा ३३८,००० एकड़ भूमि बेची। बम्बई प्रान्तमें १९२७ तथा १९३७ के बीच किसानोंको ५० लाख एकड़ भूमिसे इस प्रकार हाथ धोना पड़ा।* इस तरह किसानोंके हाथसे खेतोके निकल जानेका फल यह हुआ है कि वे बे-खेत हो गये है और खेतोंपर मजूरी करने लगे हैं। १९२१से १९३१के भीतर दस सालमें बे-खेतके मजूरोंकी संख्या १००० खेतिहरपर २९१ से बढ़कर ४०७ हो गयी। अर्थात् जहाँ १९२१ में १००० किसानोपर २९१ मजूर थे वहाँ १९३१ में १००० पर ४०७ हो गये।† लेकिन इस तरह खेतिहर मजूर बननेसे खेतीकी समस्या किसी भी प्रकार हल नही हो जाती क्योकि खेतोमे काम करनेवाले मजूरोकी संख्या बढ़ जानेके कारण मजूरीकी दरमे कमी हो गयी है, मजूरको बहुत कम मजूरी मिलती है। किसानीके दिनोमें यदि उसे काम मिल भी गया तो बाकी दिनोंमें उसे भूखों ही रहना पड़ता है।

यदि किसी उपायसे वह बे-खेतका मजूर नही बन सका तो वह महाजनोकी रैयत तो हो ही जाता है, अपने ही खेतके लिए उसे कड़ी मालगुजारी देनी पड़ती है और साथ ही कर्जपर

---

* सर मनीलाल बी० नानावती और अजारिया : दी रूरल प्राब्लेम पृ० ४५

† सेंसर रिपोर्ट जि० १ भा० १—१९३१ पृ० २२८

कड़ा सूद भी देना पड़ता है। इन मोटी रकमोंको अदा करनेके लिए उसे अपनी पैदावारका अधिक भाग बेच देना पड़ता है और जो थोड़ा बच रहता है उसीपर गुजर करना पड़ता है। गाँवमें शायद ही ऐसा कोई किसान हो जिसके पास फाजिल गल्ला रहता हो, जिसका उपयोग वह संकटके दिनोंमे कर सके। इसका परिणाम है अकाल। विगत सदीमें जिस तरहके भीषण अकालोंका इस देशको सामना करना पड़ा है, वैसे अकाल प्राचीन युगमें न देखे गये और न सुने ही गये। लोग कहते है कि रेलें आधुनिक युगकी बहुत बड़ी वरदान है क्योंकि संकटके समय उनके द्वारा गल्ला एक स्थानसे शीघ्रताके साथ दूसरे स्थानको पहुँचाया जा सकता है। लेकिन यदि वास्तवमे देखा जाय तो इस प्रतिस्पर्धाके युगमे रेलोंने देशको सबसे ज्यादा हानि पहुँचायी है क्योंकि इन्हींके द्वारा गाँवोंका गल्ला बाहर भेज दिया गया है और इस तरह अकालको निमन्त्रण मिला है। श्री पी० ए० वाडिया तथा श्री के० टी० मर्चेण्टने "र अव इकनामिक प्राब्लेम्स" नामक अपनी पुस्तकमे विगत सदीके भारतीय अकालके सम्बन्धमे निम्नलिखित आँकड़े दिये है—

अवधि	संख्या	औसत मृत्यु
१८२६—१८५०	२	४००,०००
१८५१—१८७५	६	५,०००,०००
१८७६—१९००	१८	२६,०००,०००

इसपर टीका करते हुए लेखकोंने लिखा है—"यह सच है कि १९०० के बाद अकालोंका वह भीषण और उग्र रूप नहीं रह गया है। अब उस तरहके अकाल नहीं पड़ते जिनमे करोड़ो

व्यक्ति बिना अन्नके मर जाया करते थे। लेकिन एक भी साल ऐसा नहीं जाता जब कि देशके किसी-न-किसी कोनेमें अन्नका अभाव न रहता हो। प्रत्येक अकालके बाद किसी-न-किसी महामारीका उपद्रव अवश्य होता है क्योंकि अकालके दिनोंमे लोगोको पेटभर अन्न नसीब नही होता और जो नसीब भी होता है वह स्वस्थकर नहीं रहता।

(च) महामारी—व्यापक अकाल न भी हुआ तो पेटभर अन्न न मिलनेके कारण उनके शरीरको पर्याप्त पोषक पदार्थ नही मिलता। उसके अभावमें वे अनेक बीमारियोंके शिकार होते रहते है जिनसे प्रतिवर्ष हजारो मरते रहते हैं। १९०१ तथा १९२१के बीच १ करोड़ २० लाख व्यक्ति प्लेगसे मरे। १६१८ तथा १६१९के इन्फ्लूएञ्जामे १ करोड़ ४० लाख मरे और १९०१ तथा १९२१के बीचमें मलेरियासे १ करोड़ ८० लाख व्यक्ति मरे। यूरोपवालोने विगत ५० वर्षोंमें निवारक उपायोद्वारा अपने देशसे मलेरियाको मार भगाया। भारतमे मलेरिया जॉच विभागके डाइरेक्टर कर्नल सिएटनने लिखा है कि इस बातका अकाट्य प्रमाण मौजूद है कि केवल ब्रिटिश भारतमे प्रतिवर्ष कम-से-कम १० करोड़ व्यक्ति मलेरियासे पीड़ित होते है। २ करोड़ ५० लाखसे ७ करोड़ ५० लाखतक व्यक्ति मलेरियाके कारण अन्य रोगोंके शिकार होते रहते हैं। मलेरियाका आक्रमण मौतसे भी बुरा होता है क्योकि यह शरीरका रस चूस लेता है और मनुष्यको कमजोर बना देता है। पब्लिक हेल्थ कमीशनके १६३८की वार्षिक रिपोर्टमें लिखा है कि इस साल मलेरियासे जितनी मृत्यु हुई उसका ६६.४ सैकड़ा केवल देहातोंमे लोग मरे।

प्लेग, इन्फ्लूएञ्जा और मलेरियाहीका प्रकोप उनपर नही होता, हैजा, यक्ष्मा, संग्रहणी आदि रोगोके भी वे शिकार होते रहते हैं। इन रोगोका एकमात्र कारण दरिद्रता है जिसकी वजहसे न तो उन्हे पेटभर अन्न नसीब होता है और न वे सफाईसे रह सकते है। इस तरह अगणित व्यक्ति इन रोगोसे मरते रहते है।

नीचेकी तालिकामें अमेरिका तथा ब्रिटेनके साथ भारत-वासियोकी जिन्दगी तथा मृत्युसंख्याकी तुलना की गयी है:—

मृत्युसंख्य प्रति १०००

	बच्चा	जवान	सर्वसाधारण	जिन्दगीका औसत
अमेरिका	५४	८·५	११·२	६२
ब्रिटेन	५.८	४·०	१२·४	६३
भारत	१६२	२४·५	३३·०	२७

इस तरह किसान दरिद्रतासे कर्जदार बनता है, अकाल तथा बीमारियोका शिकार बनता है, और असमय मृत्युको प्राप्त होता है। जबतक कि प्रतिस्पर्धायुक्त इस आर्थिक व्यवस्थाका समूल नाश नहीं कर दिया जाता तबतक यह क्रम रुक नहीं सकता। किसानोकी यह दयनीय दशा उत्पन्न करनेके अन्य भी कारण हैं, जैसे पर्याप्त खाद न देना तथा मिट्टीका लगातार प्रयोग होनेसे उसकी उर्वराशक्तिका ह्रास, खेतोमे अदल बदलकर फसल नलगाना, खराब बीज तथा खेतीके अन्य खराब साधन, अच्छे बाजार तथा सुविधापूर्ण कर्जका अभाव, कड़ी मालगुजारी, खेतोपर अधिकारकी अनुचित प्रणाली, जनताके कल्याणके प्रति विदेशी सरकारकी उदासीनता, प्राचीन प्रणालीकी उसकी अनजानकारी, आदि।

लेकिन हमारे गाँवोकी बर्बादीका सबसे बड़ा कारण प्रतिस्पर्धा-युक्त आर्थिक व्यवस्था है जिसे ब्रिटिश व्यवस्थाको लाभ पहुँचानेके लिए हमारे देशपर जबर्दस्ती लादा गया है। क्योंकि इसीके कारण सरकार भी यहाँके निवासियोंके कल्याणके प्रति उदासीन् है और जनता भी बेबस और निराश है। इन्हीं दोनोंकी बदौलत अन्य उपद्रव भी उठ खडे होते हैं जिससे हमारे गाँवोकी यह दयनीय दशा हो गयी है।

देशभरमें कृषि कालेजका जाल ही क्यो न बिछा दिया जाय, किसानोको कर्ज देनेवाले बैंकोकी भरमार ही क्यों न हो जाय, कृषिके अगणित दक्षोकी नियुक्ति ही क्यो न कर दी जाय, मार्केटिंग अफसरोकी नियुक्ति भी हो जाय, ग्रामोद्योगोके भण्डार खोल दिये जायँ, प्रयोगशालाओंकी स्थापना कर दी जाय, अनेक तरहकी सहयोग-समितियोकी स्थापना कर दी जाय, आदर्श खेत कायम कर दिये जायँ, बैलोकी नस्ल बदल दी जाय अथवा इस तरहके अन्य उपाय किये जायँ किन्तु इन सब उपायोसे केवल ऊपरी सतह ही छीली जा सकती है, रोगको समूल नष्ट नहीं किया जा सकता। क्योकि रोगकी उत्पत्ति तो उस प्रतिस्पर्धायुक्त आर्थिक प्रणालीका फल है जिसके द्वारा ग्रामोद्योगोपर कठोर प्रहार किया गया है तथा उसे छिन्नभिन्न कर दिया गया है और इस तरह भारतीय कृषि तथा व्यवसाय दोनोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया है। जिस प्रतिस्पर्धायुक्त आर्थिक प्रथाने हमारे देशका सर्वनाश किया उससे जबतक हम दृढ़तापूर्वक अलग होनेका निश्चय नही करते, हमारा भविष्य इतना अन्धकारमय है कि हम उसकी कल्पना भी नही कर सकते। जिस दलदलमें वे तेजीके साथ धँसते

जा रहे है उससे उनका उद्धार करनेके लिए कोई-न-कोई उपाय तत्काल करना परम आवश्यक है। उनके उद्धारका सबसे सुगम रास्ता यही है कि उन्हे यह समझाया जाय कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारको वे तिलाञ्जलि दे दे और अपनी आवश्यकताको दृष्टिकोणमे रखकर ही वे उत्पादन करें और केवल उन्ही चीजोको खरीदे जो उनके निकटतम पड़ोसी पैदा करते हैं। यही एकमात्र मार्ग है जिससे हमारे देशकी हालत सुधर सकती है और एक बार फिर हमारी आर्थिक दशा समुन्नत हो सकती है।

४—पशु

ऊपर हमने जिस ग्रामोद्योग आर्थिक-व्यवस्थाकी चर्चा की है उसमे उत्पादनका काम अनेक गॉव एक साथ मिलकर अपने उपभोगके लिए करेगे। इससे यह निश्चित है कि काम करनेके लिए हमे बैलोपर बहुत अधिक निर्भर रहना पड़ेगा। खेतीके काममे मशीनोका उपयोग तभी लाभदायक हो सकेगा जब एक साथ ही सैकड़ो एकड़ भूमि जोतनेके लिए हो। लेकिन जब जोतनेके लिए केवल गॉवके आस-पासके ही खेत होगे और उन्हे भी भिन्न-भिन्न तरहकी फसलोके लिए बॉटकर जायगा, तब ऐसी हालतमे बैलोसे काम लेना ही हमारे लिए उपयुक्त और समीचीन होगा। इसके साथ ही मशीनोके प्रयोगसे यह आशा तो की ही नही जा सकती कि उनसे पैदावार किसी तरह बढ़ जायगी। उनसे केवल इतना ही लाभ हो सकेगा कि श्रममे किफायतसारी होगी। लेकिन श्रममें किफायतसारी करनेका प्रश्न हमारे देशके सामने नहीं है, बल्कि इसके विपरीत हमारे देशमे

तो करोड़ोको रोजी देनेका प्रश्न है। खेतीके काममें मशीनोंके प्रयोगसे इस बातकी भी सम्भावना है कि जिन लोगोंको वहाँसे रोजी मिलती है, वे बेकार हो जायँगे। इससे देशमे बेकारी और दरिद्रता और भी ज्यादा बढ़ जायगी। क्योंकि हमारे लिए यह सम्भव नही है कि हम मजूरोंको उद्योगधन्धोंमें लगा सकें। इसके अलावा मशीनोंके लिए जिस ईंधनकी जरूरत है वह भी हमारे देशमे पर्याप्त नहीं है।

साथ ही हमारे देशके अधिकांश लोग शाकाहारी होते हैं, धार्मिक, सांस्कृतिक या अन्य कारणोंसे वे मांस वगैरह खाना पसन्द नही करते। निरामिष भोजनमे पोषक पदार्थोंकी कम मात्राको पूरी करनेके लिए दूध तथा दूधसे उत्पन्न अन्य उपकरण हमारे लिए नितान्त आवश्यक है। इसके लिए हमे गायोंपर निर्भर रहना अनिवार्य है। गायोंके पालनसे बैलोंकी आमद होती ही रहेगी। अपने धार्मिक विश्वासके कारण हमलोग पशु-वधको पाप समझते हैं। इसलिए हमें किसी-न-किसी प्रकार बैलोंका उपयोग करना ही पड़ेगा। ये बैल हमारी खेती, व्यव-साय तथा माल ढोनेके काममे आवेंगे।

हमें ग्रामोद्योगकी आर्थिक-व्यवस्थामे बैलोंसे काम लेना होगा। इसलिए हमारे लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम उस तरहकी गायोंकी खोज करें जो बहुत अधिक दूध देनेवाली हो। बल्कि हमें ऐसी गायें रखनी होंगी जिनके बच्चे मजबूत, हृष्ट-पुष्ट और कड़ी मेहनत बर्दाश्त करनेवाले हो, गाँवोमें उत्पन्न किया जानेवाले चारेपर निर्भर करने लायक हों और देहातोमे पशुओंकी जो बीमारियाँ होती हैं उन्हें बर्दाश्त कर सकने

लायक हो। हमारे देशमे भैसोसे ज्यादा काम नही लिया जा सकता। क्योंकि वे हमारे देशकी गर्मीको बर्दाश्त नही कर सकते। पर्याप्त मात्रामें पोषक पदार्थयुक्त दूधके उत्पादनका जहाँ-तक सम्बन्ध है, गायकी अपेक्षा भैसे कही ज्यादा उपयोगी सिद्ध होगी, क्योकि एक तो वे दूध ज्यादा देती है दूसरे उनके दूधमे मक्खन, मलाई ज्यादा होता है। लेकिन उसका पाड़ा (बच्चा) हमारे कामके लिए बिलकुल व्यर्थ है। इस-लिए हमलोग गायके बछड़ेको अपने खेतोके कामके लिए ज्यादा पसन्द करते है।

भैसोकी अपेक्षा गायको ज्यादा पसन्द करनेके अन्य भी अनेक कारण हैं। उनमेसे कुछकी चर्चा यहाँ कर दी जाती है—(क) गायके दूधसे विटामिन 'बी' और विटामिन 'ई' की मात्रा बहुत ज्यादा होती है। भैसके दूधमें विटामिन 'ई' की मात्राका सर्वथा अभाव रहता है। इसलिए शरीरके पोषणके लिए भैंसके दूधकी अपेक्षा गायका दूध ज्यादा पसन्द किया जाता है। (ख) मजूमदारके अनुसार गायके घीमे विटामिन 'ए' की मात्रा भैंसके घीकी अपेक्षा दसगुना ज्यादा रहता है। (ग) भैसकी अपेक्षा गायोको बीमारियाँ कम होती हैं। इसलिए गायके लिए अधिक देख रेखकी जरूरत नही पड़ती। (घ) भैस-की अपेक्षा गाय एक साल पहले जवान हो जाती है। (च) गाय बिसुक जानेके बाद भैसकी अपेक्षा बहुत जल्द गाभिन होकर बच्चा दे देती है। (छ) गायके दूधपर सर्दी और गरमीका उतना ज्यादा असर नही पड़ता जितना भैसके दूधपर। (ज) भैसकी अपेक्षा गायके लिए चारा और पानीकी बहुत कम जरूरत

पड़ती है। इसलिए गाय रखनेमें चारागाहके लिए भूमिकी भी कम जरूरत पड़ती है।

दूध देने और खेतीके काममें आनेके अलावा इन पशुओंका मूत्र और गोबर खेतीके काममे खादके लिए बहुत उपयोगी होता है। इनमें जो उर्वराशक्ति है उसका मुकाबला रासायनिक खाद नही कर सकते। अनुसन्धानसे यह पाया गया है कि रासायनिक खादके प्रयोगसे खेतोंकी उत्पादक-शक्ति आरम्भमें अवश्य बढ़ जाती है लेकिन आगे चलकर इसका प्रभाव खेतोंपर बहुत खराब पड़ता है। यह धीरे-धीरे खेतका सारा रस निचोड़ लेता है और उसे ऊसर वना देता है। यह भी प्रकट हुआ है कि इन रासायनिक खादोंसे फसलमें अनेक तरहके रोग लग जाते है और जिन पशुओंको इन खेतोंका चारा खिलाया जाता है वे भी अनेक तरहकी बीमारियोंके शिकार हो जाते है। पश्चिमी देशोमें रासायनिक खादोका बहुत कडुआ अनुभव हुआ है। ऐसी हालतमे हमारे देशके लिए सबसे उपयुक्त यही है कि हम पशुओके खादपर ही निर्भर करें और अपने देशवासियोंको इस बातकी शिक्षा दें कि पशुओके गोबरसे खाद तैयार करें। मल-मूत्रका प्रयोग खादके रूपमे करें और मनुष्यके मलको भी सड़ाकर खाद तैयार करें तथा रसायनिक खादके फेरमे न पड़कर इसी खादका प्रयोग खेतोमे करें। यदि आगे चलकर ऐसे उपाय भी निकल आवें जिनके द्वारा रासायनिक खादके दोष दूर किये जा सकें तो भी हमारे देशके किसानोंको पशुओंके मलमूत्र तथा सड़े-गले पत्ते और शाकभाजीद्वारा तैयार किये गये खादके उपयोगपर निर्भर करना चाहिए क्योंकि थोड़ी मिहनतके

अलावा इसमे किसी तरहका अतिरिक्त खर्च नहीं पड़ता। ईंधनके अभावमें हमारे देशमे गोवरका प्रयोग ईंधनके रूपमें होता है जिससे तरह खेतोकी उर्वराशक्ति नष्ट होती जा रही है। इस प्रथाको रोकनेके लिए जङ्गल-कानूनमे इस तरहके सुधार करने होगे जिससे पहलेकी तरह लोग जङ्गलोंसे ईंधनके लिए लकड़ी बटोर सकें और गॉवोके आस-पास जो ऊसर भूमि हो उसमे भी ईंधनके उपयुक्त पेड़ लगाये जायँ।

पशुओसे केवल घी, दूध और खाद ही नहीं मिलते, बल्कि उनके मरनेपर उनसे अन्य उपयोगी वस्तुऍ भी प्राप्त होती हैं, जैसे—खाल, हड्डी, सीग, बाल, चर्वी, मांस तथा रक्त जो मशीनोंसे नहीं मिल सकते। पशुओंके मरनेपर उनके शरीरके प्रत्येक भागको किसी-न-किसी काममें लाया जा सकता है। इस तरह हम देखेगे कि मशीनकी अपेक्षा पशु हमारे लिए कहीं ज्यादा उपयोगी सिद्ध होते है।

उपर्युक्त कारणोसे ग्रामोद्योग आर्थिक-व्यवस्थामे गायोका बहुत बड़ा स्थान होगा। यही कारण है कि गायोसे सम्बन्ध रखनेवाली सभी समस्याओको हल करनेके लिए गो-सेवा-सङ्घके समान विशेष संस्था स्थापित की गयी है।

ऊपर यह दिखलाया गया है कि ग्रामोद्योग आर्थिक-व्यवस्था-में श्रम-शक्तिका सारा काम लेनेके लिए पशुओंको काममे लाया जायगा। इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि यदि सिचाई तथा घरेलू-धन्धोके लिए बिजली उपलब्ध हो तो हम उसका प्रयोग न करे। जहॉ काम इतना ज्यादा बढ़ जाय कि बैलोसे काम पूरा न हो सके वहॉ हमें उपलब्ध होनेपर बिजलीसे काम

लेना ही चाहिये। बिजलीसे काम लेते वक्त केवल इस बातपर
ध्यान रखना चाहिए कि इससे हम बेकारी तो नहीं बढ़ाते। इसके
साथ ही इस बातपर भी ध्यान रखना होगा कि बिजलीकी
शक्तिके उत्पादन तथा प्रदानका नियन्त्रण उन्हीं गाँववालोंके
हाथमे है जिन्हें इसका उपयोग करना है।

५—लेन-देन

ग्रामोद्योगकी उपर्युक्त आर्थिक-व्यवस्थामे जहाँ कई गाँव
मिलकर एक इकाईका रूप ग्रहण करेंगे और एक-दूसरेपर
निर्भर रहेंगे वहाँ लेनदेनके लिए रुपयोंकी बहुत ज्यादा जरूरत
नही पड़ेगी क्योंकि उत्पादक और उपभोक्ता अपनी आवश्यकता-
के अनुसार वस्तुओंका लेनदेन आपसमें कर लेंगे। आज भी
क्या हालत है। एक जगह बे-शुमार अन्न है और दूसरी जगह
उसकी नितान्त माँग है, लेकिन लेनदेनका आधार रुपया होनेके
कारण, जबतक रुपया पैदा करनेका जरिया न हो, एककी माँग
दूसरेसे पूरी नहीं की जा सकती। इस तरह भोजन और भुख-
मरीके बीचमे रुपयेकी अप्राकृतिक समस्या खड़ी करके हमने अपने
जीवनमे भीषण जटिलता उत्पन्न कर दी है। क्या हमारे लिए
यह उपयुक्त नहीं है कि हम इस अप्राकृतिक रुकावटको दूर कर
दें और जहाँतक सम्भव हो वस्तुओ या श्रमके बदलैनसे ही
काम लें? हम इस फेरमे क्यो पड़ें कि रुपयोंके बिना हमारा
काम नहीं चल सकता। क्यो न हम वस्तुओंके बदलैनसे ही
अपना काम चलावे। जिस वस्तुकी हमे जरूरत है उसकी प्राप्ति
हम अपने पासकी वस्तु देकर क्यो न करें। श्रमके बदलेमे भी

हम वस्तु ही क्यो न दे ? बहुधा यही देखनेमे आता है कि जब किसी गरीब मजूरको नकद मजूरीपर काम करना पड़ता है तो वह घाटेमे रहता है या जब किसी गरीब किसानको रुपयेके लिए अपना माल बेचना पड़ता है तो वह भी नुकसानमे ही रहता है। उत्पादनके सभी साधन पूँजीपतियोके हाथमे है, उपभोगकी सभी सामग्रीपर उनका ही अधिकार है। उपभोगकी इन वस्तुओ-को नकद रुपया देकर खरीदनेके लिए गरीब मजूरको जो भी नकद रकम मिल जाती है उसीपर उसे काम करना पड़ता है। नकद आर्थिक व्यवस्थाका यह सबसे बड़ा अभिशाप है। फल तथा शाक-भाजी शीघ्र नष्ट होनेवाले उत्पादक पदार्थ है, लेकिन रुपया नष्ट नही हो सकता। इसलिए जिसके पास रुपया है वह हमेशा नफेमे है क्योंकि अपनी इच्छानुसार दामपर वह इन वस्तुओंको बेचनेके लिए उत्पादकको मजबूर कर सकता है। गरीब किसान लाचार है क्योंकि वह जानता है कि यदि इन्हे तुरन्त बेच न दिया जाय तो ये चीजें सड़कर खराब हो जायँगी। इस तरह उन्हे बर्बाद होने देनेकी अपेक्षा कम दामपर बेच देना ही वह श्रेयस्कर समझता है। इस तरह रुपयेका प्रयोग अनुचित लाभ उठानेमे होता है।

महात्माजी लिखते हैं—"हमारी आर्थिक व्यवस्थामे सिक्केका काम धातुसे नही लिया जायगा बल्कि श्रम ही उसका काम करेगा। जिस किसीके पास श्रम होगा उसके पास सिक्का या धन मौजूद रहेगा। अपने श्रमके बदले वह अन्न-वस्त्र सब कुछ प्राप्त करेगा। यदि उसे पैराफिन तेलकी जरूरत है, जिसे वह पैदा नही कर सकता तो अपना फाजिल अन्न देकर वह उसे प्राप्त

कर लेगा। हमारी व्यवस्थामें स्वतन्त्रतापूर्वक, ईमानदारीके साथ, बराबरीकी शर्तोंपर श्रमका लेनदेन होगा, इसलिए इस व्यवस्थामें लूट या ठगीकी गुञ्जायश नहीं है। इस व्यवस्थापर यह दोषारोपण किया जा सकता है कि यह तो उसी प्रारम्भिक अवस्थापर लौटना रहे जहाँ बदलैनसे काम होता था। लेकिन क्या समस्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इसी बदलैनकी प्रथापर अवलम्बित नहीं है?"
(देखो हरिजन २-११-१९३४)

हमारे देशके तीन-चौथाई लोगोंके पास द्रव्यका अभाव है। द्रव्यके अभावमें भी उन्हें आश्यकताकी चीजें सहजमें उपलब्ध हो सकें, इसके लिए महात्माजीने सूतको लेनदेनका माध्यम ठहराया है। उनकी सलाह है कि सूतको लेने-देनेका माध्यम बनाया जाय क्योंकि सूत एक ऐसी वस्तु है जिसे सबलोग सहजमें उत्पन्न कर सकते हैं। जिसे अन्नकी जरूत है वह दो तीन घण्टा चरखा चलाकर अपनी आवश्कताके लायक सूत तैयार कर सकता है। इस तरह वह स्वयं अपना टकसाल-घर बन जाता है और अपने लिए वह सिक्का तैयार कर लेता है जिसके उपयोगसे वह अपनी सारी आवश्यकताकी पूर्ति कर सकता है। यह विचार वहुत ही आकर्षक प्रतीत होता है। इसे काममे लाकर देखना चाहिए कि इससे क्या परिणाम निकलता है।

रुपया प्रतिस्पर्धायुक्त आर्थिक व्यवस्थाजनित व्यवसायकी देन है। इसके खिलाफ हमलोग युद्ध करना चाहते हैं। इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि व्यवसाय बुरी चीज है। हमारा कहना यह है कि हमारे देशकी वर्तमान अवस्थामें इससे हमें बहुत नुकसान पहुँचा है। रुपयोंका लोप हो जानेपर या उनका

प्रयोग कम हो जानेपर हमें उन वस्तुओंके खरीदनेका प्रलोभन नहीं रहेगा जो हमारे गाँवमे पैदा नही होती। इससे ग्रामोद्योग-को प्रोत्साहन मिलेगा और उसमे नवजीवनका सञ्चार होगा। रुपयोंके लिए गाँवके लोग जिस-तिस दामपर अपना माल बेच देते है और उन रुपयोसे चमकदार, आकर्षक पर साथ-ही-साथ निकम्मी विदेशी चीजे खरीदते हैं और इस तरह अपना सर्व-नाश करते हैं।

इसके अलावा नकद आर्थिक व्यवस्थामे किसानोको अन्य कारणोसे भी नुकसान उठाना पड़ता है जिनमे उनका जरा भी दोष नही रहता। एक्सचेञ्ज, करेन्सी और उधार व्यवहारके साथ-ही-साथ भावकी घटती-बढ़ती ऐसी बातें है जो किसनोको बहुत अधिक नुकसान पहुँचाती है। उसके मालका मूल्य उपरकी बातोपर निर्भर करता है और उनपर इसका किसी तरहका निय-न्त्रण नही। इन उपायोसे उसके सारे प्रयास व्यर्थ कर दिये जाते हैं और वह गरीब-का-गरीब बना रह जाता है। उसके मालका उचित मूल्य तभी मिल सकता है जब उसके सामने ऐसे साधन मौजूद हो जिससे उसे रुपयोके लिए अपना माल न बेचना पड़े।

रुपयोके कारण ही उसे कर्ज लेनेके प्रलोभनमे फँसना पड़ता है। वह समझता है कि माल बेचकर वह रुपया वापस कर देगा। इस तरह वह महाजनोके चंगुलमे फँस जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह अपनी सम्पत्ति और अपनी आजादी सब कुछ खो देता है।

वर्तमान आर्थिक-व्यवस्थामे उसे मालगुजारी, कर्ज, लगान। नौकरोका वेतन सब कुछ नकद रुपयोमे देना पड़ता है।

इसके साथ उसे खेतीका सामान तथा अपने लिए आवश्यक वस्तुएँ भी नकद दाम देकर खरीदनी पड़ती है। इसका परिणाम यह होता है कि उसे अपना गल्ला खेतोंमें ही वेच देना पड़ता है, ज्यादा से-ज्यादा फसल तैयार होनेपर तो उसे वेचना ही पड़ता है क्योंकि देना चुकानेके लिए उसे रुपयोंकी जरूरत रहती है। फसलके समय गल्ला स्वभावतः सस्ता रहता है। इसलिए उसे सस्ते दामपर ही अपना गल्ला वेच देना पड़ता है। वदलैनकी प्रथामें वह अपनी सम्पत्तिको सुरक्षित रख सकेगा क्योंकि उसे जिस-तिस भावपर वेचनेकी जल्दी नहीं रहेगी।

दलालों तथा पोद्दारोंकी जेबमें जो रुपया आजकल चला जाता है, वह भी किसानके पास ही बचा रह जायगा। नकद आर्थिक-व्यवस्थामें उत्पादक और उपभोक्ताके बीच सैकड़ों मील-का अन्तर रह सकता है। इसलिए एकके यहाँसे माल दूसरेके यहाँ पहुँचानेके लिए किसी मध्यस्थकी जरूरत रहती है। लेकिन वदलैनकी प्रथामें उत्पादक और उपभोक्ताका सीधा सम्बन्ध रहेगा, इसलिए किसी तीसरे व्यक्तिकी आवश्यकता नहीं होगी। इस तरह नफाका सारा भाग उत्पादकको ही मिलेगा और उसकी दशामें सुधार होगा। आजकलकी भाँति उत्पादक दिनोदिन दरिद्र और पोद्दार उसकी बदौलत दिनोदिन समृद्ध नहीं होता जायगा।

नकद रुपयोंसे लोभकी मात्रामें भी वृद्धि होती है क्योंकि उसे जमा करनेके लिए न तो बहुत जगहकी जरूरत होती है और न उसके बर्बाद होने या घटनेका भय रहता है लेकिन गल्ला जमा करनेके लिए उपरोक्त तीनों बातोंकी परीशानी रहती

है। मान लीजिये कि हमारे पास ६ सन्तरे है। यदि हम यह चाहें कि चार तो हम आज खा लें और दो अगले सप्ताहके लिए रख छोड़ें तो यह सम्भव नही है। इसलिए जिसकी हमे जरूरत नहीं है उसे हम तुरन्त अपनेसे अलग कर देना चाहेगे। लेकिन रुपयेके साथ यह बात नहीं है। हम चाहे तो आज ४ ही खर्च करे और २ बचाकर रख ले। इस २ का हम अपने इच्छानुसार मनमाना प्रयोग कर सकते है या मरते वक्त अपने बाल-बच्चोंको दे सकते है। इस तरह रुपयोको बटोरकर रखने की स्वाभाविक प्रवृत्ति जाग उठती है और लोग इकट्ठा करनेके लिए ही रुपया कमानेके फेरमें पड़ जाते है। लेकिन बदलैनकी प्रथामे सम्पत्तिका बॅटवारा कहीं उचित रीतिसे होता है। रुपयोसे सम्पत्तिकी पूजाकी प्रवृत्ति जागृत होती है और इस तरह प्रतिष्ठाका अप्राकृतिक या गलत मापदण्ड समाजमे तैयार हो जाता है। लेकिन बदलेनकी प्रणालीमे सम्पत्तिका स्थान गौण रहता है क्योकि उसका एकमात्र उद्देश्य मानवताका कल्याण होता है।

इसलिए ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्थामे जहाँतक सम्भव है बदलैनकी प्रणालीसे ही काम लेनेका यत्न किया जायगा। अनिवार्य हो जानेपर ही रुपयोंका प्रयोग किया जायगा क्योकि यह भली-भॉति दिखलाया जा चुका है कि परिवर्तनके माध्यमके रूपमें रुपया नितान्त उपयोगी होनेपर भी उसके द्वारा सम्पत्तिका सङ्कलन चन्दके हाथोमे आ जाता है और अधिकांश-को दरिद्रताका शिकार होना पड़ता है। इसके साथ ग्रामीण आर्थिक-व्यवस्थापर इसका बहुत ही घातक प्रभाव पड़ता है।

६—वाणिज्य-व्यवसाय :

ऊपर लिखा जा चुका है कि ग्रामोद्योगकी संयुक्त आर्थिक व्यवस्थामे वाणिज्यके लिए उत्पादनका ध्येय प्रमुख नही होगा क्योकि जहाँतक सम्भव होगा गाँवके लोग अपनी प्रमुख आवश्यकताके लिए आत्म-निर्भर रहेंगे। लेकिन इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि गाँवोके लोग वाणिज्यकी दृष्टिसे कभी कोई वस्तु तैयार ही नहीं करेंगे। ऊपर इस बातका निर्देश किया जा चुका है कि वस्तुओंका बदलैन एक गाँवका दूसरे गाँवके साथ होता रहेगा, इस तरहका बदलैन एक प्रान्तका दूसरे प्रान्तके साथ भी हो सकता है, अन्य देशोंके साथ भी सम्भव है। स्थानीय आवश्यकताकी पूर्तिसे जो सामान फाजिल होगा वही इस तरहके वाणिज्यके काममे लाया जायगा अथवा वे चीजें जो भौगोलिक स्थितिसे या अन्य कारण-विशेषसे किसी खास प्रदेशमें ही तैयार की जा सकेंगी।

(क) कच्चा माल नहीं बेचा जायगा :—जिस कच्चा मालसे गाँवोंमें वस्तु तैयार की जा सकेगी उसका व्यापार नहीं हो सकेगा। आज गाँवोमें तेलहन, कपास वगैरह कच्चा माल पैदा होते है, लेकिन वे सब शहरों या अन्य देशोंमें चले जाते हैं। कल-कारखानेवाले या विदेशोंमे माल भेजनेका व्यवसाय करनेवाले बड़ी तादादमे उन्हे खरीद लेते है। इन चीजोंके बदले कलका तेल और विदेशी कपड़ा देहातोंमे पहुँचाया जाता है। इससे गाँववालोंकी बहुत बड़ी हानि होती है क्योंकि इन कच्चा मालोंका उपयोग वह अपने गाँवमें ही करके मजूरीके रूपमें कमा सकता था, लेकिन इन्हें बेचकर

वह तैयार माल खरीदता है अर्थात् जो मजूरी गाँवमे ही रह सकती थी उसे वह बाहर भेज देता है। साधारण अवस्थामे भी भारतसे प्रतिवर्ष १० लाख टन तेलहन बाहर जाता था। इसका फल यह होता है कि भारतको प्रतिवर्ष प्रायः ३०,०००,००० रुपयोंका घाटा मजूरीके रूपमे उठाना पड़ता है। यह आँकड़ा इस हिसाबसे लगाया गया है कि गाँवोंमे कोल्हूसे तेल पेरकर वह ३० रुपया प्रति टन कमाता है। इसके साथ ही तेलसे जो अन्य वस्तुएँ—साबुन, रङ्ग, लुब्रिकेएट—तैयार की जाती है उनके व्यापारसे भी वह वंचित हो जाता है क्योंकि ये वस्तुएँ भारतमें तैयार न होकर बाहरसे आती हैं। कपासको ही ले लीजिये। कपाससे गाँवोंमे करघेपर कपड़े तैयार हो सकते हैं। पर यह नही होता है। भारतका कपास लङ्काशायर या जापान चालान जाता है और वहाँसे कपड़ा बुनकर भारतमे आता है। इससे बढ़कर बुरी बात और क्या हो सकती है। यह तो इसीके बराबर हुआ कि हिन्दुस्तानके लोग अपना कपड़ा यहाँ न धुलाकर इङ्गलैण्ड धुलानेके लिए भेजे। भारतवासियोको अपना कपड़ा स्वयं धोना चाहिए क्योंकि कपड़ा बाहर भेजनेमे जो खर्च पड़ेगा उसे बर्दाश्त करनेकी शक्ति उनमे नही है। लेकिन हमारे गाँववालोंकी हालत ठीक इसी प्रकारकी है। कपाससे वे चर्खेपर सूत कातकर स्वयं करघोंपर कपड़ा बुनकर तैयार कर सकते हैं। ऐसा न कर वे कपास बेच देते है और उसके बदले विदेशी कपड़ा खरीदते हैं। जो दशा कपासकी है वही अन्य कच्चे मालोंकी भी है जिससे वे अपने घरोंमे ही बढ़िया माल तैयार कर सकते हैं। कहने और सुननेमे तो यह बहुत अच्छा लगता है

कि लङ्काशायर, जापान या अहमदाबादकी मिलोंमें कपड़ा बढ़िया तैयार होता है और कपास बेचकर उसके बदलेमें कपड़ा खरीदकर किसान बहुत बड़ी परेशानीसे बच जाता है। इस तरहका तर्क उन लोगोंके लिए लागू हो सकता है जो दफ्तरोंमें काम करते हैं और नकद वेतन पाते है तथा जिनकी आमदनी अन्य जरियोंसे निश्चित है। लेकिन इस तरहके लोगोंकी संख्या ही इस देशमे कितनी है। भारतवर्षकी आबादीमे उनका स्थान नगण्य है। किसानको तो अपनी जीविका कमानेके लिए अपना सब काम अपने हाथसे करना होगा। उसे मिहनत-मजूरीसे वञ्चित करनेका अर्थ होता है, उसे जीविकाके साधनोंसे वञ्चित करना।

यह तर्क भी पेश किया जा सकता है कि यदि भारतवर्ष कृषि कर्मके लिए सबसे उपयुक्त है तो क्यो नही उसे कृषि-कर्ममें ही विशेष रूपसे संलग्न होना चाहिए और संसारभरके लिए कच्चा माल तैयार करना चाहिए और पक्का माल तैयार करनेका भार इङ्गलैण्ड तथा जापान आदि छोटे देशोंके लिए छोड़ देना चाहिए जो पक्का माल तैयार करनेके लिए अधिक उपयुक्त हैं और सस्ता पक्का माल तैयार करते हैं। इसके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि हम यह बात क्यों स्वीकार कर लें कि यदि ब्रिटेन और जापानकी भाँति हम भी बड़े-बड़े कल-कारखाने खोल ले तो हम भी उसी योग्यताके साथ सस्ता माल तैयार नही कर सकते। इसके अलावा हम यह भी दिखला चुके हैं कि आस्ट्रेलिया तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाका मुकाबला कच्चे मालके उत्पादनमें भी हमारा देश नहीं कर सकता। इसके अलावा पक्का माल तैयार करनेमे जो मजूरी मिलती है वह कच्चा माल पैदा करनेमें नहीं

तैयार करता है और प्रत्येक किसानके घर आप-ही-आप पहुँचा आता है। इस काममे उसे अन्य प्रकारका कोई खर्च नही करना पड़ता। लेकिन मिलोद्वारा तेल तैयार करनेमे कई तरहके अन्य खर्चका भी बोझ उठाना पड़ता है। सबसे पहले जो तेलहन खरीदनेवाले दलाल या पोद्दारका कमीशन है। इसके बाद तेलहन बाहर भेजनेमे रेल तथा गाड़ीका भाड़ा, मालका बीमा तथा विज्ञापन आदिका खर्च है। इससे स्पष्ट है कि गाँवके कोल्हूके स्थानपर तेलकी मिल खड़ी करनेमें राष्ट्रको किसी तरहका लाभ नही हो सकता। बल्कि यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो तेलकी मिल खड़ी करनेमे ही राष्ट्रको नुकसान है। पहले तो कोल्हूकी अपेक्षा तेलकी मिलके लिए बहुत अधिक पूँजी चाहिए, दूसरे तेलके मिलमे कम आदमियोको मजूरी मिलेगी। बैलवाला सात कोल्हू जितना तेल पेरता है उतना तेल मिलका एक कोल्हू पेर लेता है अर्थात् मिलके कारण प्रति सात व्यक्तिपर ६ व्यक्ति बेकार हो जायँगे, तीसरे नफाका बहुत कम अंश मजूरीके रूपमे दिया जाता है, चौथे मशीने विदेशोसे मँगानी पड़ती हैं, इससे गाँवके बढ़ई और लोहारोकी रोजी छिन जाती है और बैल बेकार हो जाते है। इस तरह कोल्हूकी अपेक्षा तेलकी मिले राष्ट्रके लिए आर्थिक दृष्टिसे भी अहितकर है। इसके उत्तरमे यह कहा जा सकता है कि यदि ऐसी बात होती तो मिलके तेल कोल्हूके तेलसे बाजारमे सस्ते न बिकते। लेकिन इसके कई कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि मिलवालोंके पास पूँजी ज्यादा होती है, इसलिए वे थोक माल फसलके समय ही खरीद लेते हैं इसलिए उन्हे तेलहन सस्ता मिल जाता है, लेकिन पूँजीके

अभावमें गाँवका तेली ऐसा नहीं कर पाता। उसे तो तेलहन सदा फुटकर भावमें खरीदना पड़ता है जो स्वभावतः महँगा पड़ता है। दूसरा कारण यह है कि मिलवाले तेलहनमें अन्य वस्तुएँ भी फेट देते है जिससे तेल सस्ता पड़ता है। यदि गाँवके तेलीको उसी भावपर तेलहन मिल जाया करे जो भाव फसलके समय रहता है—यदि सहयोग समितियाँ चाहें तो फसलके समय तेलहन खरीदकर रख सकती है या गाँववाले तेलहन जमा करके रख सकते है, या राष्ट्रकी ओरसे इस तरहका प्रबन्ध रहे कि वह फसलके समय तेलहन खरीदकर रख लें और उसी भावपर कोल्हू चलानेवालोको दिया करे या उपभोक्ता अपने पास तेलहनका पर्याप्त भण्डार रखें और अपनी आवश्यकताके अनुसार तेलीको देकर हमेशा ताजा तेल पेरवा लिया करे—और इसके साथ ही कानूनद्वारा मिलावट या फेटको रोक दिया जाय तो निश्चय ही कोल्हूका तेल मिलके तेलसे सस्ता पड़ेगा।

इसके अलावा पूँजीवाद तथा साम्राज्यवादवाले अध्यायमें हमने यह दिखलाया है कि बड़े-बड़े कारखानोंके लिए सार्व-जनिक कोषसे कई तरहके व्यय राजकी ओरसे किया जाता है—जैसे, साम्राज्य, सेना, नौसेना, हवाई सेना, चुंगी, मदद, बेकारों-को सहायता, बुढ़ापेमें पेंसिन, निवास वगैरह—तथा दूसरी तरहकी अन्य सेवाएँ जैसे, अनुसन्धान तथा करेंसी और एक्सचेंजका उलट-फेर। इन उपायोंसे विदेशी मिलोंका माल गाँवमें बने माल-से सस्ता पड़ता है। इसलिए केवल इस आधारपर कि विदेशी मिलोंका माल गाँवमें तैयार मालसे सस्ता बिकता है, यह माँग उपस्थित करना उपयुक्त नहीं होगा कि गाँवोंमें हाथसे चलनेवाले

यन्त्रोकी अपेक्षा बड़े पैमानेपर उत्पादन करनेवाली मशीने ज्यादा उपयुक्त हैं। देशमे ही जो कल-कारखाने है उन्हे भी अनेक तरहकी सरकारी सहायता प्राप्त है।

तेलके मिलकी चर्चा करते हुए हमने लिखा है कि पूँजी होनेके कारण मिलको बहुत सुविधा है। यदि गॉवके तेलीको कर्जके रूपमे आसानीसे पूँजी प्राप्त हो जाया करे, यदि अनुसन्धान और खोजका प्रयोग ग्रामोद्योगके उपकारकी दृष्टिसे होने लगे और इससे गॉवके यन्त्रोमे सुधार हो जाय और यदि उनके मालकी खपतके लिए संगठित बाजारोकी व्यवस्था हो जाय—जो सुविधाएँ आज-दिन बड़ी-बड़ी मिलोको प्राप्त है—तो यह निश्चय है कि मिलोंमे तैयार मालसे गॉवोमे तैयार माल किसी भी तरह खर्चीला नही पड़ सकता। आज यदि मिलका माल हाथके बने मालसे सस्ते दरपर बिक रहा है तो इससे यह प्रमाणित नही होता कि हाथसे चलाये जानेवाले यन्त्रोसे मशीनसे चलाये जानेवाले यन्त्र अधिक उपयुक्त है। इससे केवल यही प्रमाणित होता है कि ग्रामोद्योगकी अपेक्षा बड़े-बड़े कल-कारखानोको अनेक तरहकी सुविधाएँ प्राप्त है। ये सुविधाये यदि ग्रामोद्योगको प्राप्त हो जायँ—जो सर्वथा उचित है—तो वहाँ तैयार माल उतना ही सस्ता हो सकता है जितना सस्ता मिलोका माल होता है।

बड़े पैमानेपर उत्पादनके आधुनिक यन्त्रोंको चलानेके लिए मशीनोकी जरूरत पड़ती है जिनमे लोहा, कोयला तथा खनिज तेलकी बहुत ज्यादा खपत होती है। ये सब खनिज प्राकृतिक सम्पत्ति हैं जिनकी आमद सीमित है। एक बार यदि इनका अन्त

हो गया तो उनकी पूर्ति नहीं हो सकती। राष्ट्रके कल्याणके लिये यह परम आवश्यक है कि उनका प्रयोग बड़ी सावधानीसे किया जाय और उन्हे तभी काममे लाया जाय जब दूसरे उपाय-से काम चलनेवाला न हो। ग्रामोद्योगमें लकड़ी, ईंट, मिट्टी आदि सामानोकी आवश्यकता होती है और बैल अथवा हाथसे काम लिया जाता है। ये सब सामग्री ऐसी है जिनकी उत्पत्ति युग-युग समान रूपसे होती रहेगी। कोयला या पेट्रोल एक बार समाप्त हो जानेपर फिर प्राप्त नहीं हो सकेगा लेकिन पेड़ लगाते रहनेसे लकड़ीका टोटा नहीं पढ़ सकता और अपनी आवश्य-कताके अनुसार पशुओका पालन होता रहेगा। इस दृष्टिकोण-से बड़े पैमानेपर उद्योग-धन्धोमे राष्ट्रकी स्थायी पूँजीका ह्रास होता है, इसलिए न तो यह स्थायी हो सकता है और न आर्थिक दृष्टिसे लाभकर। लेकिन ग्रामोद्योग अपनी आमदनीपर ही टिका रहता है, इसलिए इसका स्थायित्व है। इसलिये किसी भी देश-के लिए अन्ततोगत्वा ग्रामोद्योग बड़े-बड़े कल-कारखानोंकी अपेक्षा कहीं उपयुक्त हो सकता है।

(ग) कम-से-कम मजूरीः—गाँवके लोग वाणिज्य-व्यवसायकी दृष्टिसे जो उद्योग-धन्धा कायम करना चाहते है, उसमें इस बातपर दृष्टि रखना अत्यन्त आवशगक है कि उसमे काम करने-वाले कारीगरोको जीवन यापन करने योग्य न्यूनतम मजूरी मिल जाती है। हमारे देशमे कताई एक ऐसा पेशा है जिसमें कम-से-कम मजूरी मिलती है। हालतक कत्तिनको कताईसे प्रति घण्टा एक पैसेसे भी कम मजूरी मिलती थी। यह अवस्था सहन करने योग्य नहीं है। इसलिए गान्धीजीके आदेशसे

अखिल भारतीय चरखा-संघने यह व्यवस्था की है कि आठ घण्टा प्रतिदिन सूत कातनेवालोंको कम-से-कम इतनी मजूरी अवश्य मिल जाय जिससे उसकी रोटीकी समस्या हल हो जाय। इससे खादीका दाम अवश्य चढ़ गया है, लेकिन इसका असर उन लोगोंपर नहीं पड़ सकता जो अपने लिए आप सूत कातेंगे। जो लोग सूत नहीं कातते उन्हे तो कातनेवालोंको उचित मावजा देना ही पड़ेगा। इसे कार्यरूपमे परिणत करनेमे कठिनाईका सामना करना पड़ा था लेकिन इस व्यवस्थासे अनेक प्रान्तो मे अब कत्तिनोंको पहलेकी अपेक्षा तिगुनी मजूरी मिलने लगी है। इसलिए ग्रामोद्योगमे व्यवसायकी दृष्टिसे जो माल तैयार किया जाय उसकी मजूरीमे इसी दृष्टिकोणसे काम लेना होगा।

२—ग्राम अर्थशास्त्रका उत्थान :

(क) वैयक्तिक उद्योगसे पुनर्निर्माणः—

यदि इन सिद्धान्तोंके अनुसार गॉवोमे काम करना है तो हमे यह भी निर्देश कर देना चाहिए कि पुनर्निर्माणका यह काम किस तरह आरम्भ किया जा सकता है। आरम्भमे यह काम वैयक्तिक नियन्त्रणमे जहॉतक सम्भव है, रहेगा क्योंकि राष्ट्रपर हमारा कोई अधिकार न होनेके कारण राज्यसे किसी तरहका सहारा नहीं प्राप्त हो सकता इसलिए इसी ढंगसे जो सम्भव होगा किया जायगा।

१—गाँवका कार्यकर्ता

गॉवोंके पुनर्निर्माणकी पहली आवश्यक चीज गॉवका कार्यकर्ता है। उसमे यह क्षमता होनी चाहिए कि वह अपनेको गॉवके

लोगोंमें मिला दे। अच्छा तो यह हो कि अपनी जीविकाके लिए वह भी गॉववालोंके साथ ही कोई काम उठा ले। उसकी रहन-सहन उन्हींकी तरह हो, उनकी भाषामे ही वह बातचीत करे, और उनके सुख-दुखमें समान रूपसे शामिल रहे। जबतक गॉववालोंको यह विश्वास नहीं हो जायगा कि वह उनका ही एक अङ्ग है तबतक वे उसकी बात कदापि नहीं मानेगे क्योंकि उनके मनमे यही धारणा बनी रहेगी कि वह उनकी मुसीबतोंको समझता नहीं, इसलिए उनकी मदद करनेमे वह असमर्थ है। जिन जनसेवक युवको तथा योग्य महिलाओंमें इस तरहके भाव वर्तमान हो, उन्हे चुनकर गॉवोमे पैदा किये जाने वाली वस्तुओंके उत्पादनकी शिक्षा दी जाय, जैसे सूत कातना, रुई धुनना, पिउनी तैयार करना, कपड़ा बुनना, तेल पेरना, कागज बनाना, मधुमक्खी पालना, खेती करना, गोपाल, पशुपालन, बुनियादी तालीम तथा उद्योग-धन्धोके लायक प्रयोग आदि हिसाब किताब रखना, खरीद बिक्री, सहायक उपाय, ग्रामीण अर्थशास्त्र, सफाई और स्वास्थ्य, खेलकूद, भोजनकी विधि तथा ग्रामोद्योगके सिद्धान्त और अहिंसात्मक समाजका निर्माण। इस तरहकी शिक्षा देनेका काम अखिल भारतीय चरखा-संघ, अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, तथा गोसेवा संघ कर रहे है।

२—गॉवकी भलाई

मनुष्य केवलमात्र धन कमानेका यन्त्र नहीं है वल्कि सजीव मूर्ति है। इसलिए जिन उपायोसे उसकी शारीरिक, मानसिक

तथा चारित्रिक उन्नति होगी, वे सब अप्रत्यक्षरूपसे गाँवोके पुनः सङ्गठनके काममें सहायक माने जायँगे। इसलिए गाँवके कार्य-कर्ताके लिए आर्थिक समस्या प्रधान तथा मानवीय समस्या गौण नही होगी, वलिक यो कहना चाहिये कि ग्रामोद्योगकी इस नयी आर्थिक व्यवस्थामे मानवीय समस्या ही प्रधान है और इसे केन्द्र मानकर अन्य समस्याओका समाधान करना है। इसलिए यह समस्या सबसे प्रधान और महत्वपूर्ण है। वर्तमान समयमे गाँववालोकी हालत नितान्त दयनीय है। वह शरीरसे भी कम-जोर है इसलिए सहजमे अनेक रोगोका शिकार होता रहता है। तेज, शक्ति, सामर्थ्य तथा आकांक्षाहीन व्यक्ति कभी भी उत्तम उत्पादक नही हो सकता, सम्पूर्ण और विकसित मानव तो हो ही नहीं सकता। वह किसी तरह दुर्दिनमे अपना कालक्षेप करता है। इसलिए उसके औजारोको सुधारनेकी अपेक्षा उसे ही सुधारना नितान्त आवश्यक है। गाँवोके पुनर्निर्माणके काममे हमारा लक्ष्य मनुष्य होना चाहिए, न कि केवल भौतिक साधन। लेकिन साथ ही इस बातपर भी ध्यान रखना होगा कि किसी एकको ही लेकर आगे बढ़नेसे हमारा काम नही चलेगा। किसानोसे सम्बन्ध रखनेवाली जितनी भी समस्याएँ हैं, सबका समाधान एक साथ ही और तत्काल होना चाहिए। उसके पानीके जरियो और उसके इर्द-गिर्दकी भूमिको साफ-सुथरा रखना है। उसके साधनोके अनुसार उसकी खुराकमे सुधार आवश्यक है। इधर कुछ दिनोसे वह मिलका कूटा सफेद चावल, महीन आटा और दानेदार चीनीका प्रयोग करने लग गया है। मिलोमे उन्हे साफ करनेके जो तरीके है उससे उनका

पोषक और विटामिन तत्व ही गायब नहीं हो जाता, बल्कि मानव-शरीरके लिए वे हानिकारक हो जाते है। इसलिए उस तरफसे हटाकर हाथसे कूटे चावल, चक्कीमें पीसे आटा तथा गुड़के प्रयोगकी ओर लगाना है। उसके लिए इस तरहकी शिक्षाकी व्यवस्था करनी होगी जिससे वह उत्तम उत्पादक और समझदार नागरिक बन सके। धार्मिक तथा चारित्रिक शिक्षा भी उसे नितान्त आवश्यक है। नशाखोरी, जुआ तथा अन्य बुराइयोंको उससे दूरकर स्वास्थ्यकर तथा निर्दोष विनोदके साथ तथा मन-बहलावकी बातोका उसमें प्रचार होना चाहिए। इसके साथ ही उसे तथा उसकी महिलाओको उन सामाजिक रिवाजोंसे विरत करना होगा जिनसे उसे हानि पहुँच रही है। आर्थिक पुन-र्निर्माणके काममे इन बातोका बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान होगा। इनको अछूता छोड़कर यदि केवल गाँवोके आर्थिक विकासपर ध्यान दिया जायगा तो उससे कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता।

३—आर्थिक योजना

गाँवोंके आर्थिक पुनःनिर्माणके लिए कोई योजना तैयार करनेसे पहले गाँवके बारेमे पूरी जानकारी प्राप्त कर लेना नितान्त आवश्यक होगा, जैसे, गाँवमे जोत-लायक जमीन कितनी है, सिंचाईका क्या प्रबन्ध है, प्रत्येक किसानके औसत खेतोका आकार क्या है, कुल मालगुजारी, टिकस अन्य तरहके कर किस मात्रामे देने पड़ते है. कर्जका बोझ कितना है, सूद किस दरसे देना पड़ता है, आमदनीका क्या जरिया है, सालमें औसत आमदनी क्या होती है, कौन-सी फसल पैदा की जाती है और

किस बाजारमे वेची जाती है। यदि गॉवमे कोई उद्योग-धन्धा चलता है तो यह भी जान लेना जरूरी है कि उनके लिए कच्चा माल कहॉसे आता है। कच्चा माल संग्रह करनेमे किसी तरहका कमीशन देना पड़ता है या नही, उसके लिए कितनी पूँजीकी जरूरत है, पूँजीका क्या प्रबन्ध है, उसके लिए किन औजारोकी जरूरत है, उन औजारोको संग्रह करनेमे कितना खर्च पड़ता है, कितने मजूरोकी जरूरत रहती है, मालकी खपत कहॉ और किस प्रकार होती है, उस उद्योगसे जो कूड़ा-कर्कट निकलता है उसके उपयोगसे कोई दूसरा सहायक उद्योग खड़ा किया जा सकता है या नही। यदि कोई उद्योग मृतप्राय हो या मर चुका हो, उसके सम्बन्धमे यह जानकारी प्राप्त करनी होगी कि उनकी हीन दशा, पतन अथवा अवसानका कारण क्या है, उद्योगमें कितने आदमी काम करते थे और उन्हे क्या आमदनी थी, तथा उनके पुनरुत्थान तथा विकासकी कैसी गुञ्जाइश है। उस गॉवमे जिन मालोकी खपत हो उनका भी अध्ययन आवश्यक है कि वे कहॉसे आते है, और कितनी मात्रामे आते है तथा गॉवमे उनका उत्पादन सम्भव है या नही। इन ऑकड़ोको संग्रह करनेका केवल-मात्र उद्देश्य शिक्षा नही होनी चाहिए। अर्थात् केवल अंक-संग्रह करनेके उद्देश्यसे ही ये ऑकड़े संग्रहीत नही किये जाने चाहिए बल्कि इन्हे इस व्यावहारिक दृष्टिकोणसे संग्रह करना चाहिए कि इनका वर्तमान रूप सुधारनेके लिए क्या उपाय काममे लाये जा सकते है। इसके लिए इनके सम्यक् और पूर्ण अध्ययनकी आवश्यकता नही है। अनुसन्धान और जॉचके समय ही अनेक तरहके सुझाव सामने

आयेंगे, जिनसे मालूम हो जायगा कि सुधार किस प्रकार होना चाहिए। जिन लोगोंके बीच काम करना है उनसे भी इस विषयमें सलाह-मशविरा लेते रहना चाहिए क्योंकि रास्तेमें जो व्यावहारिक कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी उनका पता उनसे चल जायगा। इन कठिनाइयोंको दृष्टिपथमें रखकर गाँवकी समस्त आर्थिक व्यवस्थाके ख्यालसे ही गाँवके लिए योजना तैयार की जानी चाहिए।

पीछे लिखा जा चुका है कि ग्रामीण आर्थिक योजनाका आधार उत्पादनमें विकेन्द्रीकरण तथा उपभोगमें स्वदेशी होना चाहिए ताकि अपनी प्रारम्भिक आवश्यकताकी पूर्तिके लिए गाँव आत्मनिर्भर हो। सम्भव है कि हमारा यह आदर्श सीधे पूरा न हो सके लेकिन हमारा यही उद्देश्य होना चाहिए और जहाँतक सम्भव हो इसे पूरा करनेका यत्न करना चाहिये।

विकेन्द्रीकरण कर देनेपर और एक छोटे गाँवको इकाई मानकर उसके लिए योजना तैयार करना आसान काम हो जाता है। उस तरहकी योजनाको पूरा करनेके लिए गाँववालोंमें पर्याप्त उत्साह दिखायी देगा और वे तत्परताके साथ उसे अपना लेंगे। उन्हें केवल यह ज्ञान होना चाहिए कि यह योजना उनकी अपनी योजना है, किसी अधिकारी वर्ग द्वारा उनपर बाहरसे लादी नहीं जा रही है, जिस अधिकारी वर्गको उनकी अवस्था जाननेकी लेशमात्र भी परवा या चिन्ता नहीं है। इस योजनाको कार्यमें परिणत करनेके लिए बहुत बड़ी पूँजी या मशीनकी भी जरूरत नहीं पड़ेगी, क्योंकि इसे चालू करनेके लिए उनके पास जो साधन मौजूद हैं उन्हींसे काम लिया जायगा और अपने परिश्रम-

से ही वे उसे चालू करेंगे। इसलिए ज्योंही गाँवोंके लोग उसे अपनानेके लिए तैयार हो जायँगे त्यों ही वह चालू कर दी जायगी। बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे या केन्द्रीय उद्योग जो बड़ी-बड़ी मशीनोंके प्रयोगसे ही चालू किये जा सकते है, उनके लिए योजना कई गाँवोंको मिलाकर सहयोगके आधारपर तैयार की जायगी या राज उनकी व्यवस्था करेगा लेकिन उनका आधार जनताकी सेवा होगा। बाकीके लिए गाँवोंका पुनर्निर्माण तथा आर्थिक व्यवस्था निम्न-लिखित तरीकोंसे चालू की जा सकती है:—

४—ग्रामोद्योगके लिए आर्थिक पुनःनिर्माणका कार्यक्रम

गाँवके वे प्रभावशाली और प्रधान व्यक्ति जिन्हे गाँवको आत्मनिर्भर बनानेके काममे सहानुभूति है, चुन लिये जायँ और उनकी एक पञ्चायत कायम कर दी जाय और उनके ही हाथोंमे गाँवके पुनःनिर्माणका काम सौंपा जाय।

दूसरे, गाँववालोंके भोजनकी आवश्यक चीजे, पशुओंके लिए आवश्यक चारा तथा उद्योगके लिए कच्चे मालकी पूरी तालिका बना ली जानी चाहिए। इसके बाद भिन्न-भिन्न फसलोंके उत्पादनका ब्योरा तैयार कर लेना चाहिए। यह काम बहुत कठिन नहीं होगा। उदाहरणके लिए उपयोगी खाद्य-सामग्रीके आधारपर गाँववालोंके भोजनके लिए कितना और किस प्रकारका अन्न चाहिए इसका हिसाब तैयार कर लिया जा सकता है। प्रयोगशालाओंने प्रत्येक बालिग व्यक्तिके लिए पोषक पदार्थके लिहाजसे भोजनकी जो मात्रा निर्धारित की है वह इस प्रकार है—जहाँ प्रधान भोजन चावल है वहाँके लिये: चावल १० औंस, ज्वार ५ औंस, दूध ८ औंस, दाल ३ औंस,

भॉजी ६ औंस, शाक २ से ४ औंसतक, फल २ औंस, घी, मक्खन और तेल २ औंस। इसमे गुड़, नमक तथा मसाला जोड़कर प्रत्येक गॉवमे जितने व्यक्ति हो उनसे इसे गुणा कर देना चाहिए। औरतो और नाबालिग बच्चोका हिसाब लगाकर कुल जोड़मेसे उतनी रकम घटा देनी चाहिए क्योंकि पुरुषोकी अपेक्षा औरतोको केवल ८० फीसदी भोजनकी सामग्री चाहिये और बारह सालतकके बच्चोके लिए पुरुषके भोजनका ४० से ७० सैकड़ेतककी आवश्यकता पड़ती है। इस तरह यह मालूम हो जायगा कि एक गॉवके लिए कुल कितनी खाद्यसामग्रीकी आवश्यकता होगी। इसी तरह पशुओंके चाराका भी हिसाब लगाया जा सकता है। इसके साथ ही इस बातपर भी ध्यान रखना होगा कि खराब फसल होनेपर या फसल न होनेपर पहले सालकी पैदावारसे ही काम लेना होगा, इसलिये उसकी व्यवस्था भी करनी होगी। उद्योग-धन्धोके लिए जितनी सामग्री चाहिए उसे भी जोड़ लेना होगा। बीजके लिए जितने अन्नकी जरूरत होगी उसका हिसाब लगा लेना होगा। मालगुजारी वगैरहका व्योरा भी वैठा लेना होगा तथा गॉवमे जो सामान नहीं तैयार होते या नही तैयार हो सकेगे उनके बदलैनके लिए जो सामान आवश्यक होगा उसे भी जोड़ लेना होगा।

इसके बाद उद्योग-धन्धोंका हिसाब लगाना होगा। सालमे प्रत्येक व्यक्तिके लिए कम-से-कम ३० गज कपड़ेकी जरूरत पड़ेगी। इस हिसाबसे गॉवभरके लोगोके कपड़ेकी आवश्यकताका हिसाब लगा लेना होगा तथा घरके छाजन और इसी तरहकी अन्य आवश्यकताओको ध्यानमे रखकर योजना तैयार कर लेनी

होगी। नीचे लिखी बातोपर विशेष ध्यान देनेकी जरूरत है।

(क) ऐसे उद्योग-धन्धोको न तो आरम्भ करना चाहिए और न प्रोत्साहन देना चाहिए जिसके लिए कच्चे मालके निमित्त गॉववालोको मिलो या दूरके स्थानोपर निर्भर करना पड़े, यदि वे माल गृह-उद्योगो द्वारा वहीं या पासके गाँवोंसे तैयार हो सकते हो। उदाहरणके लिए हाथसे चलाये जानेवाले करघोके लिए मिलके सूतकी व्यवस्था करना उचित नहीं होगा, क्योकि मिलवाला किसी भी दिन अपने व्यवस्थाका विस्तार कर मशीन-से चलनेवाला करघा बैठा सकता है। इस तरह बुनकरके लिए कोई सहारा नही रह जायगा और उसे सूत मिलना असम्भव हो जायगा। लेकिन यदि वह चर्खेपर कते सूतसे काम लेता है, जो उसे गॉववालोसे मिल जाता है तो उसे सूतका टोटा नहीं पड़ेगा। सूतके लिए वह सदा निश्चिन्त रहेगा। अथवा साबुन बनानेका काम ले लीजिए। यदि गॉवका साबुन बनानेवाला विदेशसे आनेवाले कास्टिक सोडापर निर्भर करता है तो युद्ध या अन्य कारणोसे यदि विदेशसे आमद बन्द हो जाय या दाम अत्यन्त बढ़ जाय तो उसकी क्या हालत होगी। लेकिन यदि यह न करके वह देशी सज्जी या इसी तरहके पदार्थका उपयोग करता है तो उसे दूसरोपर निर्भर नही करना पड़ता और वह अपना काम बिना बाधाके चलाता रहेगा।

(ख) गॉवके उद्योग-धन्धोके औजार इसी तरहके होने चाहिए जिनका निर्माण तथा मरम्मत यथासम्भव गॉवमे ही आसानीसे हो जाया करे, क्योकि ऐसा न करनेसे एक तो उनके खरीदनेमें गॉवका बहुतसा धन बाहर चला जाता है और

दूसरे यदि समयपर वे नहीं मिल सके तो उनके उद्योगको भारी नुकसान उठाना पड़ता है। विगड़ जानेपर उनकी मरम्मतके लिए भी दिक्कत उठानी पड़ती है। इसके साथ ही औजारोको गॉवमे तैयार कराने और मरम्मत करानेसे गॉवके वढ़ई, लोहार तथा लकड़ी काटनेवालोको काम मिल जाता है।

(ग) गॉवके उद्योग-धन्धे ऐसे होने चाहिएँ कि उनके लिए वहुत ज्यादा पूॅजीकी आवश्यकता न पड़े क्योकि गॉववालोके पास पूॅजीका सर्वथा अभाव है। उनके पास श्रमका खजाना है, इसलिए गॉवोमे ऐसे ही धन्धे कायम किये जायॅ, जिनमे कम पूॅजी और अधिक श्रमकी जरूरत पड़ती है, जैसे कताई, मधुमक्खीका पालन, तेल पेरना, गुड़ वनाना या इसी तरहके अन्य उद्योग जो लाभके साथ चलाये जा सकते हैं।

(घ) ऐसे उद्योग नहीं कायम किये जाने चाहिए जिनके लिए वहुत अधिक योग्यताकी जरूरत हो, अर्थात् वे उद्योग इतने जटिल न हों कि उनके काम लायक व्यक्ति तैयार करनेमे ही कई महीने लग जायँ वल्कि गॉवका उद्योग ऐसा होना चाहिए कि उसमे अधिक-से-अधिक व्यक्ति लगाये जा सके और वे तुरन्त कमाने लगे।

(च) साधारणतः वे ही माल तैयार किये जायॅ जिनकी खपत वहीं हो जाय। अर्थात् वे ही धन्धे कायम किये जायँ जिनकी आवश्यकता स्वतः गॉववालोको हो। उदार चेता विदेशियोने ग्रामीण जनताकी आर्थिक दशा सुधारनेकी गरजसे गॉवोंमे कुर्सी आदि वनानेके धन्धोका प्रचार किया जिनकी लेशमात्र भी आवश्यकता वहॉके निवासियोंको नहीं है। इस तरहके उद्योग

मौलिक न होनेके कारण उनमे काम करनेवाले आदमियोका लेशमात्र भी विकास नहीं होता क्योकि उन्हे अपनी बुद्धिके प्रयोगका अवसर नहीं मिलता। जैसा नमूना उसे मिल जाता है उसीके अनुसार वह वस्तु तैयार कर देता है। कभी-कभी तो उसे यह भी मालूम नहीं होता कि जो वस्तु वह तैयार कर रहा है वह किस काममे आता है। उसकी मालकी खपतके लिए दूर-दूर बाजार ढूँढ़नी पड़ती है। इस तरह इस तरहके धन्धोद्वारा आत्म-निर्भर होनेकी अपेक्षा उसे तर्ज तथा बाजार दोनोके लिए दूसरों-पर निर्भर रहना पड़ता है। इस तरहके उद्योग खतरनाक और हानिकर हैं, क्योकि इसके लिए उसे ऐसे लोगोपर निर्भर रहना पड़ता है जो उसकी पहुँचसे बाहर है और साथ ही वह स्वतन्त्र और आत्मनिर्भर भी नहीं हो पाता। लेकिन जिस उद्योगके मालकी खपत गॉवमे ही हो जायगी, उस धन्धाको चलानेमे कारीगर अपनी सारी योग्यता लगाकर उसे सम्पन्न करनेका यत्न करेगा ताकि लोगोकी मॉग सन्तोषपूर्वक पूरी हो जाय क्योकि उनकी आवश्यकता और रुचिको वह समझता है। साथ ही मालकी खपतकी उसे चिन्ता नहीं रहती क्योकि बाजार उसके हाथमे है।

गॉववालोके लिए भी यह उपयुक्त नही होगा कि वे मिलो अथवा विदेशोकी आवश्यकताके लिए सामान पैदा करें। ऊख तथा तेलहनकी खेती इसके कटु अनुभव है। अभी हालकी बात है। ऊखकी पैदावार इतनी ज्यादा बढ़ गयी थी कि चीनी-कलवाले उनका पूरा उपयोग नहीं कर सकते थे और खेतोमे ऊख सूख गयी या जला दी गयी। जिन देशोमे हमारे तेलहनकी

खपत होती थी, वहाँ युद्धके कारण तेलहनका जाना बन्द हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि तेलहनके अनेक व्यापारी और उत्पादक बर्बाद हो गये।

इसके अलावा यदि उत्पन्न मालकी खपत स्थानीय नहीं होगी तो गाँवके उत्पादकको दलालो और पोद्दारोंके चंगुलमें फँसना पड़ेगा जो स्थितिसे लाभ उठाकर सारा नफा खुद हड़प जाते है और उत्पादकको कुछ नही बचता या बहुत थोड़ा नफा मिलता है।

(छ) गाँवोंकी आर्थिक दशा सुधारनेका सबसे उत्तम उपाय मालकी खपत है। जो लोग नगरो या शहरोमे रहते है उनकी यही धारणा रहती है कि ग्रामोद्योगके पुनः संगठन द्वारा गाँव-वालोकी हालत सुधारनेके लिए चाहे जो भी यत्न वे करना चाहे, लेकिन चूँकि वे स्वतः गाँवोमे ही नहीं रहते इसलिए वे कुछ नहीं कर सकते। लेकिन यह धारणा एकदम गलत है। उपभोक्ताके नाते उत्पादनके सञ्चालनका उनके हाथमे बहुत बड़ा साधन है। गाँवोंका सुधार चाहनेवाले शहरोके निवासी, जबतक बड़े-बड़े कारखानो द्वारा तैयार मालका उपयोग करते रहेंगे, तबतक वे खुद ग्रामोद्योगपर भीषण प्रहार करते रहेंगे। लेकिन यदि वे यह निश्चय कर ले कि हर हालतमे वे कारखानोंका माल न खरीदकर गाँवोमे बने मालको ही खरीदेंगे, तो इतनेसे ही गाँवोके उत्पादनको पर्याप्त प्रोत्साहन मिलने लगेगा। यह तर्क पेश करना समीचीन नहीं होगा कि गाँवोमे बना माल इतना भद्दा और मोटा होता है कि जबतक उनमे काफी सुधार न हो उन्हे खरीदा नहीं जा सकता, क्योंकि जबतक उनकी माँग और खपत नहीं होगी

तबतक उनका सुधार भी नहीं हो सकेगा। चूँकि उनकी माँग नहीं हो रही है इसलिए वे अच्छे तैयार नहीं होते। हमारे कारीगरोमे वह पुरानी योग्यता, धैर्य और मेहनत आज भी मौजूद है जिसके कारण पुराने जमानेमे उनकी इतनी ज्यादा ख्याति और प्रतिष्ठा थी। यह हम उपभोक्ताओपर निर्भर हैं कि हम उन्हें इस तरहका प्रोत्साहन दें कि उनके वे विशेष गुण एक बार पुनः चमक उठें। यही समय है कि हमलोग इस बातको समझे कि गाँवोके उत्पादनके सुधारके लिए यह आवश्यक है कि हमलोग वहाँके बने मालका प्रयोग करे। यदि हमारे दो रुपया बचा लेनेसे गरीबोकी हालत बिगड़ी रहती है तो उस बचतसे क्या लाभ ? यदि जन-साधारण दरिद्र ही बने रह गये तो एक-न-एक दिन इसका असर धनी उपभोक्ताओपर अवश्य पड़ेगा। इसलिए हमलोगोको यथाशीघ्र यह बात समझ लेनी चाहिए कि हमलोगोके उत्थान और पतनका परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है।

५—सहयोग

यूरोपके कुछ भागमे तथा कुछ दिनोसे चीनमे भी सहयोग आन्दोलनकी जोरोंमे चर्चा चल पड़ी है। आत्मनिर्भर गाँवकी तो एक प्रकारका सहयोग संगठन ही है। यह सहयोग केवल उन लोगोके बीच नही है जो एक ही तरहका पेशा करते है बल्कि उन लोगोके बीच जो एक ही गाँवमें रहते है। पहलेकी अपेक्षा यह सहयोग कही ज्यादा ऊँचे दर्जेका है क्योकि इसका प्रभाव उन लोगोपर पड़ता है जो एक गाँवमे रहते हुए भिन्न-भिन्न

व्यापारमे लगे रहते हैं। यह उन सबको एक सूतमें बाँधकर रखता है और उनके जीवनके सभी अङ्गोंकी देखभाल करता है। इस तरहका सहयोग अस्थायी संगठन नहीं है कि सुविधाके अनुसार जब चाहा उसमे प्रवेश कर गये और जब चाहा उससे अलग हो गये। आज हम अपना काम एक धोबी या नाईसे लेते हैं। यदि उसका काम सन्तोष-जनक नही हो तो हम उसे अलग कर देते हैं और इसके बाद हम उसकी लेशमात्र भी चिन्ता नहीं करते। उसके प्रति हम अपनी किसी तरहकी जिम्मेदारी नहीं समझते। हमारा और उसका यह सहयोग परस्पर लाभके लिए हुआ था और जब उस तरहका लाभ हमें नहीं होता तो हम उससे अलग हो जाते हैं। इस तरहका सहयोग अस्थायी है और उसका उद्देश्य एकमात्र लाभ रहता है। लेकिन ग्रामोद्योगका सहयोग इससे एकदम भिन्न है। उसमे लोग जीवनभरके लिए एक-दूसरेके साथ सहयोग करते है। गाँवका नाई या धोबी जिन्दगी-भर आपकी सेवा करता है और आप उसकी जगहपर दूसरा नाई या धोबी नही नियुक्त कर सकते। जब हमलोग इस तरह स्थायी रूपसे एक-दूसरेसे बँध जाते है तो हमारा सहयोग केवल भौतिक नहीं रह जाता। जीवनके अन्य पहलुओपर भी उसका प्रभाव पड़ता है। हमलोग एक-दूसरेमें दिलचस्पी लेने लगते हैं, एक-दूसरेके परिवारमे, विचारोमे, काम और भावनाओमे और इस तरह हमलोगोंका सहयोग सामाजिक और व्यापक हो जाता है। जिस बन्धनमें हमलोग बँध जाते है वह आर्थिक बन्धन न होकर मानवीय बन्धन होता है।

इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए यह आवश्यक है कि जहाँ-

तक सम्भव हो हमें सहयोगके सिद्धान्तका प्रयोग गाँवोमें करना चाहिए। खेतीको ले लीजिये। वर्तमान समयमे एक किसानके पास औसत खेत ३ एकड़से ज्यादा नही है। वह भी एक जगह न होकर छोटे-छोटे टुकड़ोमे बँटी है और गाँवभरमे फैली हुई है। इसलिए हमे गाँवके मालिकको राजी करना चाहिए कि वह गाँवभरके खेतको एक करके सहयोगके आधारपर खेती करावे। यदि यह सम्भव न हो तो किसानोंको इसके लिए राजी कर लिया जाय कि वे अपने खेतोका बदलैन करके अपने-अपने खेतका एक चक बना लें जबतक खेतो पर व्यक्तिगत अधिकारकी व्यवस्था कायम रहती है, तब तक इसी व्यवस्थाको सर्वोत्तम समझकर खेतोकी चकबन्दी हो जानी चाहिए ताकि किसी किसानके पास छिटफुट खेत न रहे। सहयोग द्वारा ही वीज, सिचाई तथा खाद वगैरहकी व्यवस्था भी हो सकती है।

उद्योग-धन्धोके बारेमे भी हम ऊपर लिख आये हैं कि एक तरहका उद्योग करनेवाले गाँवके सभी लोगोको सहयोग-समिति या व्यवसाय संघमे सम्मिलित हो जाना चाहिए और गाँववालोकी आवश्यकता पूरी करनी चाहिए। ईमानदारीसे काम करना चाहिए और जो कुछ नफा हो उसे आपसमे बराबर बाँट लेना चाहिए।

जिस आर्थिक व्यवस्थाकी हम कल्पना कर रहे है उस आर्थिक व्यवस्थामे प्रत्येक गाँवके एक ही तरहके धन्धोमे लगे लोगोका सहयोग सङ्गठन तो होगा ही पर साथ ही एक ही तरहका धन्धा करनेवाले अनेक गाँवमे रहनेवालोका भी सहयोग-सङ्गठन आवश्यक होगा क्योंकि इसके द्वारा वे अनेक ऐसे

धन्धोंको सुविधानुसार कर सकेंगे जिसे सम्पन्न करना एकाकी किसी भी गाँवके कारीगरोंके लिए सम्भव नहीं होगा। उदाहरण-के लिए कागज बनानेके लिए पल्प या लुगदा तैयार करनेके लिए विद्युत् शक्तिका प्रयोग, चमड़ेके कामके लिए, चमड़ा सिझानेकी केन्द्रित व्यवस्था अथवा बड़े पैमानेपर बर्तन सिझानेका काम। इस तरहके सभी कामोको जनता द्वारा ही सम्पन्न किया जाना चाहिए, राजके हाथमे यह काम नहीं रहना चाहिए। इस तरह-का सहयोग-सङ्गठन अखिल भारतीय चर्खा-सङ्घ है जिसका जाल देशभरमे फैला हुआ है। लेकिन अभीतक वह केवल मात्र कपड़ोका काम कर रहा है अर्थात् सूतकी कताई, कपड़ेकी बुनाई और उसकी बिक्रीमें ही वह व्यस्त है। हालमे ही यह निर्णय किया गया है कि चर्खा सङ्घ भी विकेन्द्रित कर दिया जाय और ग्रामीण जीवनके सभी पहलुओकी देख-भाल वह करे अर्थात् ग्रामीण जीवनके आदिसे लेकर अन्ततककी व्यवस्था वह करे। इससे आशा की जाती है कि चर्खा-सङ्घ गाँवमें सहयोग-सङ्गठनका सञ्चालन समीचीन रूपसे करेगा।

एक ही तरहके धन्धोमे लगे हुए लोगोका सहयोग-सङ्गठन इनके पेशेसे सम्बन्ध रखनेवाली सभी समस्याओकी देखभाल करेगा। हमारे देशके लोग अधिकांश निरक्षर और असङ्गठित है। इसलिए उनके लिए यह सम्भव नही होगा कि वे भिन्न-भिन्न सहयोग-संगठनोंमें भाग ले सके। वे सलाह-मसविदा या पथ-प्रदर्शनके लिए दूसरे सङ्गठनमें जाना पसन्द नही करेंगे। इसलिए उनके लिए यही उपयुक्त होगा कि उनका निजी सहयोग-सङ्गठन ही उनकी सारी समस्याओकी देख-भाल करे।

प्रत्येक धन्धाके सहयोग-सङ्गठनके अतिरिक्त एक केन्द्रीय सहयोग-सङ्गठनका होना अनिवार्य है जो गाँवके सभी सहयोग-सङ्गठनोका सञ्चालन और मेल-मिलाप कर सके। स्वभावतः इस तरहकी केन्द्रीय संस्था ग्राम-पञ्चायत होगी जो अखिल भारतीय चर्खा-सङ्घ, अखिल भारतीय ग्रामोद्योग सङ्घ या बुनियादी तालीमी-सङ्घके किसी कार्यकर्ताकी देख-रेखमे अपना काम करेगी। लेकिन जिस गाँवकी पञ्चायत ऐसी समृद्ध नही है कि इन कामोकी देखभाल कर सके, आरम्भमे जिसकी बहुत अधिक सम्भावना है, ऐसे गाँवोमे कार्यकर्ताओको चाहिए कि ग्रामोत्थान कमेटीकी स्थापना कर लें। इस कमेटीका उद्देश्य यह होना चाहिए कि सहयोग तथा अन्य अध्यवसायोसे वह गाँवका विकास हर पहलूसे करे तथा गाँवकी प्रारम्भिक आवश्यकताको पूरा करनेके लिए गाँवको आत्म-निर्भरताकी ओर ले जायँ जिससे गाँवके लोग अपना सारा प्रबन्ध आपसे-आप कर ले। इस तरहके सङ्गठनो द्वारा हमे गाँवके लोगोको आत्मनिर्भरताके गुणको सिखाना होगा जिससे वे लोग एक-दूसरेके कल्याणके लिए रहना और काम करना सीखें क्योकि अहिंसात्मक ग्रामोद्योग आर्थिक-व्यवस्थाका यही अन्तिम ध्येय है।

६—शिक्षा

उपर्युक्त प्रकारकी आर्थिक-व्यवस्थाकी नींव डालनेके लिए सबसे आवश्यक वस्तु शिक्षा है। लेकिन वह शिक्षा आधुनिक युगकी भाँति किताबी शिक्षा नहीं होनी चाहिए। हमारी शिक्षा-का आधार गाँवका कोई पेशा या धन्धा होना चाहिए, और

उसका प्रभाव बालक-जीवनके सभी अंगोपर पड़ना चाहिए जिससे कि उसके शरीर, मस्तिष्क तथा आत्माका विकास हो और उसकी शारीरिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास हो। गाँवोंमें इस तरहकी शिक्षाका प्रचार किया जाय जिससे बालकोंकी शक्तिका विकास हो और वह अपने दैनिक-जीवनके योग्य बन सके और अपने पड़ोसी, अपने परिवार, अपने ग्राम, अपने पेशेवालो, अपने जिला, प्रान्त, देश तथा अन्तमें विश्वके लिए उपयोगी सिद्ध हो। वर्तमान युगके सभी राष्ट्र—चाहे वे जनतन्त्र हों, फासिस्ट हो या नाजी हो—शिक्षाके महत्वको भली भाँति समझते है और स्कूलोका उपयोग बालकोके मस्तिष्कमें उन भावोके भरनेके लिए करते है जिसे वे उपयुक्त समझते हैं। अहिंसात्मक आर्थिक-व्यवस्थाके लिए—जिसका आधार शारीरिक श्रम है—शिक्षा-प्राप्त मस्तिष्क, अनुशासनयुक्त तथा दक्ष व्यक्तियोकी और भी अधिक जरूरत है। इसलिए गाँवोके पुनर्निर्माणमे ऐसी ही शिक्षाकी अधिक आवश्यकता होगी जो युवकोमे इस तरहके गुणोका समावेश कर सके।

वर्तमान युगमे पूँजीवादी तथा समाजवादी दोनो व्यवस्थामे परिणामपर ही सबसे ज्यादा जोर दिया जाता है। किसी भी योग्य व्यक्तिको उसकी योग्यता या श्रमके लिए पारितोषिक नहीं दिया जाता बल्कि जीवनके विभिन्न क्षेत्रोमे—चाहे वह कला हो, विज्ञान हो या उद्योग-धन्धा हो—उसकी सफलताके लिए पारितोषिक दिया जाता है। कैसा भी योग्य और परिश्रमी व्यक्ति क्यो न हो, लेकिन यदि उसके परिश्रमके फलको जनताने पसन्द नहीं किया तो उसको पूछनेवाला कोई नहीं है और उसका सारा

श्रम बेकार समझा जाता है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो पुरस्कार और प्रशंसाका पात्र वही व्यक्ति है जो अपनी बुद्धिका पूरा प्रयोग और कड़ा परिश्रम करता है लेकिन किसी अनिवार्य कारणवश उपयोगी परिणाम निकालनेमें सफल नहीं होता, न कि वह व्यक्ति जो बिना अध्यवसाय और परिश्रमके ही सफलता प्राप्त कर लेता है। उसने जो परिश्रम किया है उसे व्यर्थ नहीं कहा जा सकता। जहाँतक वह पहुँच सका है उसे आधार बनाकर आगे भी प्रयास किया जा सकता है। दूसरे, परिणाम तो किसीके अपने हाथकी चीज नहीं है। लेकिन किसी काममें बराबर संलग्न रहना और अपने कामसे किसी प्रकार विचलित नहीं होना, जो काम हाथमें हो उसे पूरा करनेके लिए सतत यत्न करते रहना, इसके लिए जिस एकाग्रताकी जरूरत है वह सामाजिक दृष्टिसे बहुत मूल्यवान् है और उसकी प्राप्तिके लिए प्रत्येक व्यक्तिको प्रोत्साहित करना चाहिए। इसके अलावा कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना भी बुद्धिमान् और कुशाग्रबुद्धि क्योंन हो, जबतक श्रम नहीं करेगा सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। इस दृष्टिसे मनुष्यमें अन्तर्हित गुणोंसे श्रमके बिना लाभ नहीं उठाया जा सकता। इसलिए शिक्षामें इसी बातपर ज्यादा ध्यान रखना चाहिए कि व्यक्तिमें ये सब गुण आ जायँ। केवल सफलता उसका मापदण्ड नहीं होना चाहिए।

इसी तरह इस नयी आर्थिक व्यवस्थाकी शिक्षामें सबसे योग्य वही समझा जाना चाहिये जिसमें जनताको संगठित करने तथा लोगोंको मेलजोलसे रखनेकी क्षमता हो और इसके विरुद्ध

जो व्यक्ति धूर्त प्रतीत हो और लोगोमें द्रोह या वैमनस्य फैला सके उसे इससे दूर रखना चाहिये।

पूँजीवादी व्यवस्थामे सामाजिक जिम्मेदारी सम्हालनेकी किसी तरहकी शिक्षा नहीं दी जाती। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कामके लिए जिम्मेदार होता है और उसीके अनुसार उसकी निन्दा या प्रशंसा होती है। इस तरह वह केवल वैयक्तिक जिम्मेदारी समझ सकता है और समाजके प्रति भी उसकी कोई जिम्मेदारी है या समाजका वह एक अंग है, इस बातको वह नही समझता। इसलिए उपाय ऐसा होना चाहिये जिसमे किसी कामके लिए निन्दा या प्रशंसा किसी व्यक्ति विशेषको न प्राप्त हो सके, बल्कि वह समूचा दल या समाज उसका पात्र समझा जाय जिसमें वह रहता है। इसका फल यह होगा कि प्रत्येक व्यक्ति वैयक्तिक जिम्मेदारीका बिचार छोड़कर उस समस्त समुदाय या जमातके लिए अपनेको जिम्मेदार समझेगा।

इसी तरह वालकोकी शिक्षा भी सामूहिक होनी चाहिये अर्थात् उसे इस तरहकी शिक्षा मिलनी चाहिये जिससे वह सबसे अलग होकर नहीं वल्कि लोगोके साथ मिलजुलकर काम करना सीखे। उसे संगठित रूपसे काम करनेकी शिक्षा मिलनी चाहिये। जहाँ वह समाजको अपने साथ लेकर नही चल सकता वहाँ उसे समाजकी वात मानकर चलना सीखना चाहिये। उसे उन लोगोकी आज्ञा माननेकी आदत डालनी चाहिये जो उसके नेताके रूपमें उसके ऊपर तैनात किये गये हों। इन सब कामोके लिए आवश्यक है कि वालकोका दल वनाकर खेलकूद, कवायद अथवा

स्काउटिंगका आयोजन किया जाय और इस तरह उन्हे यह शिक्षा दी जाय।

इस तरहके समाजमे जिसका आधार अहिसा है, इस तरहकी शिक्षाको प्रचलित नहीं होने देना चाहिये जिससे लड़कोमे भय उत्पन्न होता हो क्योंकि भयका सबसे घातक परिणाम यह होता है कि वह साहसका लोपकर लोगोको कायर बना देता है। आजकल मारपीट, सजा, धमकी अथवा परीक्षाके भयसे बालकोसे इस तरहके काम कराये जाते है जिसे वह पसन्द नहीं करता। कोई भी अहिसात्मक समाज बालकोके दिलमे इस तरहके भयको स्थान नहीं देना चाहेगा। क्योंकि अहिसात्मक समाज अपनी जनताको निर्भीक, साहसी, बलवान, मुसीबतोंका धैर्यसे सामना करनेवाला और सहर्ष मृत्युका मुकाबला करनेवाला बनाना चाहता है। इसलिए यदि बचपनसे ही बालकोको निर्भीक बनानेका यत्न नहीं किया जायगा तो उसमे वह गुण नहीं पैदा हो सकते जो एक सच्चे सत्याग्रहीमे होना चाहिये और समाज उससे जो आशा करता है उसकी पूर्ति भी वह नहीं कर सकता। क्योंकि सच्चा सत्याग्रही अपने शत्रुको जीतनेके लिए अपनेको सहर्ष विपत्तिमे डालनेके लिए तैयार रहता है।

ग्रामोद्योगकी आर्थिक व्यवस्थामे शिक्षाका एक दूसरा प्रयोजन भी है। उसे भी सदा ध्यानमे रखना होगा अर्थात् शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे व्यक्तिका दृष्टिकोण सङ्कीर्ण होकर अपने आपतक ही सीमित न रह जाय बल्कि वह व्यापक होकर विश्वभरको अपनावे। ग्रामोद्योगकी आर्थिक व्यवस्थामें गाँववालोके सामने यह प्रलोभन उपस्थित हो सकता है कि वे उन सारे साध-

नोंको अपने सुखके लिए ही सीमित रखें और अन्य लोगोंके लिए परीशान न हों। यह बहुत बड़ा खतरा है और यदि इसे रोकनेकी व्यवस्था न की गयी तो सारे देशमें छोटे छोटे दल कायम हो जायँगे जो अपनेतक ही सीमित रहेंगे। इसलिए इस व्यवस्थामें जिन लोगोंके ऊपर शिक्षाका भार हो उन्हें विविध उपायों द्वारा—जैसे भूगोल, इतिहास, साहित्य, कला, सङ्गीत, तथा धार्मिक शिक्षा, व्याख्यान, यात्रा तथा पीड़ित क्षेत्रोंके लिए सहायता आदिके सङ्गठन द्वारा—बड़े बूढ़े तथा बालकोंके हृदयमें देशप्रेम, जगत-प्रेम तथा समाज प्रेमका भाव भरते रहें और उन्हें यह समझाते रहें कि भाषा, धर्म तथा जातिके भेदभावके रहते हुए भी सारे देशके लोग भाईके समान हैं और सब लोगोंमें सांस्कृतिक एकता है। इसी तरहके शिक्षाके प्रभावसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका भिन्न-भिन्न देश तथा राष्ट्रीयताके निवासियोंमें एकताका भाव भरकर उन्हें अमेरिकाका पूर्ण नागरिक बनानेमें सफल हो सका है। इसी तरह शिक्षा द्वारा अपने देशवासियोंको एक राष्ट्रके रूपमें सङ्गठित करके रखना हमारे लिए कहीं सरल होगा। इसके साथ ही हमलोगोंको उन सङ्कीर्ण राष्ट्रीयताकी भावनाको पनपने नहीं देना होगा जिसका उद्देश्य दूसरे देशोंको पैरोंतले रौंदकर अपने देशको ऊपर उठाना हो या दूसरे देशोंको आपसमें लड़ाकर, अपनी गोटी लाल करना हो। हमलोगोंको सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये कि देशवासियोंके हृदयमें दूसरे देशोंके लिए आदर तथा प्रतिष्ठाका भाव उदय हो।

इन्होंने शिक्षा देनेके अलावा अन्य उपायोंसे भी बालकों तथा बड़े बूढ़ोंकी शिक्षा और जानकारी बढ़ानेका यत्न करते

रहना चाहिये जैसे प्रदर्शिनी, मेला, सङ्गीत-सम्मेलन, धार्मिक सभाएँ, व्याख्यानमाला, पुस्तकालय, पत्र आदि द्वारा। सफाई, स्वास्थ्य, रक्षा, सामाजिक सुधार, गाँवकी रक्षा और सुधार, सांस्कृतिक सुधार आदिकी शिक्षाके लिए पुरुषो तथा स्त्रियोकी अलग-अलग समितियाँ कायम की जानी चाहिये। सङ्कीर्ण साम्प्रदायिकताके लिए इनमे कोई स्थान नही रहना चाहिये और सभी जाति तथा श्रेणीके लोगोके लिए यह खुला रहना चाहिए। इस तरहकी एक गाँवकी समिति इसी तरहकी दूसरे गाँवकी समितिसे मेल-जोल बढ़ा सकती है। भिन्न-भिन्न गाँवोकी समितियोमे इस बातकी प्रतिस्पर्धा भी होनी चाहिए कि नियत समयके भीतर इस तरहका सबसे ज्यादा काम कौन समिति पूरा करती है। आजकल गाँवोमे दलबन्दी, वैमनस्य, जातिभेद, छुआछूत, जातीय सामाजिक रीतिरिवाज, अज्ञानता, रोग तथा गन्दगीका बोलबाला है। इन दोषोको दूर करनेका सबसे उत्तम उपाय गाँववालोका ही सङ्गठित प्रयास होगा। इससे युद्ध करनेके लिए गाँवके प्रत्येक व्यक्तिको उचित रीतिसे शिक्षित होनेकी आवश्यकता है। इसके लिए उपयुक्त शिक्षा उन्हे स्कूलोमे, खेलकूदके मैदानोमे, खेतोमे, कारखानोमे, गाँवकी सभाओमे, खेल-तमाशोमे, मन्दिरो, मस्जिदो, तथा गिरिजोमे मिलती रहनी चाहिए। आर्थिक सङ्गठनकी शिक्षाके साथ-ही-साथ इस तरहकी सर्वतोमुखी शिक्षा उन्हे दी जानी चाहिए और सामाजिक गुणोपर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि हम चाहते है कि हमारे ग्रामीण जीवनमे भी स्फूर्ति पैदा हो और तभी आर्थिक व्यवस्थाका सङ्गठन हो तो हमे यह सब काम तन्मयतासे पूरा करना होगा।

७—महिलाएँ

ऊपर लिखा जा चुका है कि इस नयी आर्थिक व्यवस्थाको स्थापित करनेके लिए शिक्षा तथा सामाजिक आदर्शोंका प्रवेश नितान्त आवश्यक है। इस कामकी सफलतापूर्वक पूर्तिमें महिलाओंका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा। इसका आधार अहिंसात्मक होनेके कारण महिलाओंको यह अपनी ओर अधिक आकृष्ट कर सकेगा। अहिंसात्मक समाजमें ही महिलायें अपनी पूर्ण उपयोगिता सिद्ध कर सकती है और अपनी विशेष योग्यताका पूर्ण उपयोग कर सकती है। हिंसा-प्रधान समाजमें स्त्रियोंका स्थान सदा गौण रहता है क्योंकि पुरुषोकी अपेक्षा वे कमजोर समझी जाती हैं। लेकिन अहिंसात्मक समाजमे नियन्त्रणका आधार शारीरिक वल न होकर चरित्र वल होगा इसलिए स्त्रियाँ सफलतापूर्वक पुरुषोंका मुकावला कर सकती हैं। वल्कि वे पुरुपोसे वढ़कर अपनेको साबित कर सकती हैं, क्योकि पुरुपोकी अपेक्षा स्त्रियाँ कहीं ज्यादा सहनशील, धीर, त्यागी, उदार, धार्मिक तथा अनुशासनप्रिय होती हैं। अहिंसात्मक समाजके लिए इन गुणोंकी सवसे अधिक आवश्यकता है। इस नयी आर्थिक व्यवस्थाको सम्पन्न करनेमे हमलोगोको स्त्रियोंपर वहुत-कुछ निर्भर करना पड़ेगा।

वालकोंके निर्माणमे स्त्रियोका वहुत वड़ा हाथ रहता है क्योकि वचपनका सारा समय स्त्रियोकी देख रेखमें ही वीतता है और यह समय मनुष्य-जीवनका सवसे महत्त्वपूर्ण युग है। यहींपर वालक अपनी मातासे धर्म, सदाचार, कला तथा चरित्र-

की शिक्षा पाता है। बचपनकी शिक्षाका प्रभाव अमिट होता है।

माता या पत्नीकी हैसियतसे पुरुषपर भी उसका प्रभाव नगण्य नही होता। अनेको पुरुष ऐसे मिलेगे जिनके उत्थानका कारण उनकी माताओका प्रभाव है। कितने ऐसे भी मिलेगे जिन्हे उनकी पत्नियोके प्रभावने महान् बनाया है। स्त्रियोसे भलाई और बुराई दोनोका उद्गम हो सकता है। जो स्त्रियाँ अपने प्रभावसे पुरुषको महान् बना सकती हैं, वे यदि चाहे तो अपने प्रभावसे आगे बढ़नेसे रोककर उसे कीचडमे घसीट सकती है। आदमका पतन हौवाके कारण ही हुआ। कम-से-कम बाइबिलमे यही लिखा है। आज भी, पुरुष कितना ही बड़ा सुधारक क्यो न हो, यदि उसकी माता और पत्नी उसके सुधारक विचारोके साथ सहानुभूति नही रखतीं तो अपने घरमे उन सुधारोका प्रचार उसके लिए कठिन हो जाता है। हाथके कूटे चावलको मिलके चावलसे वह कितना ही उपयोगी क्यो न समझे और उसे ही वह क्यो न खाना चाहे, वह अपने मुस्लिम, तथा ईसाई भाईको अपने घरमे भोजन कराना कितना ही उचित क्यो न समझे, स्त्री-शिक्षाका वह कितना बड़ा पक्षपाती क्यो न हो, परदा—प्रथाको समूल नष्ट कर देनेके लिए वह कितना भी व्यग्र क्यो न हो, और जातपाँतकी संकीर्ण प्रथाको मिटा देनेके लिए वह कितना भी आतुर क्यो न हो, लेकिन यदि उसकी माता या पत्नी इसे स्वीकार करनेके लिए तैयार नही हैं तो इन्हे काममे लाना उसके लिए कठिन है। इन कामोंमें उसे तभी सफलता मिल सकती है जब ये लोग उसे स्वीकार कर लें।

परिवारके भोजन, वस्त्र तथा अन्य आवश्यकताओंका भार स्त्रियोंके ऊपर होनेके कारण उपभोक्ताके नाते आर्थिक क्षेत्रमें भी स्त्रियोका व्यापक प्रभाव रहता है। मान लीजिए कि उसे खादी पसन्द नही है और वह खादी न खरीदकर विदेशी या मिलका बना कपड़ा खरीदती है तथा गॉवमें तैयार अन्य चीजोंको न खरीदकर वह ब्रिटिश माल, जापानी खिलौना, जर्मन चाकू, इटलीका आलू, बर्माका चावल, आस्ट्रेलियाका सेब, जेकोस्लावाकियाकी चूड़ियॉ, अमेरिकाके जवाहरात तथा भारतीय मिलोंके सामान जैसे ताताका साबुन, मिलका तेल, चीनी तथा बनस्पति घी खरीदती है। इससे जबतक स्त्रियॉ अपने कर्तव्यको नहीं समझेंगी और अपने पड़ोसी तथा गॉवकी सहायताके लिए जहॉतक सम्भव हो गॉवकी बनी चीजें ही नहीं खरीदेंगी तबतक हमलोग ग्रामोद्योगके कामको कभी भी आगे नही बढ़ा सकेंगे।

आप बालको तथा पुरुषोको भले ही पूर्ण शिक्षित बना लें। लेकिन जब तक आप स्त्रियोकी ओरसे असावधान या उदासीन रहेगे तबतक आपकी हालत नहीं सुधर सकती, आप जहॉके तहॉ पड़े रहेगे। कोई भी समाज अपनी महिलाओकी उपेक्षाकर आगे नहीं बढ़ सकता, उनसे ऊपर नहीं उठ सकता। किसीने ठीक ही कहा है कि एक पुरुषको शिक्षित बनाकर आप एक व्यक्तिमात्रको ही शिक्षित बनाते है लेकिन एक महिलाको शिक्षित बनाकर आप उस परिवारभरको शिक्षित बनाते है। इसलिए बालको और पुरुषोकी शिक्षापर ध्यान देनेकी अपेक्षा लड़कियों और स्त्रियोकी शिक्षापर ध्यान देना कहीं ज्यादा आवश्यक है। इस बातको हमे भलीभॉति समझ लेना चाहिए और स्त्रियोके बीच

शिक्षाके प्रचारके व्यापक प्रयत्नमें लग जाना चाहिए। उन्हें भोजनकी व्यवस्थाकी शिक्षा दी जानी चाहिए, स्वास्थ्यके नियमोंकी शिक्षा दी जानी चाहिए, सफाईकी शिक्षा दी जानी चाहिए, बच्चोंके पालन-पोषणकी शिक्षा दी जानी चाहिए, ग्रामोद्योग, सहायक पेशे और कलाकी शिक्षाके साथ-ही-साथ उन्हें धर्मका वास्तविक मर्म समझाना चाहिए, सदाचार तथा सच्चरित्रताकी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वहमों और कुविचारोंसे उनकी प्रवृत्ति हटे, जातपाँतकी सङ्कीर्णता उनमेंसे दूर हो, और उनके हृदयोंमें भ्रातृभाव, एकता तथा संगठनका भाव उदय हो जिससे समाजकी हालत सुधरे। किसी भी जातिकी सांस्कृतिक रक्षाका भार औरतोंपर ही निर्भर है। यदि हमलोग एक बार भी सफलता पूर्वक इस नयी आर्थिक व्यवस्थाके आधारपर अपनी संस्कृतिका ज्ञान उन्हें करा दें तो वे लोग इसके प्रचारमें पूर्ण योगदान देंगी और भावी सन्तानको उसका ज्ञान कराती रहेंगी।

८—धर्म या मजहब

ग्रामोद्योगके पुनःनिर्माणमें धर्मका भी बहुत बड़ा हाथ है। हमारे ग्रामीण जीवनकी धार्मिक परम्परामें—चाहे वह सनातन हिन्दू धर्म हो, इस्लाम धर्म हो, या ईसाई धर्म हो—बहुत बड़ा खजाना भरा पड़ा है जिसका उपयोग हमलोग भलीभाँति कर सकते हैं। उसकी ओरसे उदासीन रहना उचित नहीं होगा। जब कोई सुधारक जनताकी धार्मिक विचारधाराके साथ मिल जाता है तो वह अतीतका इस तरहका प्रभाव उत्पन्न करनेमें समर्थ होता है जिनकी सहायतासे बड़े-बड़े काम हो सकते हैं।

गाँधीजीकी सफलताका यही रहस्य है। उन्होंने सत्य, अहिंसा, यज्ञ, तपस्या, कर्म तथा निष्कर्म और भक्ति आदि पुरानी धार्मिक भावनाओंको नया रूप देकर खड़ा किया है। सदियोंसे समाज इनकी महत्ता और श्रेष्ठता स्वीकार करता चला आया है। महात्माजीने उन्हीं प्राचीन धार्मिक विचारोंकी वर्तमान युगके अनुकूल व्याख्यामात्र कर दी है। इस तरह उनकी सहायतासे उन्होंने इस देशमें नया युग उपस्थित कर दिया है। उन्होंने उन-लोगोंका अनुकरण नहीं किया जो पश्चिमी सभ्यता और शिक्षा-के रंगमें अपनेको रँगकर अपने तथा जनताके बीच ऐसी गहरी खाई पाते हैं कि जिसे पारकर जनताके पास पहुँचना उनके लिए असंभव है और इसलिए वे उनका नेतृत्व नहीं कर सकते। गांधीजीने उन भावनाओंके अन्दर प्रवेश किया जो सदियोंसे जनताके हृदयोंमे निहित हैं और उनके जीवनका अंग बन गयी हैं और उन्हे अपने जीवनमे व्यावहारिक रूपमे उतारा। यही कारण है, जनता उनकी ओर आकृष्ट हो गयी और आँख मूँद-कर उनका अनुयायी बन गयी। इसलिए जो व्यक्ति गाँववालोंके धार्मिक जीवनमे प्रवेशकर उनका पुनरुत्थान करना चाहता है उसके हाथमे अमोघ शक्ति आ जाती है। उसे केवल रीति रिवाज, धार्मिक कृत्य तथा अन्य सामाजिक व्यवहारों और आचरणोंके बाहरी रूपसे हटकर उसकी आत्मामें प्रवेश करनेकी आवश्यकता है। तब वह देखेगा कि उनमे अहंकाररहित, निःस्वार्थ सेवाका कितना विशाल भाव मौजूद है, जहाँ संकीर्णताके लिए कोई स्थान नहीं है। सभी धर्मोंकी शिक्षाका यही मूलमंत्र है।

जिस तरह महात्मा गांधीने किया है उसी तरह यदि इसी

तरहकी धार्मिक भावना लेकर हम देहातोमें काम करना आरम्भ करें तो निश्चय ही सत्य और प्रेमकी स्थापना करनेमे हम समर्थ होगें। इस नयी अर्थिक व्यवस्थामे हमे सत्य और अहिसा दोनोकी समान रूपसे आवश्यकता होगी। इन्हे आधार बना लेनेपर हमारे निर्माणका काम पूर्णरूपसे सुरक्षित रहेगा। उसी अवस्थामे लोगोका धार्मिक जीवन, धर्म ग्रन्थोके प्रति उनका अनुराग, नियम, निष्ठा, विधान, रीतिरिवाज, उपवास, व्रत तथा भोज आदिका झुकाव इस तरह किया जा सकता है जिससे सबका कल्याण हो सके। एक कट्टर धार्मिक व्यक्ति किसी अछूतके हाथका भोजन या अग्राह्य भोजन जैसे मांस वगैरह खानेकी अपेक्षा भूखो मर जाना ज्यादा पसन्द करेगा। सिद्धान्तोके प्रति इतनी दृढ़ और कट्टर प्रवृत्ति—जिसमे प्राणतक दे देना सहज है—का झुकाव समाजके कल्याणकी ओर किया जाना अर्थात् लोग वही वस्तु इस्तेमाल करे जो उनके पड़ोसमें पैदा हो, वही अन्न ग्रहण करे जो उनके पड़ोसी या वे खुद उत्पन्न करे, कितना लाभदायक होगा! इस तरह पुरानी प्रथासे नवजीवनका सञ्चार होगा और कही कही नये जीवनका प्रकाश नये रूपसे होगा और सामाजिक व्यवहारोपर धर्मकी मुहर लग जायगी।

इतने बड़े कामको सम्पन्न करनेके लिए यह आवश्यक है कि गॉवका कार्यकर्ता सत्य और अहिसाका कट्टर पुजारी हो। इतना ही नहीं, बल्कि हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई धर्मकी शिक्षाके अनुसार उसे निस्पृहताकी शिक्षा दी गयी हो क्योंकि स्वार्थका भाव आते ही सत्यका गला घोट दिया जाता है और अहिसा कोसों दूर भाग जाती है। यही कारण था कि

प्राचीन युगमें जिन ब्राह्मणोंके हाथमें जनताके आर्थिक विकासका भार सौंपा जाता था, उन्हें सांसारिक आवश्यकताकी जिम्मेदारियोंसे बरी कर दिया जाता था, उसकी दैनिक आवश्कताकी पूर्ति दूसरे लोग करते थे। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि राष्ट्रके निर्माताको राष्ट्रीय भिखारी, नङ्गा फकीर होना चाहिये और इसका पालन पूर्ण रूपसे होना चाहिये। जबतक इस तरहके व्यक्ति जो सत्य और अहिंसाके सच्चे पुजारी हों, कार्यकर्ताके रूपमें प्रकट नहीं होगे, तबतक राष्ट्र-निर्माणका कोई भी काम स्थायी नहीं हो सकेगा, निर्माणका जो भी काम किया जायगा वह कच्चा होगा और कभी-न कभी, वह ढह जायगा। भारतका प्राचीन गौरव इसीमें था और यही शिक्षा उसे संसारको देनी है। आर्थिक पुनरुत्थानकी बड़ी-बड़ी व्यवस्थाएँ जिनके द्वारा देशकी जनताको हर तरहका भौतिक साधन और सुख प्रदान करनेकी व्यवस्था की जा रही है, सत्य और अहिंसाके प्राचीन सिद्धान्तोंके अभावमें, हमारा उपकार नही कर सकतीं; बल्कि हमे अनन्त दुख और यातनामे ढकेल देंगी। यदि हम अपने देशवासियोका आर्थिक जीवन दृढ़ भित्तिपर खड़ा करना चाहते है और उनमे ऊँचे विचार और व्यवहारका भाव भरना चाहते हैं तो हमारे लिए यह परम आवश्यक है कि हम उनमे धार्मिकता, निस्वार्थता तथा दूसरोके प्रति उदारताका भाव भरें। इसके विना हमे स्थायी शक्ति नही प्राप्त हो सकती। ग्रामोद्योग तथा अन्य आर्थिक पुनरुत्थानकी योजनाओंमे यही सबसे बड़ा अन्तर है। ग्रामोद्योग धर्म तथा सदाचारको जो महत्व प्रदान करता है वह किसी भी अन्य आर्थिक योजनामे नहीं पाया जाता। इस प्राचीन

धार्मिक सिद्धान्तपर ग्रामोंके निर्माणका फल यह होगा कि सह-योग, एक दूसरेपर निर्भर रहनेका भाव, एक दूसरेकी सहायता करनेका भाव तथा दूसरोंके परस्पर सहयोगकी शिक्षा प्राप्त कर लेनेपर वे स्वभावतः विस्तृत दायरेमें इसका प्रयोग सीखेंगे और इसका उपयोग राष्ट्र तथा विश्वके कल्याणके लिए निश्चय रूपसे करेंगे।

(ख) राजकी सहायतासे पुनरुत्थान :—

यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं है कि किसी भी देशके आर्थिक जीवनका उस देशके राजनीतिक जीवनके साथ अटूट सम्बन्ध है। किसी भी अधीन देशके लिए तो यह और भी लागू है। इसका प्रधान कारण यह है कि विदेशी सरकारका सारा अध्यवसाय अधीन देशको अपने लाभके लिए काममें लाना है। इसलिए अधीन देशका सारा भविष्य इस बातपर निर्भर करता है कि उस देशके सम्बन्धमें विदेशी सरकारकी क्या नीति होगी। जिस किसीने भारतके आर्थिक पुनरुत्थानपर गौरसे विचार किया है उसे यह बात प्रत्यक्ष हो जाती है कि देशकी वर्तमान अवस्थामें उसे उन विरोधी तत्वोंका मुकाबला करना पड़ता है जिनपर न तो किसी व्यक्ति विशेष या सङ्गठनका किसी तरहका नियन्त्रण है—खासकर जहाँतक जमीन और कृषिका सम्बन्ध है। यही कारण है कि व्यक्तिगत हैसियतसे हम-लोग जनताकी आर्थिक दशा सुधारनेके लिए जो कुछ कर सकते हैं, उसकी चर्चा करते हुए हमने कृषिके पुनरुत्थानके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा है, यद्यपि हमारे देशके राष्ट्रीय जीवनके लिए

यह सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। हमारे देशके कृषिके उत्थान तथा उद्योग-धन्धोंके पुनरुत्थानके लिए सरकारी सहायताकी अनेक अंशोंमे बहुत अधिक आवश्यकता है। इसलिए इनमें व्यापक परिवर्तन करनेके लिए सरकारकी सहायता प्राप्त करना नितान्त जरूरी है। हम यहाँ कुछ स्थूल विषयोंका ही उल्लेख कर देना चाहते हैं क्योंकि जबतक हम लोगोंकी वर्तमान राजनीतिक दशा कायम रहती है तबतक इन बातोंको सदा ध्यानमें रखनेकी आवश्यकता होगी :—

१—खेतोंकी नवैयत तथा मालगुजारीमें इस तरहके उलट-फेर, परिवर्तन और सुधार करना आवश्यक है जिससे किसानोंकी आमदनी बढ़ जाय। खेतोंके वर्गीकरणकी कोई निश्चित और स्थिर योजना होनी चाहिए और मालगुजारीका भी कोई न्याय-पूर्ण समान आधार होना चाहिए। मालगुजारी गल्लेके रूपमें अदा करनेकी सुविधा होनी चाहिए।

२—सिंचाईकी सुविधाजनक व्यवस्था होनी चाहिए। खेतोंकी उर्वरा-शक्तिको नष्ट होनेसे बचानेकी व्यवस्था होनी चाहिए। ऊसर भूमिको खेती-लायक बनाया जाना चाहिए।

३—बीजोंके सुधारके लिए, खेतोंको उर्वर बनानेके लिए, खेतीके तरीकोंमें सुसार लानेके लिए, खेतोंके औजारोंको सुधारने के लिए प्रयोगशालाओंकी स्थापना होनी चाहिए और जहाँ सम्भव हो, नये उद्योग-धन्धे कायम किये जाने चाहिए।

४—जङ्गल-कानूनमें इस तरहका सुधार होना चाहिए जो कि गाँववालोंके अनुकूल हो, सरकारी जङ्गलोंका इस

प्रकार नियन्त्रण और प्रबन्ध होना चाहिए, ताकि गॉवके उद्योग-धन्धोंको उनसे लाभ पहुँचे।

५—देशके खनिज पदार्थोंका सङ्ग्रहकर राजको गॉवके उद्योग-धन्धोमे काममें उन्हे लाना चाहिए। उन्हें विदेश नही जाने देना चाहिए।

६—किसानोके ऊपर कर्जका बोझ इतना भारी हो गया है कि वे उसके भारसे वे दबते जा रहे हैं। उसे इस प्रकार घटा देना चाहिए और उसे चुकानेकी ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे किसानोंको भी राहत मिले और महाजनकी भी क्षति न हो।

७—किसानोंको सुविधाके साथ आसानीसे कर्ज मिलता रहे।

८—इस बातपर ध्यान रखना चाहिए कि किसानोंके ऊपर कर, म्युनिसिपल तथा जिला बोर्ड अथवा मालगुजारीके करका बोझ इतना ज्यादा नही लाद दिया जाता कि उनका आर्थिक जीवन कष्टमय और विपन्न हो जाता है और उनकी आर्थिक दशा इस तरह क्षीण हो जाती है कि वे कर देने लायक नही रह जाते।

९—राजको चाहिए कि गॉवोमे तैयार मालको खरीदकर ग्रामोद्योगको प्रोत्साहन दे, उसे मिलनेवाले सस्ते मालकी ओर ध्यान नही देना चाहिए। ऐसा न करनेसे राज अपने नागरिकोमे बेकारी बढ़ानेके दोषका भागी होगा और इस तरह वह उनकी कर देनेकी योग्यताको क्षीण करेगा जिस करकी आमदनीपर उसको निर्भर रहना है।

१०—ग्रामोद्योगको प्रोत्साहन देनेके लिए राजको कल-कारखानोमे तैयार मालपर इस तरहका कर या चुङ्गी बैठा देना

चाहिए जिससे ग्रामोद्योगके माल बाजारोंमें कल-कारखानोंके मालका मुकाबला कर सके। वर्तमान अवस्था यह है कि कल-कारखानोंको हर तरहका संरक्षण मिलता है और ग्रामोद्योगको अपने भाग्यपर छोड़ दिया जाता है।

११—गाँवके उत्पादकोंको सहायता प्रदान करनेकी दृष्टिसे ही एक्सचेंजका अनुपात स्थिर किया जाना चाहिए। मुद्रणनीति और देना पावनाका भी यही उद्देश्य होना चाहिए।

१२—गाँवोंमें उत्पन्न मालका वर्गीकरण और हैसियत स्थिर करना तथा बिक्रीका प्रबन्ध दक्षों द्वारा कराया जाना चाहिए।

१३—माल बाहर भेजनेकी हर तरहकी रेल, सड़क तथा किराया आदिकी पूरी सुविधा प्रदान की जानी चाहिए।

१४—बालिगोंकी शिक्षाका प्रबन्ध होना चाहिए। गाँवोंमें आरम्भिक अनिवार्य शिक्षाका प्रबन्ध होना चाहिए और उसमें प्रमुख स्थान कारीगरी तथा कृषिको मिलना चाहिए।

१५—गाँवोंमें चिकित्साका पूरा प्रबन्ध होना चाहिये।

ऊपर जिन उपायोंका वर्णन किया गया है उनकी व्यवस्था कर राज गाँवोंमे नवजीवनका संचार कर सकता है। इसके प्रतिकूल जबतक वर्तमान अवस्था कायम रहेगी और इसमें परिवर्तन लानेका कोई यत्न नहीं किया जायगा, ग्राम-सुधारोंका सारा प्रयास व्यर्थ जायगा, उससे कोई विशेष लाभ नहीं हो सकेगा क्योंकि गाँवके उत्पादकोंको आज जिन असुविधाओं, दिक्कतों और कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, उनमेंसे अधिकांश राजकी नीतिके कारण वर्तमान हैं और जबतक राजकी ओरसे उन्हें दूर करनेका प्रयास नहीं किया जायगा तबतक वे दूर नहीं

हो सकेगी। वर्तमान अवस्थामे गाँवोकी आर्थिक दशामें सुधार करनेका प्रयत्न अपना दोनो पैर बाँधकर दौड़नेके प्रयत्नके समान होगा। लेकिन इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हमे मन मारकर तबतक बैठ रहना चाहिए जबतक राजकी नीतिमे किसी तरहका परिवर्तन न हो। हमारे देशके किसानोकी दशा इतनी दयनीय है कि किसी तरहकी दीर्घसूत्रता उसके लिए घातक सिद्ध होगी। इन कठिनाइयो और बाधाओंके रहते हुए व्यक्तियो और संस्थाओंको यथासाध्य उनके उत्पादनका काम करना चाहिए। चूँकि उनकी वर्तमान दुरवस्था तथा गिरानीका प्रधान कारण प्रतिस्पर्धापूर्ण आर्थिक व्यवस्था है जो हमारी संस्कृति तथा सभ्यताके प्रतिकूल है, इसलिए हमे उन्हे यह सिखलानेकी आवश्यकता है कि वे इस प्रतिस्पर्धापूर्ण आर्थिक नीतिको त्याग दें और सहयोगपूर्ण आर्थिक नीतिको अपनावे। वे अपनी आवश्यकताकी पूर्तिको दृष्टिमे रखकर माल तैयार करें और उसी मालका उपयोग करें जिसे वे खुद या उनके पड़ोसी तैयार करते है।

ख—राजनीतिक पहलू

१ — ग्रामोद्योगका राजनीतिक जीवन ही सच्चा लोकतन्त्र :

ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्थामे जनताके राजनीतिक जीवनमे घोर क्रान्ति हो जायगी। विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्थाका मतलब है विकेन्द्रित राजनीतिक संगठन। प्रत्येक गाँवकी एक अलग दुनिया होगी, जहाँ उसकी आवश्यकताकी सारी चीजे वहीं उत्पन्न की जायँगी। इसलिए प्रत्येक गाँवका शासन भी गाँवके

उन्न चुने हुए व्यक्तियों द्वारा होगा जो सबके विश्वासपात्र और आदरके पात्र होंगे। गॉवके ही होनेके कारण गॉवकी हालतसे वे भलीभॉति जानकार होगे और गॉवकी समस्याओको वह अच्छी तरह समझ सकेगे। उन्हे सदा इस बातकी चिन्ता बनी रहेगी कि उनका गॉव उन्नति करे और फलेफूले। गॉवकी प्रबन्धकी सारी जिम्मेदारी उनके ही ऊपर रहेगी। शासन और प्रबन्धकी सारी जिम्मेदारी भी गॉवतक ही सीमित रहेगी। गॉवके बाहरकी सरकार तथा केन्द्रीय सरकारका काम, वैदेशिक मामलोकी देखभाल तथा उन उद्योग धन्धोका प्रबन्ध करना होगा जिनसे गॉववालोको सहायता प्राप्त होगी। इसके अलावा वे सार्वजनिक हितके कामोको देखेगे, तथा देशके प्राकृतिक साधनोको इस प्रकार नियन्त्रणका प्रबन्ध करेगे ताकि उससे गॉववालोको लाभ पहुँचे तथा वे एक दूसरेके साथ सम्बन्ध जोड़नेवाली संस्थाके रूपमे काम करे। केन्द्रीय सरकारके जिम्मे जिन कामोका निर्देश किया गया है नमेसे प्रथम तीन काम गॉवके लोग भी यदि चाहे तो सहयोग समितिद्वारा स्वयं कर सकते हैं।

वास्तविकता तो यह है कि अभी हालतक भारतके गॉव आत्मनिर्भर इकाईके रूपमे थे। उनकी इस अवस्थाका अन्त ब्रिटिश सरकारकी नीतिके कारण हुआ, क्योकि वे अधिक-से-अधिक मालगुजारी प्राप्त करना चाहते थे। इसके लिए उन्होने गॉवकी इकाईको तोड़कर प्रत्येक किसानके साथ बन्दोबस्त करना अपने लिए उपयोगी समझा। विदेशी शासक होनेके कारण उसने ह-उद्योगकी उपयोगिता न तो समझी और न उसपर कोई ध्यान दिया और उसने उसे निर्दयताके साथ कुचल दिया।

इसके साथ ही जनताके हाथ इतना ज्यादा अधिकार रहने देना भी उसे अभीष्ट नहीं था। इसलिए उसने ग्राम-पञ्चायतको तोड़ दिया और गॉववालोके चुने प्रतिनिधि ग्राम-पञ्चायतो द्वारा जो मुकदमा और शासनका काम करते थे उसे अपने हाथमे ले लिया और इस तरह देशसे लोकतन्त्र शासनकी जड़ ही नष्ट कर दी। ग्रामोद्योग द्वारा हमलोग जो काम करना चाहते है, वह हमारे देशके लिए नया नहीं है, बल्कि प्राचीन कालसे ही हमारे देशमे चला आता है इसलिए हमलोग किसानोको सहजमे इस योग्य बना सकेगे कि अपनी पञ्चायतें कायम करके वे अपने गॉवका प्रबन्ध स्वयं करे।

प्रत्येक गॉवसे सम्बन्ध रखनेवाला सारा काम-काज पञ्चायतो द्वारा होगा—जैसे, लोगोमे खेतोका बॅटवारा, सरकारको देनेके लिए लोगोसे मालगुजारी वसूल करना, काम, व्यवसाय, उद्योग, पूॅजीका विभाजन, सङ्गठन, सहयोग समितियोका निरीक्षण, शिक्षा, सफाई, स्वास्थ्य, जेलकी व्यवस्था, रोशनी, सार्वजनिक भवनोका निर्माण तथा निरीक्षण, सड़के, आमोद-प्रमोद तथा इस तरहकी अन्य बाते। इन कामोमे जो व्यय होगा उसके लिए वह निम्नलिखित जरियोसे पूरा करेगा—(१) गॉवसे गल्लेके रूपमे जो मालगुजारी मिलेगी (२) भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्राप्त शुल्कोसे, (३) नियमादि भंग करनेके कारण आर्थिक दण्डसे, (४) विवाहादि शुभ अवसरोपर प्राप्त दान तथा चन्दा आदिसे। सार्वजनिक हितके कामोके लिए, जैसे सड़क, कुआॅ आदिके बनानेके लिए गॉवके लोग सालमे कुछ दिन बेगारके रूपमे काम करेगे।

अपनी सीमाके अन्दर पञ्चायत मुकदमोंपर विचार और फैसला करेगी और शान्तिकी सुव्यवस्था कायम करेगी। शासनकी ईकाई छोटी होनेके कारण शासनकी सहायताके बिना ही गाँवके लोग ही उपद्रवी लोगोंपर नियन्त्रण रख सकेंगे। गाँवके प्रत्येक लोग एक दूसरेको जानते रहेगे। इसलिए किसीको इस बातका साहस नही होगा कि वह अपराध करे या गाँवकी इच्छाके खिलाफ चले। इस तरहके समाजमे अहिंसाका व्रत न लेनेपर भी अमन-चैन कायम रखनेके लिए सेना और पुलिसकी बहुत कम जरूरत पड़ेगी। इसके साथ ही सामाजिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियाँ भी प्रच्छन्नरूपसे अपना काम करेंगी और लोग समाजके स्वार्थके विरुद्ध कोई काम नही करेगे और लोग अपनी शक्तिका उपयोग गरोहके कल्याणके लिए करेंगे। लोगोंको समाजके कल्याणके लिए अपने मनसे काम करनेके लिए यह उपाय बहुत अच्छा होगा। उसके सामने बल तथा दण्डका भय उपयोगी सिद्ध नहीं होगा। गाँवके प्रत्येक व्यक्तिके जिम्मे नियत काम रहेगा, उनकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए उन्हें पर्याप्त आमदनी होती रहेगी, सम्पत्ति तथा मर्यादामे बहुत बड़ा अन्तर नहीं रहेगा, इससे सभी लोग सन्तुष्ट होगे। इसके बावजूद भी यदि उपद्रव और अशान्ति हुई तो वह सार्वजनिक हित चाहनेवाले युवकों द्वारा शान्त कर दी जायगी। इस तरहके युवकोको अहिंसात्मक उपायो द्वारा उपद्रव तथा दङ्गा-फसाद रोकनेकी शिक्षा दी जायगी। जिस वक्त उपद्रवियोके सामने अहिंसाव्रतधारी ये जनसेवक युवक उपस्थित होगे, और उनका मुकाबला करनेमे अपने प्राणोको उत्सर्ग

कर देनेका इरादा प्रगट करेंगे, और उनकी शिकायतोंको शान्त चित्तसे सुनने तथा उन्हें दूर करनेके लिए तैयार रहेंगे, तो इस तरहसे उपद्रवोंको शान्त करना कठिन नहीं होगा। डाकुओं तथा हत्यारोंका मुकाबला करनेके लिए अहिंसाव्रतधारी युवकोंको शिक्षा देकर तैयार करना होगा। बदलैनके आधारपर स्थित आर्थिक व्यवस्थामें इस तरहके अवसर कम ही उपस्थित होंगे। इस व्यवस्थामें रुपयोंकी आवश्यकता बहुत कम पड़ेगी, सोना चाँदीका मूल्य बहुत अधिक नहीं होगा। आभूषण भी ऐसी ही चीजोंके बनेंगे जो सहजमें प्राप्त हो सकें और जिनसे सजानेका काम पूर्णतया चरितार्थ हो सके, जैसे रंगीन पत्थर, शीशा, लकड़ी या लाह या पेण्टसे ढकी मिट्टी। यदि डाकू गल्ला या अनाज लूटनेके उद्देश्यसे आवेंगे तो उस गाँवके लोग अपने यहाँके चुने हुए लोगोंको डाकुओंके गाँवमें भेज देंगे और उन्हें अपनी आवश्यकताकी चीजें पैदा करना सिखला देंगे। यह काम गाँववालोंके लिए आसान होगा। जब प्रत्येक गाँवमें उत्पादनका उद्देश्य गाँवकी आवश्यकताकी पूर्ति होगा, और नफा कमानेका उद्देश्य नहीं रहेगा, तब ऐसी हालतमें किसी गाँवको अपनी सफलताके रहस्यको छिपाकर रखनेसे कोई लाभ नहीं होगा। इस तरह अपने सारे आवश्यक कामोंके लिए प्रत्येक गाँव आत्मनिर्भर होंगे।

इससे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि सारी दुनियासे आँखें बन्दकर वे कूपमण्डूक बन जायँगे। यदि वे चाहें भी तो यह सम्भव नहीं है। अपने ही आर्थिक जीवनके लिए उन्हें पड़ोसके गाँवोंमें तथा अन्य प्रान्तोंके साथ सहयोग करना पड़ेगा, जैसा

ऊपर लिखा जा चुका है क्योंकि जिन बातोंका सम्बन्ध पड़ोसी गाँवों, जिलों, प्रान्तो तथा देशसे होगा, उसके लिए जिला, प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय शासन होगा। गाँवके लोग जिला-शासनके लिए अपना प्रतिनिधि चुनेंगे, जिला-शासन-समिति प्रान्तके लिए तथा प्रान्तीय शासन-समिति, राष्ट्रीय शासन-समितिके लिए प्रतिनिधि चुनेगी। प्रत्येक शासन-समितिके लिए एक अध्यक्ष होगा जो प्रधान शासकका काम करेगा। केन्द्रीय शासन-समितिके जिम्मे बहुत थोड़ा काम रहेगा। वह प्रत्येकके साथ सहयोग स्थापित करने तथा वैदेशिक मामलोंकी देख-रेख करेगी। देश-का वास्तविक शासन प्रत्येक इकाईके हाथमें रहेगा।

वर्तमान युगमे केन्द्रित आर्थिक व्यवस्थाके कारण सभी बाते इसके प्रतिकूल है। वर्तमान युगमे आर्थिक व्यवस्थाका उद्देश्य केन्द्रित शासन-प्रणालीकी ओर है। इस व्यवस्थाके अनुसार सभी दलोंका सुधार और शासन केन्द्र-द्वारा ही होता है। इस तरह केन्द्रित होनेके कारण और सार्वजनीन व्यवस्था होनेके कारण किसी भी समस्याका निपटारा उचित रीतिसे नहीं हो पाता। जो योजना तैयार की जाती है वह प्रत्येक व्यक्तिके अनुकूल नहीं होती। इसलिए उन्हे कार्यमे परिणत करनेके हेतु बहुत अधिक अफसरों और कर्मचारियोंकी जरूरत पड़ती है, जो बलका प्रयोगकर उस व्यवस्थाको समान रूपसे समस्त देशमे चालू करे। इस व्यवस्थाके अनुसार जो सङ्गठन कायम होता है वह बहुत बड़ा और सँभालके बाहर हो जाता है और उसकी प्रगति बहुत ही मन्द होती है। इस व्यवस्थाके अनुसार केन्द्रमे चन्द लोगोंके हाथमे बहुत ज्यादा अधिकार चला जाता है, केन्द्र तथा गाँवोंके

बीच इतना बड़ा अन्तर है कि गॉववालोकी आकांक्षा और आवश्यकताकी बाते उनतक पहुँच नही पाती, यद्यपि वे उन्हींके चुने प्रतिनिधि होते है और जायज या नाजायज तरीकेसे वोट प्राप्तकर केन्द्रके सदस्य बन जाते है। इसलिए जिस व्यवस्थामे गॉवोका शासन केन्द्रीय सरकार द्वारा होता रहेगा—चाहे वह शासन पश्चिमी लोकतन्त्र शासनके आधार-पर बनी लोकतन्त्र सरकार ही क्यो न हो—वह शासन निरङ्कुश होगा। उस शासनमे गॉवोका स्वतन्त्र विकास सम्भव नही है, और जनताका सच्चा शासन उसके द्वारा पङ्गु ही बना रह जायगा जो जनता द्वारा, जनताके कल्याणके लिए ही कायम होगा।

आज पश्चिमी देशोकी क्या हालत है। सच्चा लोकतन्त्र शासन उसे नही प्राप्त होरहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि सच्चा लोक-तन्त्र शासन कायम करनेके लिए वह जितना ही यत्न करता है, सच्चा लोकतन्त्र शासन उससे उतनाही दूर हटता जाता है। हम ऊपर लिख आये है कि केन्द्रित आर्थिक व्यवस्थासे राजनीतिके क्षेत्रमे भी केन्द्रित व्यवस्थाका उदय होगा अर्थात् इसके द्वारा पूर्ण सत्तायुक्त केन्द्रीय शासन या राजकी स्थापना होगी जिसके हाथमे समूचा अधिकार केन्द्रित होगा और व्यक्तिकी स्वतन्त्रताका लोप हो जायगा। वर्तमान युगका यह सबसे बड़ा सङ्कट है। पूँजीवादी देशोंमे भी आर्थिक मामलोमें हस्तक्षेप करनेका राजका अधिकार दिनो दिन बढ़ता जा रहा है। ऐसा करनेमे उसे रोकना भी असम्भव होता जारहा है। यदि हम लोग व्यक्तिके लिए सच्ची स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र चाहते हैं तो जहाँ-तक सम्भव है हमे केन्द्रित उत्पादन प्रणालीको विदा करना होगा।

केन्द्रीकरणकी व्यवस्थामे उन विभिन्न दलोको स्वायत्त शासनका सुख कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता जिनके संयोगसे राष्ट्रकी स्थापना होती है। वास्तविक स्वतन्त्रताका दर्शन विकेन्द्रीकरणमे ही हो सकता है, जहॉ भिन्न-भिन्न गरोह अपनी व्यवस्था आप करता है और अपना काम-काज खुद देखता है तथा केन्द्रीय शासन केवल उन कामोंकी देख-रेखके लिए कायम करता है जिनका सम्बन्ध प्रत्येक इकाईसे होता है और जो काम प्रत्येक इकाई अलग-अलग नहीं सम्पन्न कर सकती।

इस तरहकी राजनीतिक व्यवस्थामें प्रगति और विकास तेजीसे होंगे क्योंकि कोई भी इकाई पीछे रहना नहीं चाहेगी क्योकि यातायातकी सुविधाके कारण उसे प्रत्येक गॉवकी प्रगतिका पता चलता रहेगा। कुछ लोगोका कहना है कि यदि भारत छोटा देश रहता तो इसका सुधार आसान होता लेकिन इसका आकार इतना बड़ा है कि इसको सुधारनेका काम प्रायः असम्भव है। लेकिन विकेन्द्रित सामाजिक व्यवस्थामे इस तरहकी निराशा-के लिए स्थान नहीं है क्योंकि देश कितना भी बड़ा क्यो न हो, जिन इकाइयोसे वह सङ्गठित है, वे छोटी हैं और जब प्रत्येक इकाई अपने विकासकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेती है तो पुनः निर्माणका काम सहज हो जाता है। लेकिन जब केन्द्रीय शासन सारा काम अपने ऊपर ओढ़ लेता है तब प्रगति धीमी होगी और विभिन्न इकाइयोसे अपने निर्णयका पालन करानेके लिए उसे बलका प्रयोग करना पड़ेगा। कितना भी योग्य कोई व्यक्ति क्यों न हो, जब वह सबका काम खुद करना चाहेगा तो वह निश्चय ही असफल होगा, लेकिन यदि वही काम वह भिन्न-भिन्न

लोगोमे बॉट दे तो वह काम वात-की-वातमे पूरा हो जायगा और उसके सम्पन्न होने मे किसी तरहकी झञ्झट भी पैदा नही होगी। इस तरह अपना काम स्वयं सम्पन्न करके गॉव आत्म-निर्भर और सम्पन्न होगे। वर्तमान समयमे गॉवो मे जो निराशा और आलस्य देखनेमे आते है, जो उनके ऊपर भारस्वरूप हो रहे है और जिसके भारसे दवकर वे अपना सुधार करनेमे अस-मर्थ हो रहे है और जो उनका रास्ता रोककर खड़ी है, उसका अन्दाज सहजमे लगाया जा सकता है। ऊपर हम लिख आये है कि वर्तमान आर्थिक व्यवस्थामे उन्हे ऐसी शक्तियोसे संघर्ष करना पड़ता है, जिनपर उनका कोई नियन्त्रण नही है। उदा-हरणके लिए काश्तकारी कानून पुराने और असुविधाजनक है. अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घर्षका उन्हे मुकावला करना पड़ता है, कई कड़े कर उन्हे देने पड़ते है, मुद्रा और विनिमय सम्वन्धी सरकारी नीति उनके अनुकूल नही है, यातायात और जङ्गलके नियमोकी सुविधा उन्हे नही है, राजसे कर्ज मिलने की सुविधा प्राप्त नही है। इसी तरहकी अनेक कठिनाइयोंका सामना उन्हे करना पड़ता है, लेकिन यदि राजकी यह नीति हो जाय कि वह गॉववालो-के जीवनमे यथासाध्य कम-से-कम हस्तक्षेप करे, प्रत्येक इकाई अपनी आवश्यकताको आप-से-आप पूरी कर ले, और अपना प्रवन्ध स्वयं कर ले तो गॉववाले अपने आपके स्वयं विधाता वन जायॅगे। इसलिए वे नयी आशासे प्रेरित होकर अपने सुधार और विकासके लिए निश्चय ही भगीरथ-प्रयत्न करेगे। इस तरह राष्ट्रके जीवनमे नयी धारा वह निकलेगी। इससे उसकी शक्ति बढ़ेगी और वह स्वस्थ तथा शक्तिशाली

बनेगा। पश्चिमके दिखावटी लोकतन्त्रके एवजमे—जहाँ लोगोंको यह धोखा दिया जाता है कि अपने वोटों द्वारा वे अपना प्रबन्ध आप-ही-आप कर रहे है, लेकिन वास्तवमे यह काम कतिपय अधिकार लोलुप उनके लिए कर रहे है—हमे सच्चा लोकतन्त्र प्राप्त होगा जहाँ वास्तवमे अपने शासनका अधिकार जनताके हाथमे होगा।

२—साम्प्रदायिक समस्या :—आज देशमे साम्प्रदायिक समस्या भीषण रूप धारण करके खड़ी हो गयी है। लोकतन्त्रकी आड़में यह ब्रिटिश शासनकी देन है। प्राचीन युगमे साम्प्रदायिक समस्याका नाम भी लोगोंने नहीं सुना था। गाँवोंमे आज भी यह समस्या नही है क्योंकि आधुनिक युगके अधिकार-लोलुपों तथा पद लोलुपोका वहाँ प्रवेश नही हो पाया है। देशी राज्योंमे भी इस तरहकी समस्या नहीं है। यदि कहीं है भी तो बहुत ही सूक्ष्म। गाँवोंमे हिन्दू और मुसलमान पूर्ण मेलके साथ रहते है, काम-काज सुख-दुखमें एक दूसरेके साथी है। भाषा, कला, कारीगरी, साहित्य, सङ्गीत तथा रीतिरिवाजमे एकका प्रभाव दूसरेपर पड़ता रहता है, एक दूसरेके उत्सवों तथा त्योहारोंमें शामिल होते रहते है। यह समन्वय इतना भीतर घुस गया है कि यदि हम लोग चाहे भी तो राष्ट्रभाषा, कला, कारीगरी, सङ्गीत, साहित्य तथा सामाजिक जीवनसे इस प्रभावको अलग नही कर सकते और उस समय ऐसी कोई केन्द्रीय शक्ति दोनोको एकमे मिलानेके लिए नहीं थी। यह विकास अपने आप स्वाभाविक रीतिसे हुआ ; क्योंकि दोनो जातियाँ एक ही गाँवमें बसती थी। जहाँ कही विकेन्द्रित सहयोग आर्थिक व्यवस्था थी वहाँके लोगोमे सहयोग और

मेल की भावनाका स्वतः विकास हुआ। विना किसी योजनाके हिन्दू और मुसलमान दोनो जातियोके बीच एकताकी इस भावनाका उदय हुआ।

ब्रिटेनका यह दावा है कि उसने भारतमे राष्ट्रीय एकता स्थापित की है। लेकिन ब्रिटेनका यह दावा एकदम गलत और झूठा है। अपने साहित्य तथा धर्मके अध्ययनसे हमे भलीभाँति विदित हो जाता है कि आजकलकी अपेक्षा अतीतमे हमलोगोमे कही अधिक मेल-मिलाप था। आज यदि हमारे ऊपर कोई सबसे बड़ा सङ्कट है तो इसी बातका है कि हमलोग इस एकताको खो रहे है जिसे हमलोगोके पूर्व पुरुषोने सफलतापूर्वक स्थापित की थी। हमारी अतीतकी एकता आजकलकी एकताकी भाँति बनावटी या गरजू एकता नही थी कि शासनकी सुविधाके लिए या विदेशी शत्रुको मार भगानेके लिए हमलोग एकताके सूत्रमे बँध जाते है। यह एकता तो आपद्धर्मकी एकता है। लेकिन हमारी प्राचीन एकता संस्कृति, सभ्यता, आकांक्षा और विचारोकी एकता थी। वर्तमान केन्द्रीय शासनमे हमे वास्तविक एकता तो प्राप्त ही नही है; इसके विपरीत हममे द्वेष, डाह और ईर्ष्याका समावेश हो गया है और साम्प्रदायिक कलह दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। इसका प्रधान कारण तो वर्तमान आर्थिक व्यवस्था है जिसने प्राचीन ग्रामसङ्गठनको विनष्ट कर दिया। आजके समान भेदभाव देशमे कभी भी नही था। आज तो देश अनेक दलोमे बँट गया है जो अपने स्वार्थ साधनमे ही रत है और दूसरोको क्षति पहुँचा कर भी अपनी उन्नति चाहते है। हिन्दू और मुसलमानोके बीच ही यह वैमनस्य दिखायी

नहीं देता, बल्कि प्रान्त प्रान्तके बीच, भाषा-भाषाके बीच यह प्रविष्ट हो गया है। हिन्दू जातिके बीच ही विरोध और सघर्ष पैदा हो गया है। यह विरोध और संघर्ष इस समय इतना उग्र हो गया है कि जिन धार्मिक ग्रन्थोकी पूजा बिना किसी भेदभावके आर्य, द्राविड़ तथा अछूत सभी करते थे, उन्हीं धर्मग्रस्थोका एक समुदाय यह कहकर निरादर कर रहा है कि आर्योंने उनके ऊपर अपनी प्रभुता स्थापित करनेके लिए इन ग्रन्थोका निर्माण किया था। यह विरोध दक्षिणके एक सम्प्रदायमें इतना भीषण रूप धारण कर रहा है कि हिन्दुओंका मुकाबला करनेके लिए वे मुसलमानोतकसे सहयोग करनेके लिए तैयार है। लेकिन वास्तविकता यह है कि आर्य और द्राविड़ हिन्दू साहित्यमे एकदम घुल-मिल गये है और उन्हे एक दूसरेसे अलग करना उतना ही कठिन है जितना कठिन दूधसे पानीको अलग करना है।

हमलोगोंके सामने ही इस तरहका विप्लव हमारे देशमें मचा हुआ है तो भी ब्रिटेनका यह दावा है कि उसने हमलोगोको एक राष्ट्रमे गूँथ दिया है। यदि ब्रिटेनके कारण हमलोगोमें किसी बातकी एकता है तो उसका कारण विदेशी शासनके प्रति प्रत्येक जातिका बढ़ता हुआ विरोध है। प्रायः सभी जातियाँ ब्रिटिश शासनके विरुद्ध हैं इसलिए हमलोगोके विचारो और कार्योंमे एकता दिखायी देती है। लेकिन इस तरहकी एकता स्थायी नहीं हो सकती। यह उसी दिन खतम हो जायगी जिस दिन इसका उद्देश्य सिद्ध हो जायगा अर्थात् विदेशी शासनके अन्तके साथ-ही-साथ इसका भी अन्त अवश्यम्भावी है।

परवा नहीं क्योंकि विश्वमे विद्वेषकी आग सुलग रही है और प्रत्येक राष्ट्र इसी वक्तसे एक दूसरेके खिलाफ तैयारियाँ कर रहा है। मालूम होता है कि अगले युद्धकी अभीसे तैयारी हो रही है। विनाशके ज्यो-ज्यो नये नये अस्त्र तैयार होते गये—उदाहरणके लिए जेपलिन, गोताखोर, बम, जहरीली गैस—त्यो-त्यो लोगोके मनमे यह भावना उठती गयी कि ये साधन संहारके ऐसे भीषण दृश्य उपस्थित करेगे कि लोगोके कान खड़े हो जायँगे और युद्धका अन्त हो जायगा। लेकिन यह हुआ नहीं। बल्कि इसके विपरीत इन शस्त्रोके प्रभावको नष्ट करने तथा उनसे भी भीषण शस्त्र तैयार करनेके लिए वैज्ञानिकोको तैनात किया गया। इसलिए यह मान लेना कि संहारकारी भयानक शस्त्रोके आविष्कारसे युद्ध बन्द हो जायगा, इतिहासके प्रमाणोकी उपेक्षा होगी।

प्रतीत तो यही होता है कि सन्धि, शक्तिशाली राष्ट्रोका राष्ट्रसङ्घ, अन्तराष्ट्रीय राजकी स्थापना, अन्तर्राष्ट्रीय नीति तथा निरस्त्रीकरण आदि उपायोसे सच्ची शान्तिकी स्थापना नही हो सकती। उपदेश अथवा धार्मिक प्रार्थनासे तो यह कायम हो ही नही सकती। विद्वेष, डाह, घृणा तथा राष्ट्रोके बीच परस्पर सङ्घर्षका एकमात्र कारण केन्द्रित उत्पादन-प्रणाली है। आर्थिक व्यवस्थासे इस प्रणालीका अन्त कर देनेपर ही विश्वमें सच्ची शान्ति स्थापित हो सकती है। जबतक यह व्यवस्था कायम रहेगी तबतक राष्ट्र और व्यक्ति दोनोमे नियम तथा विधान और सन्धिकी शर्तोंको तोड़-मड़ोरकर उसका गलत मतलब निकालनेकी प्रवृत्ति कायम रहेगी, ताकि दूसरोपर शासन करनेका उन्हे अधिक-से-अधिक अधिकार प्राप्त हो जाय। युद्ध

बन्द करने के लिए युद्ध अथवा लोकतन्त्रकी स्थापनाके लिए युद्ध उपहासास्पद है। इसका मतलब तो यही हुआ कि हलकी आग बुझाने के लिए भीषण आग प्रदीप्त करके यह कहा जाय कि भीषण आग हलकी आगको अपनेमें समेट लेगी। यह ठीक है कि भीषण आग हलकी आगको अपनेमें समेट लेगी, लेकिन उसका परिणाम बहुत ही दारुण होगा। कोई भी उद्योग या अध्यवसाय, शान्ति या लाकतन्त्र स्थापित करनेमें सफल नहीं होगा जिसके द्वारा जनसमूहको कतिपय लोगोंके आदेशके पालनेके लिए बाध्य होना पड़ेगा क्योंकि वे सर्वशक्तिमान् हैं और आदेश देनेकी क्षमता रखते हैं। बल्कि यह तो उन राष्ट्रों या व्यक्तियोंको जो अभीतक अपनी शक्तिको व्यक्त करनेके लिए स्वतन्त्र नहीं है—प्रत्यक्ष निमन्त्रण देना होगा कि अवसर पाते ही वे विद्रोहके लिए उठ खड़े हों। हर तरहकी केन्द्रित व्यवस्थाका उद्देश्य ही कतिपय लोगोंके हाथमें पूर्ण सत्ता देना है, इसलिए स्थायी शान्तिकी तबतक आशा नहीं की जा सकती जबतक इसका मूलोच्छेद करके विकेन्द्रित प्रणालीकी स्थापना न की जाय अर्थात् जबतक अधिकार और हिंसापूर्ण आर्थिक व्यवस्थाके स्थानपर अहिंसात्मक और शान्तिपूर्ण आर्थिक व्यवस्थाकी स्थापना न हो। जबतक कि व्यक्तिका दैनिक जीवन अहिंसात्मक आधारपर सङ्गठित नहीं होगा और जबतक उन्हें अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिकी स्वतन्त्रता नहीं दी जायगी तबतक हमलोग राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय जगतसे हिंसाको समूल नष्ट करनेकी आशा नहीं कर सकते। विकेन्द्रित आर्थिक प्रणालीमे ही यह सम्भव है। सीमित दायरेमे भी यदि दूसरोंपर शासन करनेकी आकांक्षाको प्रश्रय दे दिया

गया तो इसका कहीं अन्त नहीं हो सकता, जबतक कि वह अपना विषैला प्रभाव सारे विश्वपर न फैला ले, इसका स्वाभाविक परिणाम घृणा, अपराध, अराजकता, युद्ध तथा रक्तपात होगा। इसलिए एकमात्र विकेन्द्रित आर्थिक प्रणाली ही अहिंसात्मक समाजके लिए उपयुक्त आर्थिक योजना हो सकती है।

विकेन्द्रित आर्थिक प्रणालीमे राष्ट्रका जीवन अगणित गाँवोमे देशभरमे फैला रहेगा और संसारके उद्योग-प्रधान देशोंकी भाँति केवल कुछ नगरोमे ही सीमिति नही रहेगा, इसलिए किसी विदेशी शक्तिके आक्रमणसे वह सहजमे ढह नही जायगा। हमलोगोको मालूम हुआ है कि परिमाणु बमके द्वारा नगरोके इस तरह विनष्ट किए जानेकी सम्भावना देखकर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका बड़े-बड़े नगरोको तोड़कर छोटा-छोटा नगर बसानेके यत्नमे है जिनकी आबादी २,००,००० से ज्यादा नहीं होगी। इतने दिनोतक चीन सफलता पूर्वक जापानका मुकाबला इसी लिए कर सका कि उसकी जनता और उसका उत्पादन बड़े-बड़े शहरोमे केन्द्रित न होकर देशभरमे फैला हुआ था और बमो द्वारा नगरो तथा उद्योग-केन्द्रोके विध्वंससे भी चीन बेकाम या गतिहीन नही हो गया।

वर्तमान युगमे एक देश दूसरे देशपर क्यो आक्रमण करता है और उसे अपने अधिकारमे कर लेना चाहता है। एकमात्र उद्देश्य कच्चे मालकी प्राप्ति तथा तैयार मालके लिए बाजार कायम करना है। लेकिन विकेन्द्रित ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्थाके अनुसार देशका सङ्गठन हो जानेपर इस बातकी किसीको आवश्यकता नहीं रह जायगी। इसलिए किसी देशपर चढ़ाईकर उसे जीतनेकी आकांक्षाका आप-ही-आप लोप हो जायगा।

ग्रामोद्योग आर्थिक प्रणाली मे प्रत्येक गॉव अपनी आवश्यकताके लिए ही कच्चा माल पैदा करेगा और तैयार माल बाहरसे नहीं खरीदेगा, इसलिए किसी भी देशकी लोलुप दृष्टि उसपर नहीं पड़ेगी। इस अहिंसक उपायसे हम विदेशी शासनका जुआ अपने कन्धेपरसे हटा सकेंगे और दूसरोंको भी उसका स्थान ग्रहण करनेसे रोक सकेंगे।

प्रश्न यह उठ सकता है कि ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्थाके आधारपर सङ्गठित देश किसी शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा आक्रमण किये जानेपर अपनी रक्षा किस प्रकार कर सकेगा ? इतना तो निश्चित है कि वह शस्त्र द्वारा उसका मुकाबला नहीं करेगा क्योंकि वैसा करनेके लिए उसे भी उसी तरहके या उससे भी बलशाली शस्त्रोंसे सुसज्जित होना पड़ेगा। इसके लिए उसे राष्ट्रके समस्त जीवनपर नियन्त्रण रखना होगा अर्थात् देशके उद्योग-धन्धों, कृषि, उत्पादन तथा उपभोगपर नियन्त्रण रखना होगा और यह पूर्ण केन्द्रित आर्थिक प्रणाली के द्वारा ही सम्भव है। यह तो उस व्यवस्थाका सर्वथा प्रतिवाद होगा जिसके पक्षमे हम यहॉतक लिख आये है और जिसका हर तरहसे समर्थन कर रहे है। इतना ही नहीं, यदि उस राष्ट्रको शत्रुका मुकाबला शस्त्र-बलसे करना है तो उसके पास प्रभूत धन भी होना चाहिए। १९४४ मे अपने एक वक्तव्यमे राष्ट्रपति रूजवेल्टने कहा था कि उस युद्धमें अमेरिकाको प्रतिदिन २ करोड़ पचास लाख डालर खर्च करना पड़ रहा है। १९४४ की २८ वी नवम्बरको ब्रिटिश सरकारने जो श्वेतपत्र प्रकाशित किया था, रायटरके अनुसार उसमें लिखा गया था कि विगत पॉच सालके युद्धमें ग्रेट ब्रिटेन-

को २५ अरब पौण्ड खर्च करना पडा है। इतनी अतुल सम्पत्तिके लिए हमे खनिज, अन्न तथा अन्य कच्चे माल, खासकर खनिज तेलके लिए अन्य देशोपर अधिकार करना आवश्यक होगा, क्योंकि रूस, अमेरिका तथा ब्रिटिश साम्राज्यकी अपेक्षा ये सब सामान हमारे देशमे नगण्य हैं। लेकिन अन्य देशोपर हमारा इस तरहका कोई अधिकार स्थापित नहीं हो सकता क्योंकि या तो विश्वके बड़े-बड़े शक्तिशाली राष्ट्रोका उनपर आधिपत्य है या उनपर आधिपत्य कायम करनेसे वे हमे रोकेगे। इसलिए शस्त्र द्वारा विदेशी आक्रमणको रोकना हमारे लिए सम्भव नही है।

कुछ लोग यह भी सोच सकते है कि शस्त्रके द्वारा यद्यपि हम अपनी रक्षा एकाकी नही कर सकेंगे लेकिन चीनकी तरह शक्तिशाली राष्ट्रोकी सहायतासे विदेशी आक्रमणको हम रोक सकेंगे। पर यह मार्ग भी खतरेसे खाली नही है। इस उपायसे हम आक्रमणकारीके पञ्जेके नीचे दबनेसे अपनेको भले ही बचा ले, लेकिन अपने इस मित्रके चंगुलमे फँसनेसे हमारी रक्षा करनेवाला कोई नही है। यह तो मानी हुई बात है कि अपने कब्जेमें लाये बिना वह हमारी सहायता कदापि नही करेगा। इसके अलावा इस बातकी भी सम्भावना है कि पराजित शत्रु पुनः शक्ति सञ्चयकर हमारे ऊपर चढ़ाई कर सकता है। युद्धमे पराजय हृदयमे शूल बनकर चुभता रहता है और जबतक बदला न ले लिया जाय तबतक शान्ति नही मिलती। इसलिए शस्त्रबलमे विश्वास रखना एकदम निरर्थक है। हमलोगोकी रक्षाकी केवल-मात्र आशा इसीमे है कि हमलोग अपने आर्थिक जीवनको इस तरह सङ्गठित करे कि किसी भी विदेशी शक्तिको हमारी ओर

दृष्टि डालनेका लोभ न हो। साथ ही हमलोगोंको इस तरहका आत्मबल संग्रह करना चाहिए कि हम न तो उस आक्रमण-कारीसे किसी तरहका सहयोग करें और न उसके सामने झुकें ही। केवलमात्र यही एक उपाय है जिसके द्वारा विश्वके राष्ट्रोंको शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा हड़पे जानेसे बचाया जा सकता है। इस उपायसे उनकी तात्कालिक रक्षा ही नहीं होगी बल्कि स्थायी रूपसे वे सुरक्षित रहेंगे।

गांधीजी हमारे देशमें इसी उपायका प्रयोग कर रहे हैं। यह प्रयोग तभी सफल हो सकता है जब हम नयी ग्रामीण आर्थिक व्यवस्थाको अपनावें और अहिंसात्मक प्रतिरोधके लिए सङ्गठन करना सीखें। इसलिए हमलोगोंको ग्राम सङ्गठनका उद्देश्य केवलमात्र जनसाधारणकी अवस्था सुधारना ही नहीं समझना चाहिये, बल्कि दूसरी शक्तियों द्वारा लूट पाट तथा आक्रमणका अहिंसात्मक असहयोग द्वारा प्रतिरोधका नया प्रयोग मानना चाहिये। इसीसे हम साम्राज्यवाद और युद्धका अन्त कर सकते हैं।

इसके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि यह उपाय व्यावहारिक नहीं है। समस्त राष्ट्रकी आत्माका इस तरह विकास करना असम्भव है कि आक्रमणकारीके सामने झुक जाने और उससे सहयोग करनेकी अपेक्षा लोग प्राण देना अधिक उपयुक्त समझें। उसके उत्तरमें हम यह कह सकते है कि जनता सदा नेताओंका अनुसरण करती है, इसलिए यदि चुने हुए आत्म-त्यागी नेता, जिनका जनतापर प्रभाव है, इस बातको भली भाँति समझ जायँ कि शत्रुसे असहयोग करनेके अतिरिक्त उनकी

तथा देशकी रक्षा अन्य उपायोंसे सम्भव नहीं है और उसी उद्देश्यसे जनताको तैयार करें तो समस्या हल हो जाती है। यदि हमारे देशके वे शिक्षित वर्ग, जो आज ब्रिटिश सरकारकी गुलामी कर रहे हैं, उसके साथ सहयोग करना छोड़ दें तो हमलोग एक दिनमें ब्रिटिश साम्राज्यको हिला सकते हैं। वर्तमान वैयक्तिक आर्थिक व्यवस्थामें—जिसका इस समय बोलबाला है—जहाँ लूटका माल उसीका है जो उसे प्राप्त कर सकता है, वे व्यक्ति जो जनताका नेतृत्व ग्रहण कर सकते हैं, अपने स्वार्थ साधनमें लीन हैं और व्यक्तिगत लाभके लिए ये शत्रुसे सहयोग करनेके लिए तैयार रहते हैं। हमें यह आशा करनी चाहिये कि ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्थामें शिक्षाका प्रधान उद्देश्य युवकोंमें देश प्रेम तथा देशके लिए आत्मत्यागकी भावना उदय करना होगा। इस व्यवस्थामें उन्हींका आदर होगा जो देश तथा समाजके लिए जीना चाहेंगे। वहाँ योग्य व्यक्ति अपने स्वार्थ-साधनके लिए अपनी योग्यताका प्रयोग नहीं करेंगे, क्योंकि इससे उन्हें केवल समाजका घृणा और अनादर प्राप्त होगा। सार्वजनिक मतकी उपेक्षा कर और समाजके साथ विश्वासघात कर उन्होंने आक्रमणकारीसे यदि सहयोग भी किया तो उससे आक्रमणकारीको कोई लाभ नहीं हो सकेगा, क्योंकि जनतामें उनका कोई प्रभाव नहीं रहेगा और जनता उनका साथ नहीं देगी। इस तरहका विकास व्यावहारिक राजनीतिके अधिकारके भीतर प्रतीत होता है, लेकिन हमारे समान राष्ट्रके लिए यह कदापि सम्भव नहीं है कि शस्त्रकी सहायतासे हम दुश्मनको भगा सकेंगे।

यदि इसे सही मान लिया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामोद्योग तथा गाँधीजीके शब्दोंमे रचनात्मक काम अर्थात् जनताको संगठित तथा शक्तिशाली बनानेका सारा प्रयास साम्राज्य-वाद तथा युद्धका अन्त कर देनेके लिए अहिंसात्मक प्रयोग हैं। तब तो वही कार्यकर्ता जो गाँवमें जाकर लोगोमे आत्मविश्वास और एकता जागृत कर रहे हैं और अपने दैनिक जीवनके व्यवहारसे लोगोंको अहिंसाकी शिक्षा दे रहे है, अहिंसात्मक युद्धमे जनताका नेतृत्व कर सकते है। इस तरहके प्रयास बिना, अहिंसात्मक प्रतिरोधके लिए लोगोको तत्काल संगठित करनेका प्रयास कभी भी सफल नहीं हो सकता। यही कारण है कि गांधीजी रचनात्मक कार्यपर इतना ज्यादा जोर देते हैं। हालमें तो उन्होंने यहाँतक कह डाला है कि रचनात्मक कार्यकर्ता राजनीतिक संस्थाओंसे आदेश और पथप्रदर्शन नहीं लेंगे बल्कि आगेसे राजनीतिक संस्थाओंको रचनात्मक कार्यकर्ताओंसे आदेश और पथ-प्रदर्शन लेना होगा। यह न तो उनकी व्यंग्योक्ति है और न राजनीतिक क्षेत्रसे निराश होकर ही उन्होंने ऐसा कहा है; बल्कि युद्ध तथा हिंसात्मक प्रतिरोधके स्थानपर अहिंसात्मक मार्ग खोज निकालनेके प्रयासमें हमने इसका स्पष्ट निर्देश किया है। इसलिए ग्रामोद्योगको हमें केवलमात्र आर्थिक व्यवस्थाके रूपमें ही नहीं देखना चाहिये, बल्कि एक सामाजिक व्यवस्थाके रूपमे उसे देखना चाहिये जो विश्वको साम्राज्यवाद तथा युद्धसे मुक्त करेगा।

(ग) सांस्कृतिक पहलू:

संस्कृति—समाजवादी व्यवस्थामे बड़े पैमानेपर उत्पादनकी

प्रणालीकी आलोचना करते हुए हमने यह दिखलाया है कि इस प्रकारकी विकेन्द्रित आर्थिक प्रणालीसे कार्यकर्ताओंका बहुत अधिक विकास होगा। यह स्मरण रखनेकी बात है कि संस्कृति क्रय विक्रयकी वस्तु नहीं है और न धनकी तरह उसे हथियाकर रखा ही जा सकता है। यदि यह बात होती तो जिस किसीके पास रुपया या धन होता वह संस्कृति खरीद कर रख लेता और मनुष्यके सबसे बड़े आदर्शका प्रतिनिधि बन जाता, चाहे उसे दिल या दिमाग होता या न होता। संस्कृतिका उदय आत्मासे होता है। इसे मनुष्यका पूर्ण विकास कह सकते है। मनुष्यके अन्तर्हित योग्यताओं—मन, हृदय तथा आत्मा—के पूर्ण विकासका नाम संस्कृति है। आर्थिक व्यवस्था ही ऐसी चीज है जहाँ मनुष्यको अपनी इच्छानुसार योजना बनाने, संगठन करने, सुधारने, आविष्कार करने तथा सजानेका अवसर मिलता है। इसी अवस्थामे वह अपने भीतर छिपी शक्ति या योग्यताका पूर्ण रूपसे प्रदर्शन कर सकता है और अपने व्यक्तित्वके पूर्ण विकास तथा प्रगटीकरणका उसे अवसर मिलता है। काम ही उसका शिक्षक होगा जो उसे बुद्धि, पूर्णता, निर्णय, काममें लगे रहना, चातुर्य, सौन्दर्य, प्रबन्ध, शासन, तथा स्थूल संसार और मानव समाजका ज्ञान प्रदान करेगा। इससे उसके विचारोमे स्वतन्त्रता, कार्यतत्परता तथा सम्पन्नताका उदय होगा। यही कारण है कि ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्थामे बालकोकी शिक्षाका आधार कारीगरी बनाया गया है।

वर्तमान समयमे बड़े पैमानेपर उत्पादन प्रणालीमे व्यक्तिके मस्तिष्कको एक दायरेमे सीमित कर दिया जाता है और उनके

उत्पादन तथा उपभोगका भी एक निश्चित तरीका बना दिया गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि वे एक ही तरीकेपर सोचने, रहने, खाने, पहनने, काम करने, आमोद-प्रमोद करने तथा घृणा-द्वेष करने लगे हैं। उनकी अवस्था उन मिट्टीके सैनिकोंके समान हो गयी है जो अपना हाथ-पैर तथा शस्त्रास्त्र उसी तरह हिलाते है जिस तरह हिलानेके लिए निर्माताने उनके शरीरमें यन्त्र बना दिया है। इसे हम संस्कृतिका नाम किस तरह दे सकते हैं ! दायरा सीमित कर देनेसे व्यक्तिकी शक्तिका विकास नहीं हो सकता। इसके प्रतिकूल इससे उनकी शक्तिका ह्रास हो जाता है। विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्थाके समान जहाॅ व्यक्तिको अपनी शक्तिके विकास तथा प्रदर्शनका पूरा अवसर मिलता है, अर्थात् जहाॅ उसे अपने कामकी देखरेखकी पूरी स्वतन्त्रता रहती है, वहाॅ वास्तविक संस्कृतिका उदय हो सकता है।

२—प्रगति—ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्थामें लोग प्रारम्भिक युगके समान ही बने रहेंगे और लोगोंका विकास तथा उदय नहीं होगा। इस तरहके आक्षेपका कारण यह है कि लोग वस्तुओंके बाहुल्यको ही विकास और उदय मान लेते हैं। इसके विपरीत यदि लोग यह समझ जायॅ कि वास्तविक विकास भौतिक वस्तुओंमें नहीं है, बल्कि बुद्धि तथा चरित्रके विकासमे, व्यक्तिमें कलात्मक ज्ञानके उदयमे, तब यह स्पष्ट हो जायगा कि विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्थामे ही वास्तविक उन्नति सम्भव है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो केन्द्रित आर्थिक व्यवस्थामे

हमारी हालत पशुओसे भी खराब हो गयी है। हमलोग एक दूसरेसे घृणा करते है, एक दूसरेको लूटना चाहते है, और एक दूसरेका व्यापक संहार चाहते हैं और मनुष्यका दायरा इस तरह सीमित कर देना चाहते है कि उसमे खुद सोचने, समझने या काम करनेकी शक्ति ही न रह जाय। यदि उन्नतिका वास्तविक लक्षण मनुष्यका विकास है—और यही लक्षण हमने अपने सामने शुरूसे ही रखा है—तो इसकी प्राप्ति विकेन्द्रित आर्थिक प्रणालीमे ही हो सकती है, केन्द्रित आर्थिक प्रणालीमे यह सम्भव नही है।

वर्तमान युगके यातायात :—सड़क, रेल, बस तथा रेडियो—की सुविधाके कारण एक क्षेत्रमे तैयार उपयोगी और सुन्दर सामान, बड़े पैमानेपर उत्पादन प्रणालीकी भॉति, विकेन्द्रित उत्पादन प्रणाली-मे, दूर-दूर देशोके बाजारको पाटकर वहॉ आर्थिक दुर्व्यवस्था और बेकारी पैदा नही कर देगा, बल्कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रोके प्रगतिशील कारीगर—जिन्हे अपने कामसे प्रेम होगा और जो अपने काममे नये-नये रूपो और तर्जोंको स्थान देना चाहेगे,—वे उन सुन्दर तर्जोंकी नकल करेगे और उनमे सुधार लानेका भी यत्न करेगे। गॉवके भीतर सहयोगके आधारपर काम होगा इसलिए अपने सहयोगियोको प्रसन्न रखनेके लिए कारीगर लोग अच्छी-से अच्छी वस्तु तैयार करनेका यत्न करेगे, उनकी प्रसन्नता तथा नये तर्जकी वस्तुओके उत्पादनमे स्वयं कारीगरको जो सन्तोष होगा, ये दोनो बाते उसे नये नये तर्जोकी खोजके लिए प्रोत्साहित करते रहेगे। इसके साथ ही-साथ गॉवके उत्पादनमे सुधार लानेके लिए विज्ञान और खोजसे भी मदद मिलती रहेगी। इसलिए लोग

प्रारम्भिक अवस्थामें ही नहीं रह जायँगे बल्कि प्रगतिशील होंगे और उन्नति करेंगे।

३–सौन्दर्य और विविधता :—कुछ लोग यह भी कहते हैं कि कलकारखानो द्वारा उत्पादनमे तरह-तरहकी चीजें मिलती हैं जिससे प्रत्येककी रुचिकी तृप्ति हो जाती है, लेकिन ग्रामोद्योगमें जीवन रूखा-नीरस और आकर्षणहीन हो जायगा। यह बात तो निश्चित है कि विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्थामे वस्तुओंका बाहुल्य नही रहेगा। लेकिन सामाजिक व्यवस्थाकी आलोचना करते हुए हम यह बात प्रमाणित कर आये है कि वस्तुओंका बाहुल्य कोई अच्छी बात नहीं है। बल्कि उससे बुराई ही पैदा होती है। इससे हम गुलाम बन जाते है और हमारी प्रगति रुक जाती है। जीवनको सुखी और सुन्दर बनानेके लिए जिन सामा- नोकी आवश्यकता है उनके उत्पादनके लिए ग्रामोद्योगके रास्तेमें किसी तरहकी रुकावट नहीं होगी। आज गाँवोमे उत्पन्न चीजें यदि रूखी है और उनमे आकर्षण नहीं है तो इसका कारण गाँवके कारीगरोकी दयनीय स्थिति है। उनके मालमे किसीको रुचि नही है। उन्हें पेटभर भोजन नसीब नहीं होता और वे भूखा रहते है। बड़े-बड़े कलकारखानोका मुकाबला न कर सकनेके कारण उनके व्यवसायके चतुर तथा प्रवीण कारीगर अपने रोज- गारको छोड़कर जीविकाकी खोजमें उन पेशोमे चले गये जहाँ उन्हे पेटभर अन्न मिल सकता है। लेकिन जब हम सहयोग आर्थिक व्यवस्था कायम कर देंगे, तब कोई कारण नहीं है कि हाथकी बनी वस्तुएँ मिलकी बनी वस्तुओंका मुकाबला नही कर सके। वे उनसे चढ़-बढ़कर हो सकती हैं। कला और कारी-

गरीमे आज भी हाथकी वनी चीजे कलो द्वारा वनी चीजोसे कही उत्तम होती है। आज तो उपभोक्ताओको वाध्य होकर उन्ही वस्तुओको खरीदना पड़ता है जो कारखानोमे तैयार होती है और इस तरह उसकी रुचिका दायरा सीमित है। लेकिन ग्रामोद्योगमे तो वह अपने पड़ोसी कारीगरको अपनी रुचिके अनुसार वस्तु तैयार करनेके लिए प्रेरित कर सकता है। इससे उपभोक्ता तथा उत्पादक दोनोके कलात्मक ज्ञानको प्रोत्साहन मिलेगा और दोनोमे मौलिकता तथा अपनी योग्यताके प्रदर्शनकी वृद्धि होगी।

(४) विश्राम—यह कल्पना भी निराधार है कि ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्थामे विश्राम तथा विनोदके लिए समय नही मिलेगा। कभी-कभी लोगोमे यह भ्रान्त धारणा पैदा हो जाती है कि ग्रामोद्योगमे लोग हर वक्त काम ही करते रहेगे, उदाहरणके लिए रातदिन सूत ही कातते रहेगे और उन्हे विश्रामके लिए समय नहीं मिलेगा। चूँकि लगातार काममे लगे रहनेसे मनुष्य बोदा और हीन हो जाता है इसलिए ग्रामोद्योगमे व्यक्तिका विकास नही हो सकता। इस भ्रान्त धारणा का कारण यह है कि लोगोको वास्तविकताका ज्ञान नही है। यह कौन कहता है कि लोगोको हरवक्त काम ही करते रहना होगा और फुरसत नही मिलेगी? यदि हम लोग चर्खेका प्रचार आजकल करना चाहते हैं तो इसका कारण यह है कि कामके अभावमे लोगोकी आर्थिक दशा एकदम दयनीय हो गयी है और लोगोको उपयुक्त काम नही मिल रहा है। ऐसे लोगोके लिए निराशाके गर्तमे गिरकर सर्वनाशकी अपेक्षा एक घण्टा चर्खा कातकर एक पैसा कमा लेना भी कम नही है। जब सब लोग किसी-न किसी काममे

लग जायँगे और पर्याप्त जीविका कमाने लगेंगे तब सबके लिए चर्खा चलाना और सूत कातना आवश्यक नहीं होगा। उस वक्तके लिए तो यह भी व्यवस्था हो सकती है कि सहयोग समिति या राज द्वारा सूत कातनेकी मिलें बैठा दी जायँगी और वहाँसे सूत प्रत्येक गाँवको दिया जायगा। इसलिए चर्खा चलानेकी वर्तमान व्यवस्थाका मतलब लोगोंके विश्रामका समय अपहरण करना नहीं है बल्कि लोगोंमेंसे निराशाके भावको हटाकर उनमें आत्मनिर्भरताका भाव जागृत करना है।

इसके साथ ही कलकारखानोंमें काम करनेवालोंको विश्रामकी जितनी जरूरत पड़ती है, ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्थामें काम करनेवालोंको विश्रामकी उतनी जरूरत भी नहीं होगी क्योंकि जब एक ही कामके अनेक पहलू होते हैं, जैसा कि ग्रामोद्योगमें होगा, तब विश्रामके लिए लोग उतने लालायित नहीं होंगे। हमारे पास इस बातके प्रमाण मौजूद हैं कि प्राचीन युगमें हमारे कारीगरोंने विश्रामकी कभी आवश्यकता नहीं महसूस की, अपने काममें ही उन्हें असीम आनन्द मिलता था। इसीका परिणाम है कि उनके अथक परिश्रमका फल कपड़ोंपर उनके तर्ज, हाथीके दाँत, पीतल, लकड़ी तथा पत्थरपर बारीक तथा अनोखी खुदाईके रूपमें प्रकट हुआ। इस तरहके उत्तम और अवर्णनीय काम ऐसे लोगों द्वारा नहीं तैयार किये जा सकते थे जिन्हें इतमीनानसे काम करनेका अवसर न होता और कामके पीछे सदा दौड़ते रहना होता। यह तो वर्तमान मशीन-युगका प्रसाद है कि लोगोंको दम मारने की फुरसत नहीं मिलती, सदा दौड़-धूप मची रहती है और अनवरत काम

चलता रहता है। लोगोको न चैन मिलता है और न शान्ति। जल्दीबाजी और अधीरता बनी रहती है। प्राचीन युगके लोग धीर और शान्त रहते थे और इतमीनानसे काम करते थे। उन्हे समयकी कमी नही रहती थी। ऐसा मालूम होता था कि वे युग-युग जीते रहेगे। वर्षके कुछ महीनोमे ही—जब खेतोमें फसल तैयार हो जाती थी—वे दिन-रात काममे लगे रहते थे, अन्यथा वे अपनी इच्छाके अनुसार काम करते थे। उनके पास समयकी कमी नही रहती थी। वे अपने परिवार या गॉवके जमातके साथ तपनीके पास बैठते थे और पौराणिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक कहानियॉ सुना करते थे अथवा नाच, गाना या थिएटरमे शामिल होते थे। लेकिन विचित्र बात तो यह है कि वर्तमान युगके रहनेवाले हमलोग—जिन्हे अपने बाल बच्चोंकी देखरेख करनेके लिए भी पर्याप्त समय नही है—उन लोगोपर यह दोषारोपण करनेकी धृष्टता करते है कि उन्हे फुरसत नहीं मिलती थी। इस तरहका विचार किसी एकके मनमे उठता है। वह इसका इस तरह प्रचार कर देता है कि विना समझे-बूझे लोग उसपर विश्वास करने लग जाते है। थोड़ी देरके लिए यदि यह मान भी लिया जाय कि प्राचीन कालमे लोगोको फुरसत कम मिलती थी—यद्यपि यह वास्तविकता और प्रत्यक्ष प्रमाणके सर्वथा प्रतिकूल होगा—तोभी इससे यह परिणाम कैसे निकाला जा सकता है कि वर्तमान युगमे भी उस प्राचीन परिपाटीको कायम करनेसे लोगोको विश्रामके लिए समय नही मिलेगा। यह विज्ञानका युग है। विज्ञानकी सहायतासे ग्रामोद्योगमे इस तरहके सुधार कर दिये जायँगे कि गॉवके कारीगरको

ग्रामोद्योग अपने काममे अनेक तरहकी सुविधाएँ हो जायँगी और उसे प्रचुर समय विश्रामके लिए प्राप्त होगा। आजतक विज्ञानका प्रयोग ग्रामोद्योगके लिए नहीं किया गया है इसलिए यह कहना सम्भव नहीं है कि ग्रामोद्योगमे विज्ञानके प्रयोगसे काममें कितनी सहूलियत होगी और समयकी कितनी बचत होगी। उस समय किसान अपना फाजिल समय संगीत या चित्रकारी तथा कारीगर अपना फालतू समय साहित्य तथा दर्शनके अध्ययनमें मजेमे लगा सकता है। इसके अलावा वह स्वयं इस बातको अधिक पसन्द करेगा कि उसका फालतू समय ऐसे शारीरिक श्रमके काममे लगाया जाय जिससे उसे लाभकी सम्भावना हो, बनिस्वत इसके कि मिलोंमे काम करके उसकी बुद्धि मार दी जाय।

५—सहयोग और भ्रातृभाव :—इसके अलावा जब एक ही पेशेके लोग एक साथ मिलकर काम करेंगे और गाँवकी आवश्यता पूरी करेंगे, तभी तो वास्तविक सहकारिता और एक दूसरेपर निर्भर रहनेका भाव उत्पन्न होगा जो किसी परिवारके सदस्योंमें दिखायी देता है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गाँवकी इकाई जितनी छोटी होगी, सहयोग और सङ्गठन उतना ही दृढ़ होगा। उसी अवस्थामे लोग बिना किसी बाहरी प्रेरणाके अपने मनसे एक दूसरेके कल्याणके लिए काम करेंगे और तभी सङ्कीर्ण स्वार्थको त्यागकर परस्पर आदान-प्रदानसे लाभ उठानेका सुख प्राप्त करेंगे।

उसी हालतमे समाजके लिए व्यक्ति अपना सङ्कीर्ण स्वार्थ भूल सकेगा और समाजका बृहत् जीवनका सुख-दुख उसके छोटे-से-छोटे सदस्यपर निर्भर करेगा। प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव

करेगा कि समाजको सुखी बनाकर ही वह सुखी बन सकता है क्योंकि वह समाजका एक अङ्ग है और समाज भी यह बात महसूस करेगा कि उसके सदस्योंके अतिरिक्त उसका अपना अलग कोई भी अस्तित्व नहीं है और उसके कल्याणमे ही समाजका कल्याण है। इसलिए वह अपने दायरेमे रहनेवाले छोटे-छोटे सदस्यकी भी पूरी देखरेख करेगा। इस प्रकार वह सङ्कीर्णता आप-से-आप गायब हो जायगी जिसकी प्रेरणासे मनुष्य अपने पड़ोसीकी परवा न कर केवल अपने स्वार्थसाधन-के लिए काम करता है और जिसके चलते वह अपना और अपने पड़ोसी—दोनोंका सर्वनाश करता है, जैसा कि वर्तमान विश्वव्यापी रक्तपात और नरसंहारसे स्पष्ट प्रकट है और उस संकीर्णता के स्थान पर उस सत्यका उदय होगा जिसके द्वारा मनुष्य समाजके कल्याणमे ही अपना कल्याण निहित समझता है। इस तरह जो समाज अपने अनेक सदस्योंके सुख दुखकी परवा न कर अथवा उससे उन्हे वञ्चित कर आगे बढ़ना चाहता है, उस तरहके समाजका अन्त हो जायगा और उसके स्थानपर ऐसे समाजकी स्थापना होगी जो अपने हीन से हीन सदस्यकी उसी तरह देख-रेख करेगा।

इस तरहके समाजका सदस्य स्पष्ट अनुभव करेगा कि वह तथा उसका समाज दोनों एक हैं। उसका अपना कोई अलग अस्तित्व नहीं है, बल्कि उसका अस्तित्व समाजके अस्तित्वमे घुल-मिल गया है, उसके पड़ोसीका अस्तित्व उसके अस्तित्वके साथ जुड़ा हुआ है और उसका जीवन तभी सार्थक है जब वह केवल अपने लिए न जीवित रहकर अपने पड़ोसियोंके

लिए ही जीवित रहता है। इसी तरहके सत्यपर अवलम्बित समाज ही चिरस्थायी हो सकता है, न कि वह समाज जो इस गलत सिद्धान्तपर चलता है कि व्यक्ति ही सब-कुछ है और दूसरे लोगोंके स्वार्थोंकी हत्याकर वह अपने ही स्वार्थ-साधनमें रत रहता है। जिस समाजका आधार वैयक्तिक स्वार्थ होगा, उसका नाश अनिवार्य है। वह बालूकी भीतकी भाँति ढहकर गिर जायगा, लेकिन वह समाज जिसके प्रत्येक सदस्य एक-दूसरेके सुखको ही अपना सुख समझेंगे वह समाज अनन्त कालतक जीवित रहेगा क्योंकि उसकी बुनियाद विश्वके प्राकृतिक नियमपर अवलम्बित है।

ऐसे समाजमें काम वास्तवमें देव-पूजाके समान होगा क्योंकि वहाँ तो मनुष्य मनसा, वाचा और कर्मणा समाजके बृहत् कल्याणमें अपनेको डुबो देगा और इस तरह वह प्रकारान्तरसे उसकी सेवा करेगा जिसने इस सृष्टिका सृजन किया है। उसी अवस्थामें आर्थिक-व्यवस्था केवल भौतिक न रहकर आध्यात्मिक रूप ग्रहण करेगी और वहाँ जाकर श्रम हेय दृष्टिसे नहीं देखा जायगा क्योंकि उसका उद्देश्य केवल अपना भरण-पोषण न होकर, देवत्वतक पहुँचनेका वह साधन होगा, क्योंकि प्रेमसे प्रेरित होकर समाजके कल्याणके लिए उसका उपयोग होगा और व्यक्तिको अपने सकीर्ण स्वार्थसे हटाकर समाजके कल्याणमे निहितकर वह विश्वके कल्याणका साधन बनेगा जो देवलोकके रूपमें प्रत्येक शरीर मे समान रूपसे वर्तमान है। उसी समय सङ्कीर्ण स्वार्थ और निर्दय प्रतिस्पर्धाकी भावनासे मुक्त होकर व्यक्ति सच्चे सहयोगका दर्शन करेगा और प्रत्येक

व्यक्ति एक-दूसरेके सुख-दुखमे समान रूपसे शामिल होगा। मै और तू भावका लोप हो जायगा और सच्चे भ्रातृभाव और सहयोगका उदय होगा। प्रत्येक व्यक्तिका दैनिक जीवन और कार्य विलगावकी मायाको काटकर एकताका भाव ग्रहण करेगा। यही शिक्षा हमे सदियोसे मिलती आ रही है। इस उपायसे उस आर्थिक व्यवस्थाका उदय होगा, जिसमे हमारे देश वासियो-के पवित्र और उत्तम गुणोका दर्शन होगा।

६–राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय एकता—कुछ लोग यह तर्क भी उपस्थिन कर सकते है कि इस तरह की आर्थिक व्यवस्थासे गॉवके निवासियोमे सामाजिक एकताकी दृढ़ भावनाका उदय हो सकता है, लेकिन राष्ट्रव्यापी अथवा विश्वव्यापी आर्थिक एकताके दृढ़ सूत्रमे जन समाजको केवल मात्र बड़े पैमानेपर उत्पादन ही बॉधकर रख सकता है और इसीके द्वारा राष्ट्र तथा विश्वके बीच वास्तविक एकता और अन्योन्याश्रयका भाव पैदा हो सकता है। ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्था देश और विश्वको छोटे-छोटे अगणित टुकड़ोमे बॉट देगी। प्रत्येक आत्म-निर्भर होकर भी एक दूसरेसे असम्बद्ध रहेगे और एक दूसरेके साथ सहयोग करनेमे असमर्थ होगे? हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रसङ्ग की आलोचना करते हुए हमने इस प्रश्नके साम्प्रदायिक पहलूपर प्रकाश डाला है और शिक्षाके प्रसङ्गमे हमने यह भलीभॉति दिखला दिया है कि शिक्षा द्वारा विभिन्न गॉवके समुदाय राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीयताके बन्धनमे भलीभॉनि पिरोये जा सकेगे। यहॉपर दो शब्द सांस्कृतिक सम्बन्धमे लिख देना उचित होगा। यह कहा जाता है कि बड़े पैमाने-

पर उत्पादनमे अधिक संख्यामें लोग एक साथ काम करते है, इसलिए उनमें एकता और अन्योन्याश्रयका भाव अधिक मात्रामें उत्पन्न होता है। बड़े पैमानेपर उत्पादनसे जिन लोगोंको लाभ होता है उन लोगोमे इस भावनाका इतना व्यापक प्रचार हुआ है कि जनसाधारण भी इसमें विश्वास करने लग गये है। लेकिन यह सर्वथा सच है कि हमलोग पहलेकी अपेक्षा आज अपनेको ब्रिटेनके बहुत निकट समझने लगे है, इसका कारण यह है कि हमलोग ब्रिटेनके कल-कारखानोंके लिए कपास पैदा करते हैं और ब्रिटेनके कल-कारखाने हमारे लिए कपड़ा तैयार करते हैं। जापानके साथ भी यही बात है। इतना होनेपर भी जापानके साथ हमारा सांस्कृतिक सम्पर्क नहीं है। इसके प्रतिकूल यदि हमें अपने लिए वस्त्र उत्पादनकी स्वतन्त्रता होती तो सम्भव है कि सांस्कृतिक क्षेत्रमे हम ब्रिटेन तथा जापानके अधिक निकट होते और बराबरीके दावापर हमारा यह मेल होता। लेकिन आर्थिक क्षेत्रमें उनके अधीन होनेके कारण हमलोगोंके बीच मैत्रीके भावका उदय तो नही हुआ, वल्कि इसके विपरीत असहयोग, घृणा और शत्रुताका भाव ही अधिक देखनेमें आता है। दो राष्ट्रोंके बीच आर्थिक अधीनतासे मैत्रीका भाव उदय नही हो सकता, वल्कि सांस्कृतिक आदान-प्रदानसे ही यह सम्भव है। परस्पर प्रतिस्पर्धा न कर यदि हमलोग अपनी आवश्यकताके लिए खुद पैदा करते और यदि सांस्कृतिक आदान-प्रदानके लिए ही रेलें, हवाई जहाज, सामुद्रिक जहाज, सड़क तथा मोटरें हमलोगोंको एक दूसरेके सम्पर्कमे लानेका काम करतीं तो हम-लोगोंके बीच मैत्री, एकता, भ्रातृभावकी ज्यादा सम्भावना थी,

बनिस्बत इसके कि जब हम उत्पादन तथा उपभोक्ताके रूपमे आर्थिक व्यवस्थाके कारण एक दूसरेके सम्पर्कमे आ गये हैं। जापानकी अपेक्षा चीनके साथ हमारी अधिक सहानुभूतिका एक यह भी कारण है कि चीनके साथ हमारा किसी तरहका व्यापारिक सम्बन्ध नहीं है, लेकिन जापानके साथ है। इसलिए यदि हमलोग चाहते हैं कि विभिन्न राष्ट्रोंके निवासियोंके बीच सहयोग, एकता और मेल कायम हो तो यह आवश्यक है कि आर्थिक क्षेत्रमे उन्हे एक दूसरेसे अलग रखा जाय और उनके बीच केवल सांस्कृतिक सम्पर्क स्थापित किया जाय। भाव, ज्ञान, कला, आतिथ्य और यात्रा ये ही वस्तुएँ हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय हो सकती है लेकिन जहाँतक सम्भव और साध्य हो, प्रत्येक देश अपना ही बना माल अपने काममे लावें। उपर्युक्त भाव गांधीजीके नहीं है, बल्कि इन भावोंको व्यक्त करनेवाला ब्रिटेनका सबसे बड़ा अर्थशास्त्री श्रीकीन्स है।

विकेन्द्रित उत्पादन प्रणालीमे यह साध्य होगा। आर्थिक क्षेत्रमे जहाँतक सम्भव है एक दूसरेसे अलग और स्वतन्त्र रहकर भी वे लोग यातायातके आधुनिक साधनोंके उपयोगसे सांस्कृतिक मेल-मिलापके लिए देशके विभिन्न समुदायों और जातियोंसे स्वतन्त्र रूपसे मिलते रहेगे। प्राचीन युगमे प्रत्येक गाँव आर्थिक दृष्टिसे आत्मनिर्भर था और यातायातकी इतनी सुविधाये भी नहीं थीं तोभी सारे देशमे सांस्कृतिक एकता थी। आज भी विभिन्नताओंके होते हुए भी धर्म, दर्शन, सङ्गीत, नृत्य, नाटक, वास्तुकला तथा इस तरहके अन्य कामोमे देशभरमे एकताका राज्य देखनेमे आता है। एकताका यह राज्य आज

भी सारे देशमें उसी तरह कायम है जिसका दर्शन प्रत्येक प्रान्तके
निवासियोंके रहन सहन, वेषभूषा, रीतिरिवाज तथा आचार
विचारसे स्पष्ट दिखायी देता है। यदि इस विचारधारामे कि
अधिक सङ्गठनसे ही वास्तविक एकता कायम हो सकती है,
सत्यका थोड़ा भी अंश होता तो उपर्युक्त बातोंका हमें दर्शन न
मिलता। इसके विपरीत, जो कुछ हम दिखला आये है, वह यदि
सत्य है तो उसका उदय तभी हो सकता है जब हमारे विभिन्न
तत्व आर्थिक दृष्टिसे एक दूसरेसे स्वतन्त्र हो और एक दूसरेके
साथ उन्हे प्रतिस्पर्धा नही करना पड़ता है। तभी हममे वास्तविक
सांस्कृतिक एकता और राष्ट्रीयताका उदय हो सकता है। राष्ट्रीयता
के लिए शिक्षा, सांस्कृतिक सम्पर्कके लिए यातायातकी सुविधा
और समस्त राष्ट्रके कल्याणके लिए एक शासन हमलोगोको
एकताके सूत्रमे बाँधकर रखनेके लिए पर्याप्त है और हमलोगोके
राष्ट्रीय जीवनमे विभिन्नताके होते हुए भी एकताका भाव हममे
भर सकता है।

जो बात राष्ट्रीयताके लिए लागू है वही अन्तर्राष्ट्रीयताके लिए
भी सही है। अन्तर्राष्ट्रीयताका सच्चा भाव राष्ट्रोमे तभी उदय
हो सकता है जब वे एक दूसरेसे प्रत्येक बातमे स्वतन्त्र हो।
जबतक प्रत्येक राष्ट्र अपने पैरोंपर खड़ा नहीं हो सकता, तबतक
कोई भी सन्धि उपयोगी नहीं हो सकती; क्योंकि सबल राष्ट्र
दुर्बल राष्ट्रोंका उपयोग अपने लाभके लिए करता रहेगा इसका
परिणाम यह होगा कि सबल राष्ट्रोंमे इसके लिए सङ्घर्ष पैदा
हो जायगा। ऐसी अवस्थामे वास्तविक एकताकी आशा कैसे
की जा सकती है। यदि हमेशाके लिए नहीं तो बहुत कालतक

तो सभी राष्ट्र समान रूपसे शक्तिशाली नहीं बन सकते। समताके अभावमे किसी भी सच्चे अन्तर्राष्ट्रीय विश्वराजकी स्थापना नहीं हो सकती जो प्रतिनिधिके रूपमे सभी राष्ट्रोका नियन्त्रण कर सके। इस तरहकी व्यवस्थामे सबल राष्ट्रोका निर्बल राष्ट्रोपर प्रभुत्व कायम होना अनिवार्य है। सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रोमे सच्चा प्रेम तभी कायम हो सकता है जब प्रत्येकको अपने सामर्थ्यके अनुसार अपनी देखभाल करनेकी स्वतन्त्रता हो और दूसरेके काममे वे किसी तरहका हस्तक्षेप न कर सकें और सांस्कृतिक आदान-प्रदानके लिए ही मेल-जोल स्थापित करे अथवा उन बातोंके निर्णयके लिए जिनका असर सबके ऊपर समान रूपसे पड़ता हो। इसके प्रतिकूल वर्तमान युगकी अन्तर्राष्ट्रीयताका आधार बड़े पैमानेपर उत्पादन तथा अधिकारके लिए एकाधिपत्य-का लोभ है। इस तरहकी अन्तर्राष्ट्रीयता, वैयक्तिकता तथा स्वार्थपरताकी चरमसीमा है जो सर्वव्यापकता और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगका आवरण पहनकर विश्वको इस तरह विफल कर देनेका प्रयास करती है ताकि चन्द बड़े-बड़े उद्योग धन्धे वाले देश अन्य देशोंका आर्थिक शोषण करते रहे। सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयताका उद्देश्य यह होना चाहिये कि सबल राष्ट्र दुर्बल राष्ट्रोपर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके बजाय उसकी सहायता करे। उन देशोकी सबसे बड़ी सेवा यही होगी कि उन्हे अपना विकास करनेके लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय और जिस तरहकी सहा-यता वे खुद चाहे उसी तरहकी सहायता उन्हे उसी प्रकारसे दी जाय। इस तरहकी अन्तर्राष्ट्रीयता या सच्चा सहयोग और

आपसमें परस्पर सहायताके भावका उदय स्वदेशीके सिद्धान्तके आधारपर ही हो सकता है जिसका प्रतिपादन इस पुस्तकमें किया गया है। सच्चे स्वदेशीका सिद्धान्त यही है कि प्रत्येक देशको इस बातकी स्वतन्त्रता रहनी चाहिये कि दूसरेके अधिकारपर किसी तरहका हमला न कर वह अपना कारबार स्वतः देखे। सच्चे भ्रातृभाव, एकता तथा सद्भावनाका उदय उनके बीच तभी हो सकता है जब प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रको स्वतन्त्र छोड़ दे और यह तबतक सम्भव नहीं है जबतक प्रत्येक देश केवल अपनी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए ही उत्पादन नहीं करने लगेगा और एक दूसरेकी सहायताके लिए तत्पर नहीं रहेगा।

७—अहिंसात्मक शक्ति शान्ति तथा स्वतन्त्रता:—अपने देशवासियोंके आर्थिक जीवनके पुनः निर्माणके काममे सफलता प्राप्त करनेके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि पूँजीवाद या समाजवाद द्वारा प्रतिपादित बड़े पैमानेपर उत्पादन या वस्तुओंकी बहुलता की ओर हम आकृष्ट न हों। यदि हम अपने देशमे सच्ची शक्ति, शान्ति और स्वतन्त्रता कायम करना चाहते है तो हमे अपने तरीकेसे काम करना होगा। वह तरीका विकेन्द्रीकरणका तरीका है। विकेन्द्रीकरण प्रणालीमे सारा अधिकार जनताके हाथमे रहता है और अपनी सारी आवश्यकताओंकी पूर्ति उन्हे आप-से-आप करनी पड़ती है। यह हमारे देशकी भौगोलिक अवस्था तथा सांस्कृतिक परम्पराके ही अनुकूल नही है, बल्कि इससे जनतामे वास्तविक शक्तिका उदय होता है और शान्ति तथा स्वतन्त्रताकी स्थापना होती है।

क्योंकि एक तरफ जब लोग अपने कामकी देख रेख स्वयं करने लगेगे—यह काम आत्मनिर्भर छोटे जमातमे ही पूरी तरह सम्पन्न हो सकता है—और अपने दैनिक जीवनकी सारी आवश्यकताओ-की पूर्तिके लिए अपने प्रयास और बुद्धिपर निर्भर रहने लगेगे तभी वे साधनसम्पन्न, आत्मनिर्भर तथा शक्तिशाली हो सकते है और दूसरी ओर यही एकमात्र उपाय है जिससे युद्ध और लूट-खसोटका अन्त हो सकता है।

जब किसी देशके लोग आत्म-निर्भर और शक्तिशाली हो जाते है तो उस देशके शासनके लिए उन्हे युद्धमे प्रवृत्त करना सहज नही होता क्योकि यदि उनमे युद्धमें प्रवृत्त होनेसे इनकार करनेकी क्षमता है या युद्धके लिए सामग्री देनेसे इनकार करनेकी क्षमता है तो शासक लाचार हो जायगा। किसी भी देशकी जनता युद्धको पसन्द नहीं करती क्योंकि युद्धका सारा व्यय और प्राणोकी आहुति उसे ही देना पड़ता है, इसलिए यदि उनका वश चले तो युद्धको असम्भव कर दे। लेकिन वर्तमान केन्द्रित उत्पादन-प्रणाली और तज्जनित केन्द्रित शासन-प्रणालीके कारण जनता सीमाके भीतर वन्द है और उसे अपनी शक्तिपर विश्वास नही है। इसलिए दण्डका भय दिखाकर उन्हे दवाना शासनके लिए आसान है। वह गलत प्रचारो द्वारा उन्हे उस-काती है और उनकी इच्छाके खिलाफ उन्हे लड़नेके लिए अनिवार्य रूपसे वाध्य करती है। इस तरह जबतक लोग दुर्वल और अधीन वने रहेगे, वे लोग उन कतिपय अधिकार-लोलुपो ? जिनके हाथमे शासनकी वागडोर है—की तरकीबोके शिकार वनते रहेगे और इसी तरह अपने प्राण गॅवाते रहेगे। विकेन्द्री-

करण ही एक ऐसी प्रणाली है जहाँ अपनी सारी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए अपने ऊपर निर्भर रहकर लोग शक्तिशाली, साहसी और आत्मनिर्भर वन सकेंगे और जो शासन उनकी इच्छाके विरुद्ध उन्हें युद्धमें भेजना चाहेगा, उसे कोरा जवाब दे देंगे। हम पीछे दिखला आये है कि केन्द्रीकरण-प्रणालीमे सारा अधिकार शासनके हाथमे केन्द्रित हो जाता है और जनता हर तरहसे लाचार और कमजोर हो जाती है और विकेन्द्रित प्रणालीमें जनता हर तरहसे शक्तिशाली हो जाती है और शासन शक्तिहीन हो जाता है। समय पाकर शासनका अन्त भी हो सकता है। शासन ही जनताको युद्धके लिए प्रेरित करता है, इसलिए शासन जितना ही शक्तिहीन होगा उतनी ही शान्तिपूर्वक जनता रह सकेगी।

दूसरे जहाँ उत्पादन छोटे-छोटे दायरेमे ग्राम-औजारो द्वारा होगा, वहाँ विश्वशान्तिके लिए भी किसी तरहका खतरा नहीं होगा क्योंकि उनके कारखानोका उपयोग शस्त्र तैयार करनेके काममें नहीं हो सकेगा। दूसरे विश्वशक्तिको भङ्ग करनेके लिए उन्हे प्रोत्साहनका भी कोई साधन नहीं रहेगा क्योंकि विकेन्द्रित प्रणालीमें न तो उन्हे दूसरोंसे कच्चा माल लेनेकी जरूरत होगी और अपने तैयार मालको बेचनेके लिए बाजार की ही। उनका पड़ोस ही उनके कामके लिए पर्याप्त होगा।

तीसरे जब गाँव अपनी सारी प्रारम्भिक आवश्यकताओंके लिए अपने ही ऊपर निर्भर करने लगेंगे तो इतनेसे ही वे पूँजीपतियों अथवा साम्राज्यवादियोंके लूट-खसोटसे मुक्त हो जायँगे। दूसरोंके सामने हमे तभी सिर झुका देना पड़ता है और उसके

द्वारा लूटे जानेके लिए मजबूर होना पड़ता है जब हमारा काम उन चीजो बिना नही चलता जो उसके अधिकार मे है चाहे वह जमीन हो, रुपया हो, आवश्यक सामान हो मशीन हो अथवा रेल हो। लेकिन जब अपनी सारी आवश्यकताके लिए हम अपने ही साधनोपर निर्भर करेगे तब हम आसानीसे लूटनेवालोका प्रतिरोध कर सकेगे।

विकेन्द्रीकरण द्वारा जनताको लूटे जानेसे मुक्त कर देनेके बाद प्रत्येक गॉव या गरोहको अपनेको पूर्ण बनाना बहुत ही सरल हो जायगा, बनिस्बत इसके कि वह काम बड़े पैमानेपर देशव्यापी या विश्वव्यापी व्यवस्था द्वारा किया जाय। जिस तरह स्टालिनने साम्यवादको एकबारगी विश्वमे नही फैलाकर रूसमे ही उसे केन्द्रित करना अधिक उपयोगी समझा, उसी तरह, जैसा कि हम पीछे लिख आये हैं, इस समष्टिवाद या सहयोग आर्थिक व्यवस्था को गॉवोके सङ्गठित दलतक ही सीमित रखना कहीं व्यावहारिक होगा। समष्टिवाद इस तरह विकेन्द्रित हो जानेपर कही ज्यादा क्रान्तिकारी होगा अर्थात् वर्तमान आर्थिक व्यवस्थाको वह तुरन्त उलट देगा और जनताको लूट-खसोट तथा गुलामीसे मुक्त कर देगा। उतनी शीघ्रता तथा उत्तमतासे मार्क्सवादका शस्त्रयुक्त साम्यवाद भी उसे सम्पन्न नही कर सकेगा क्योकि विकेन्द्रित होनेके कारण इसकी स्थापना अपने ही प्रयाससे विभिन्न ग्राम इकाई आपसे आप कर सकेगी। जो आजादी गॉवके लोग अपने बल और प्रयाससे प्राप्त करेगे उसे वे कायम भी उसी तरह रख सकेगे। इसके प्रतिकूल जो आजादी क्रान्तिकारी षड्यन्त्र द्वारा प्राप्त की जायगी

वह कायम नहीं रह सकती क्योंकि षड्यन्त्र शक्तिका द्योतक नहीं है। इसके द्वारा तो एककी गुलामीसे मुक्ति पाकर दूसरेकी गुलामीमें फँस जाना होगा। उदाहरणके लिए पूँजीपति या साम्राज्यवादियोंकी दासतासे मुक्ति पाकर शक्तिशाली साम्यवादी राजकी गुलामी करनी होगी।

ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्थामें सफलता निहित है, और इसका परिणाम भी स्थायी होगा। इसे एक बार प्रयोगमें लानेसे ही जनताकी दासतासे मुक्ति हो जायगी। संसारके सभी पद-दलितोंके लिए यह व्यावहारिक शिक्षा होगी। पूँजीवादी, साम्राज्य-वादी, फासिस्टवादी, साम्यवादी सभी शक्तियोंके भारसे दबी जनता इससे शिक्षा ग्रहण कर बिना रक्तपातके ही अपने कन्धेपरका बोझ उतारकर फेंक देगी। इसलिए यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्थामें असीम शक्ति निहित है।

उपसंहार

है कि वह ऐसी आर्थिक व्यवस्था कायम करे जिसमे उत्पादन तथा उपभोगकी ऐसी व्यवस्था हो जिससे उसके निवासी शक्तिशाली बने और अपना देखभाल स्वयं कर ले ताकि न तो उन्हे दुर्बलों को लूटनेकी आवश्यकता पड़े और न शक्तिशाली राष्ट्रोंके साथ युद्ध करनेकी ही आवश्यकता पड़े। ग्रामोद्योग आर्थिक व्यवस्थाके सिद्धान्त इन्ही बातोंको दृष्टिपथमे रखकर स्थिर किये गये है। विकेन्द्रीकरण द्वारा जब जनताको शक्ति और साहस सञ्चय करने तथा आत्मनिर्भर बननेका अवसर मिलेगा और जब स्वदेशी द्वारा वे सहयोग तथा अपने पड़ोसियोकी सहायता करना सीख जायँगे, तब लूटखसोट तथा दासतासे उन्हे ही मुक्ति नही प्राप्त होगी बल्कि विश्वसे समस्त प्राणीके लिए मुक्ति प्राप्त करनेके वे साधन बनेगे। इस तरहकी प्रणालीमे हमारी भौतिक आवश्यकताओके साधन भले ही सीमित रहे लेकिन हमलोग सुव्यवस्थित आर्थिक प्रणालीके आधारपर स्थायी शान्ति और अहिसा स्थापित कर सकेगे।

इसके लिए जो उपाय काममे लाने होगे वे अत्यन्त सरल है। इसे पूरा करनेके लिए हिसापूर्ण संगठित क्रान्तिकी आवश्यकता नही है बल्कि अहिंसात्मक विकेन्द्रित प्रणालीकी जो प्रत्येक नागरिकके सद्भाव और विचार-बुद्धिपर कायम होगा। हमे प्रत्येक गॉवको उत्पादन तथा उपभोगके लिए आत्मनिर्भर बनना पड़ेगा।

यदि इस देशके प्रत्येक निवासी—चाहे वे शहरोमे बसनेवाले हो या गॉवोमे—यह निश्चय कर ले कि वे विकेन्द्रित आर्थिक प्रणाली द्वारा तैयार माल ही खरीदेगे और काममे

लावेंगे तो इस आर्थिक व्यवस्थाको शीघ्र ही कायम किया जा सकता है। यदि हमलोग यह चाहते है कि हमारे देशसे दरिद्रता दूर हो और हम शक्तिशाली, संगठित, स्वतन्त्र और आत्म-निर्भर राष्ट्र बनें और आज या कभी किसी विदेशी शक्तिके सामने सिर नहीं झुकावे तो उसकी दवा हमलोगोके ही हाथमें है अर्थात् जहाँतक हो ग्रामोद्योगको प्रोत्साहन दे, ग्रामोद्योग द्वारा उत्पादित वस्तुओंका ही व्यवहार करे, और गाँवको आत्मनिर्भर बनावे। यदि स्वयं काम करनेकी क्षमता न हो तो कम-से-कम हमें यह प्रतिज्ञा तो कर लेनी चाहिये कि हम उन्हीं वस्तुओंको काममें लायेगे जो हमारा पड़ोसी गाँव तैयार करता है। हमारे इतना कर लेनेके बाद कोई भी विदेशी शक्ति हमें अपने अधीन रखना नहीं चाहेगी, क्योंकि हमारे कच्चे माल तथा बाजारके लिए ही विदेशी शासन हमपर चढ़ाई करेगा। यदि कोई विदेशी शक्ति हमारे ऊपर चढ़ाई भी करे तो अपना प्रबन्ध आप कर लेनेसे लोगोमे इतनी शक्ति आ जायगी, हमारे पास पर्याप्त साधन हो जायेंगे कि हमलोग साहस और अहिंसा द्वारा उसका मुकाबला कर उसके प्रयासको व्यर्थ कर देंगे।

इसी तरहके अहिंसात्मक उपाय द्वारा हमलोग अपनेको स्वतन्त्र, व्यवसायी और सम्पन्न बना सकेंगे। हमारा जीवन भले ही सादा हो; लेकिन हमारे विचार ऊँचे होंगे। यही हमारी प्राचीन सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक परम्पराके अनुकूल होगा। इसी तरह हम वैभव तथा अधिकारके लिए उन्मत्त तथा संघर्ष और युद्धमें जर्जर विश्वको स्थायी सुख, शान्ति, स्वतन्त्रता, उन्नति तथा परस्पर सद्भावना मार्ग दिखला सकेंगे।

अपील

अपनी बातके समर्थनमे हमने ऊपर जो दलीले पेश की हैं वे कायल करनेवाली हो या नही, लेकिन प्रत्येक व्यक्तिको यह स्वीकार करना पड़ेगा—चाहे भविष्यके लिए वे देशमे जो भी आर्थिक व्यवस्था कायम करना चाहते हो—कि जब हमारे देशके लोग भूख और बीमारीसे घुलघुलकर मर रहे है, और हम शासनको इनकी अवस्था सुधारनेके लिए बाध्य करनेमे असमर्थ है तो हम जो कुछ कर सकते है वह यही है कि जो भी सीमित साधन उन्हे उपलब्ध है, उनका भलीभॉति उपयोग कर हम देहातोको थोडा भी सुखी बनानेका प्रयत्न करे। इतना तो सभी स्वीकार करेगे कि यदि जनसमुदाय—जिसका बहुत बड़ा भाग गॉवमे रहता है—उपयोगी काममे नही लगाया जा सका और वर्तमान सभ्य जीवनका आंशिक लाभ भी उन्हे नहीं मिल सका तो राजनीतिक स्वतन्त्रताका हमारे लिए कोई मूल्य नहीं होगा। इसलिए व्यर्थके विवादमे समय नष्ट न कर हमे काममे लग जाना चाहिये। वर्तमान दशामे हम जो भी थोड़ा कर सकते है, उसे सम्पन्न करें और आगे जो होनेवाला है उसे भविष्यके लिए छोड़ दे। हमे सुदूर भविष्यको देखनेकी जरूरत नही है। अगला कदम ही हमारे लिए पर्याप्त होगा। हम जो कुछ कर सकते है, उसका निर्देश हमने इस पुस्तकमे कर दिया है। जिसके लिए जो कार्यक्रम अनुकूल हो वह उसे अपने हाथमे लेले—चाहे वह गॉवकी सफाई और स्वास्थ्य, खूराक, शिक्षा, सामाजिक सुधार, अछूतोद्धार साम्प्रदायिक एकता, महिलाओका सुधार, सहयोग, बालशिक्षा, युवक-आन्दोलन,

आमोद-प्रमोद, साहित्य, कला, धर्म, कृषि, उद्योगका काम हो। बाकी सब काम समयपर आप-से-आप हो जायगा। कामका क्षेत्र व्यापक और बहुविध है और सभी ज्ञातियों, सम्प्रदायों तथा राजनीतिक दलोंको उसमे योग देनेकी आवश्यकता और गुंजा-यश है। हम लोगोंमे इस बातपर मतभेद हो सकता है कि देशका अन्तिम कल्याण किस उपायसे होगा। लेकिन भविष्यमे क्या होना चाहिए, इसीपर लड़ते रहकर हमे वर्तमानको नहीं छोड़ देना चाहिये। गाँवमे रहनेवालोंके प्रति हमारा जो कर्तव्य है उससे विमुख होना हमारे लिए उपयुक्त नही है।

परिशिष्ट

गाँवोंकी एक इकाईके विकासकी योजनाका नमूना

इलाका पोहरी (ग्वालियर)

प्रस्तुतकर्ता—जे० बी० मालङ्कर

१—इस गाँवोमे प्राकृतिक साधन और उनकी वर्तमान अवस्था

स्थिति :—ग्वालियर राज्यके पोहरी जागीरके शिक्षा और व्यावसायिक केन्द्र किसनगञ्जके आसपास ये दसो गाँव हैं। शिवपुरी रेलवे स्टेशनसे २० मील पूरब ये गाँव पड़ते है। स्टेशनसे पोहरीतक बसे भी जाती हैं।

जलवायु :—जलवायु विपम है। गर्मीमे बहुत ज्यादा गर्मी और जाड़ेमे बहुत ज्यादा सर्दी पड़ती है। प्रतिवर्ष ३० से ३५ इञ्चतक पानी बरसता है।

क्षेत्रफल :—इन गाँवोकी कुल भूमिका क्षेत्रफल १३,९५८ बीघा है, जो इस प्रकार है :—

जोतमें भूमि	बीघा	बीघा
कुँओंसे जिनकी सिंचाई होती है	११२	
तालावोसे ,, ,, ,,	५५·३	
बिना सिंचाईके	४७३२·२	
परती	६७४·५	५५७३·१०

जोतने लायक परती :—

अच्छी	६८५·०	
साधारण	२०००·०	
खराब	४७५९·१५	७४४४·१५
विशेष कामके लिए		
आबादी	७६·१७	
कब्रिस्तान	३०·१२	
रास्ता, सड़क	२२९·९	३३६·१८
ऊसर, नाला वगैरह	६०३·१५	६०३·१५
	कुल जोड़	१३६५८·१८

जनसंख्या :—१९१३ मे कुल जनसंख्या इस प्रकार थी :—

१—नयागाँव, कटरा, किसनगञ्ज	...	६३८
२—जाखनद	...	४२१
३—ग्वालीपुरा	...	२६४
४—बेहटा—	...	१६२
५—बेहटी	...	१५१
६—सोनीपुरा	...	६१
७—कोद	...	१८६
८—रनधीर	...	६५
९—बगदिया	...	३५
१०—चरईपुरा	...	

इन गाँवोंमें प्रधानतया किरार जातिके लोग बसते है, जिनका प्रधान पेशा खेती है। कुछ ब्राह्मण, गड़ेरिया, चमार, कुम्हार, तेली, नाई, बसोर (धरकार) माझी, दर्जी, बढ़ई और भील भी हैं। इने-गिने लोग बढ़ईगिरी, कुम्हारी, बुनाई तथा चपड़ेके काम करते हैं। बाकी लोगोंका निर्वाह खेतीसे होता है। दूसरे पेशोंमे लोग भी थे, लेकिन उससे कोई लाभ न होते देख उन्हे छोड़ देना पड़ा। इसलिए खेतीपर अधिक बोझ पड़ गया है।

पेशोके हिसाबसे जनसंख्याका बँटवारा :—

किसान	१२०२
मजूर	४०१
नौकरी पेशेमे	३१०
जोड़	१९१३

पशुधन और दूध

पशु	जोड़
गाय	५११
भैंस	३६१
बैल	७८३
बछड़े	८५६
बकरे	८७५
भेड़े	२१०
जोड़	३५९६

दूध देने वाले पशु		दैनिक औसतदूध
गाय	१३०	प्रतिगाय १ सेर
भैस	६०	,, भैस २½ सेर

पशुओकी दशा दयनीय है। एक गॉवमें दो सॉड है, लेकिन ये अच्छी जातिके नहीं है। साधारण देहाती सॉड़ और भैसासे गाये और भैंसे जोड़ा खाती हैं। चूँकि खली या चूनी उपलब्ध नही है और सालके किसी भी मौसममे गायोंको हरा चारा नही दिया जाता इसलिए वे दूध बहुत ही कम देती है। एक गाय औसतमें एक सेर और एक भैस ॥ सेर ही दूध देती है। जानवरोका कद भी छोटा होता है।

भूमिका वर्गीकरण :—

कछार या सिचाईके खेत :—गेहूँ तथा ऊख वगैरहकी खेतीके योग्य।

तरी खेत :—धान वगैरहकी खेतीके योग्य।

भार :—गेहूँ, मकई वगैरहकी खेतीके योग्य।

गोदो :— ,, ,, ,,

पुठ :—दलहनकी खेतीके योग्य।

डण्डा :—तेलहन वाजरा आदि फसलोकी खेतीके योग्य।

जोतनेके लायक परती जमीन ६८५ बीघा है। जो भार और कछार है। २००० बीघा खराब जमीन पुठ और डण्डा है। ४७०० बीघा अतिशय खराब जमीन मोरम या पथरीली है। पत्येक किस्मकी जमीनमे उर्वरा शक्ति बहुत कम है।

औसत पैदावार और क्षेत्रकी औसत आमदनी—

फसल	प्रति बीघा पैदावार मनोंमें	औसत खेत बीघोंमें	कुल पैदावार मनोंमें	कीमत प्रति मन	कुल आमदनी
ज्वार	५	१६८५	८४२५	६	५०५५०
गेहूँ	६	११९२	७१५२	९	६४३६८
तिल	२½	३६१	९०½	१४	१२६३५
दाल	४	३७८	१५१२	६	९०७२
चना	६	७९	४७४	६	२८४४
तीसी	५	३०४	१५२०	१०	१५२००
मूँगफली	५	१७९	८९५	७	६२६५
धान	७	९२	६४४	६	३८६४
बाजरा	४	४८	१९२	६	११५२
मक्का	४	७१	२८४	५	१४२०
जगरी	२२	८८	१९३६	९	१७८२४
कपास	२	६०	१२०	१०	१२००
अन्य	४	३६७	१४६८	७	१०२७५
				जोड़	१९६६६९

भिन्न-भिन्न फसलोंका कुल पैदावार मनोंमें :—

अन्न	..	१७११७
दाल	..	२०५४
तेलहन	...	२९२२½
जगरी	..	१९३६
कपास	...	१२०
पाट	...	१००
अम्बादी	...	...

मसाला	...	३५०
तम्बाकू	...	३५
तरकारी	...	२१५

खेतीपर व्यय :—

		रुपया
मालगुजारी कुल	...	६१००
हरौत कर	...	९००
खेतिहर मजूरोंका वेतन	...	१०,०००
बोआड़ेका खर्च ४) प्रतिबीघा	...	२०,०००
७८३ बैलोंपर खर्च ≡) प्रतिबैल प्रतिदिन		५०,०००
औजारोंकी मरम्मत	...	६००
बाजारोंमें गल्ला ले जानेका खर्च	...	१०००
खेतीपर कुल खर्च	...	९१,६००
कुल आमदनी	...	१,९६,६६९
खेतीसे कुल बचत	...	१०५०६९

खेतीपर निर्भर करनेवाली जनता अपने मातहतोंके साथ १६०३ है। इस तरह इनकी आमदनी प्रतिव्यक्ति प्रतिमास ५।≡)। हुई। बाकी जनसंख्याकी आमदनी नौकरी तथा गृह-उद्योग आदिसे ५) रु० प्रतिव्यक्ति प्रतिमास है। इस तरह समूची जनसंख्याकी औसत आमदनी प्रतिमास प्रतिव्यक्ति ५।=) होती है।

शिक्षा :—

१९१३ की जनसंख्यामें केवल ८७ व्यक्ति साक्षर हैं। इस

तरह पुरुषोमे साक्षरता ५·५ और औरतोमे ३ सैकड़े है।

भोजन :—भोजनकी सामग्री बहुत ही साधारण है। लोगोंका प्रधान भोजन अधिकतर ज्वार और थोड़ा गेहूँ है।' घी और दूधका प्रायः अभाव ही रहता है। यदा-कदा घी-दूध मिल जाता है। बरसातके दिनोमे साधारण किस्मकी तरकारियाँ मिल जाया करती है। फलका तो दर्शन भी नहीं होता।

वस्त्र :—वस्त्रकी व्यवस्था नितान्त दयनीय है। बहुतोंके पास तो स्नानके बाद बदलनेके लिए भी दूसरा वस्त्र नहीं होता। सर्दसे रक्षा करनेके लिए पर्याप्त बिस्तरका भी प्रबन्ध नहीं कर सकते।

मकान:—गाँवोमे पुराने चालके घर है। बनावट बेढङ्गी है। कहीं-कहीं तो घर एक दूसरेसे इतने सटे है कि उनमे स्वच्छ हवा भी प्रवेश नहीं पा सकती। घरके गन्दे पानीके निकलनेका भी कोई प्रबन्ध नहीं है। घर इतना छोटा है कि परिवारके सभी प्राणियोंके रहनेके लिए जगह नहीं है। सफाईका कोई प्रबन्ध नहीं है। सड़कका तो नितान्त अभाव है।

खाद :—न तो वे खाद बनाना जानते है और न उस खादका ही उपयोग करते हैं जो उन्हे उपलब्ध है।

सफाई :—सफाई नामकी कोई वस्तु वहाँ नहीं है। जैसे सफाईका उन्हे ज्ञान ही न हो। बरसातमे गलियाँ सड़े पानी तथा कीचड़से भरी रहती है। पीनेके पानीके लिए कुएँ बने है लेकिन उन्हे भी साफ रखनेकी चिन्ता नहीं की जाती। गाँवके आस-पासकी भूमिको भी साफ रखनेकी किसीको फिक्र नहीं है।

चिकित्सा :—पोहरीमे एक दवाखाना है। उसमे एक कम्पा-

उण्डर और दो वैद्य है। डाक्टरकी जगह खाली है। लेकिन अस्पतालमें दवाओंका अभाव है और उससे देहातियोंको कम सहायता मिलती है। लोग शक्की स्वभावके है इसलिए दवाओंका प्रयोग बहुत ही कम करते है। माता छापनेका भी प्रबन्ध है पर पशुओंके लिए कोई अस्पताल नहीं है।

यातायात :—सबसे निकट बाजार शिवपुरी है। लेकिन अधिकांश लोग अपना माल बनियों तथा पोहरी अथवा भटनारके महाजनोंके हाथ बेच देते है। गॉवके बगलमे होकर दो पक्की सड़कें गयी है। सभी गॉव पक्की सड़कके निकटवर्ती हैं। पोहरी फोर्टमे एक शाखा डाकघर भी है।

ऋण :—युद्धके कारण अन्नका भाव बढ़ जानेसे कर्जका बोझ बहुत हल्का हो गया है। पुराने कर्जका केवल ४० सैकड़े देनेके लिए बाकी रह गया है।

फलके पेड :—जखनाद तथा किसनगंजमे दो-चार अमरूदके पेड़ है, अन्यथा किसी भी गॉवमे फलका कोई पेड़ नही है।

खेतीकी वर्तमान दशा और उन्हे उपयोगी बनानेके साधन :—खेतीके लायक ७४४५ बीघा जमीन परती है। उसमे ६८५ बीघा अच्छी जमीन है। करीब २००० बीघा खराब है। लेकिन प्रयत्न करनेसे उसमे भी कुछ-न-कुछ खेती हो सकती है। बाकी ४७६० बीघा जमीन पथरीली और ऊबड़-खाबड़ है। उसमे खेती नहीं हो सकती।

तालाब :—कुल ८ तालाब हैं। ३ पोहरी फोर्टके निकट, १ किसन गञ्जमे, २ जखनादमें, १ बरईपुरामे और १ रनवीरमें। जखनादके एक तथा बरईपुरके एक तालाबको छोड़कर बाकी

सब सिचाईके काम लायक नहीं है। जिन दोका सिचाईके काममे इस्तेमाल किया जाता है, उनकी भी सफाईकी जरूरत है।

कुआ :—कुल ८७ कुँए है। उनमेसे १३ सूख गये है और अवतर हालतमे है। १४ सिर्फ पीनेके पानीके काममे आ सकते है। वाकी ६० कुँए सिचाईके काम लायक हैं।

सड़क :—दो पक्की सड़के हैं। एक सिवपुरसे शिवपुरी जाती है और दूसरी पोहरीसे मोहना जाती है। दोनोकी हालत अच्छी है। ये दसो गाँव सड़कके किनारे है। किसीका फासला सड़कसे ४ फर्लाङ्गसे ज्यादा नहीं है। सबोका फासला जोड़ देनेपर सड़कसे तीन मीलकी दूरी हो जायगी।

शिक्षाकी सुविधा—आदर्श विद्यालयमे हाई स्कूलतककी पढ़ाई होती है। संस्कृतकी शिक्षाकी भी स्कूलमे व्यवस्था है। स्कूलके साथ छात्रवास भी है। स्कूलमे बढ़िया पुस्तकालय भी है। व्यायामशाला भी है।

ग्रामकला-मन्दिर :—ग्रामकला-मन्दिरमे ग्रामोद्योगकी शिक्षाकी सुविधा है। वहाँ कताई, बुनाई, रँगाई, कागज बनाना, सलाई वनाना, मधुमक्खी पालना तथा ऊनी कपड़ा बनानेकी शिक्षा दी जाती है। लेकिन गाँवमे बहुत ही कम लोग है जो गृह-उद्योगसे कुछ कमाते हैं।

२—योजनाकी पूर्ति :—हमारी योजनाका प्रधान उद्देश्य गाँववालोंको भौतिक तथा आध्यात्मिक समृद्धि प्रधान करना है। एकतर्फा विकाससे यह सम्भव नहीं है। केवल उनकी रहन-सहनको ऊँचा कर देनेसे हमारे उद्देश्यकी सिद्धि नही हो सकती भौतिक विकासके बिना आध्यात्मिक और चारित्रिक उन्नति

सम्भव भी नही है। गरीबीके कारण ही लोगोंमें बेईमानी घुस गयी है। और बेईमान हो जानेके कारण ही वे दरिद्र हो गये है। इस तरह यह गोलाकार हर तरफसे बुरा है और इसपर हर तरफसे प्रहार करना होगा।

बुनियादी मापदण्ड :—प्रत्येक व्यक्तिके लिए कम-से-कम इतना होना चाहिये :—(१) पर्याप्त पोषक भोजन (२) शरीरको ढकने तथा उसकी रक्षाके लिए पर्याप्त वस्त्र (३) प्रत्येक व्यक्तिके लिए १०० वर्ग फुटके हिसाबसे घर (४) पूर्ण शिक्षाका साधन (५) चिकित्साकी सुविधा, स्त्रियों तथा बच्चोंके लिए भी दवा-खाना (६) डाक तथा यातायातकी सुविधा।

भोजन :—पोषक पदार्थयुक्त भोजनकी सामग्री इस प्रकार होनी चाहिये :—

वस्तु	प्रति व्यक्ति प्रतिदिन	मूल्य	२००० व्यक्तियोंके लिये सालभरके लिये मनोंमें
अन्न	½ सेर	०–२–६	९०००
दाल	३/३२ ,,	०–०–९	१६८७½
तरकारी	५/१६ ,,	०–०–६	५६२५
घी तेल	१/१६ ,,	०–२–०	११२५
दूध	१/४ ,,	०–१–०	४५००
फल	१/१६ ,,	०–०–६	११२५
मीठा	१/१६ ,,	०–०–६	११२५
लकड़ी		०–०–३	...
		०–८–०	प्रति व्यक्ति प्रतिदिन

प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष ३० गज कपड़ा चाहिये। इस तरह २००० लोगोके लिए ६०,००० गज कपड़ेकी जरूरत होगी।

३—विकासका सगठन :—उनके पास कोई भी साधन नही है जिससे वे अपना विकास या उन्नति स्वयं करनेके लिए कोई संगठन कर सके। उनमे इस तरहकी योग्यता भी नही है कि विकासके अनेक कामोका संचालन कर सके या विकासके साधनोको प्रस्तुत कर सके। इसलिए इस बोझको राज या समाजको अपने ऊपर लेना होगा और उनके पूर्ण विकासके लिए विविध उद्योगोका प्रबन्ध करना होगा।

सबसे पहले तो दस गॉवोकी इस इकाईमे चतुर और जानकार लोगोकी ऐसी संस्था होनी चाहिये जो इनके लिए ऐसी योजनाएँ तैयार करते रहे जिससे इनकी कम-से-कम आवश्यकताओकी पूर्तिका प्रबन्ध हो जाय। इस तरहकी संस्थाके लिए (१) एक अध्यक्षकी जरूरत है जो आदर्शसेवा संघका सभापति हो, (२) एक संगठनकर्ता जो संघका मन्त्री हो (३) कृषिके दो पूर्ण जानकार (४) पशुपालन तथा डेयरीमे एक पूर्ण जानकार (५) गृह उद्योगके एक जानकार (६) सहयोग-समितिकी पूरी जानकारी रखनेवाले एक व्यक्ति (७) वर्धा शिक्षा-प्रणालीके आधारपर शिक्षा देनेवाले एक व्यक्ति (८) एक डाक्टर तथा स्वास्थ्यकी शिक्षा देनेवाले (९) एक जानवरोके डाक्टर।

इस संस्थाका नाम होगा "किसनगंज इकाई विकास संघ।" इस संघका प्रधान कार्यालय नन्दन कानन कालेज भवनमे होगा। गॉवके बीचोबीच इसके अधीन आदर्श खेतीके लिए भूमि, गोपालनके लिए भूमि, शिक्षालय, स्वास्थ्य, सहयोग

समिति, तथा गृह उद्योगकी शिक्षाके साधन रहने चाहिये। इन समस्त उद्योगोको प्रधान कार्यालयके पास ही केन्द्रित नहीं करना चाहिये। इस तरहकी केन्द्रित संस्थाओंमें यही दोष पाया जाता है। उन्नतिकी प्रत्येक संस्था अलग-अलग रहनी चाहिये और सबको मिलाकर गाँवकी तरक्कीकी व्यवस्था करनी चाहिये। इस बातपर सदा ध्यान रखना चाहिये कि इन गाँवोकी उन्नतिके लिए जो योजना बनायी जाती है उसका पूरी तरह पालन होता है। सेवासंघने इतनी विस्तृत योजना तैयार कर गाँवको कितना लाभ पहुँचाया है इसकी जाँच गाँववालोकी आर्थिक, शिक्षा-सम्बन्धी, स्वास्थ्य तथा सामाजिक उन्नतिसे हो जायगी।

कार्यकर्ताकी योग्यता :—कार्यकर्ताओंका चुनाव बडी साव-धानीसे होना चाहिये। भिन्न-भिन्न कामोकी योग्यताके अलावा इस बातपर भी ध्यान देना होगा कि उनमें सेवाका भाव भी वर्तमान है।

आदर्श कृषिके खेत :—आदर्श खेतीका काम ट्रेनिङ्ग कालेजके भवनके पास ही होना चाहिये। आरम्भ करनेके लिए चालीस बीघा भूमि पर्याप्त होगी। नयी नयी फसले, उत्पादनके लिए खोज तथा किसानोको अच्छे बीज देना आदर्श कृषि विभागका प्रधान काम होना चाहिये। इसके अलावा एक छोटा प्रयोग-शाला, बीजगोदाम तथा नये औजारोका प्रबन्ध भी वहाँ होना चाहिये।

किसी भी नयी फसलका प्रयोग पहले आदर्श खेतीमें करके तब किसानोमे उनका प्रचार होना चाहिए। प्रयोग सीधे-सादे औजारो तथा ऐसे साधनो द्वारा होना चाहिए जिसे किसान

सहजमे अपना सकें। खर्चीले औजार तथा खर्चीले साधनोंका प्रयोग किसानोंके साधनके बाहरकी बात है। इस तरहका कोई प्रयोग वह अपना नही सकता। इसलिए खेतीके उन्नत तरीकोंका प्रचार किसानोंमे करनेके लिए यह परम आवश्यक है कि आदर्श खेतीमें जो प्रयोग किये जायँ वे सहज और किसानोंके साधनोंके भीतर हो ताकि वह उन्हे अपना सकें।

प्रायः गाँवोमे बाग या फलके पेड़ नही होते। इसलिए आदर्श खेतीमे ऐसे फलोंके कलम तैयार किये जाने चाहिए जो गाँवके उपयुक्त हो और साधारण मूल्यपर गाँववालोको दिये जा सके और इस बातकी देख-रेख करनी चाहिए कि किसान अपनी जमीनमे उचित तरीकेसे उन्हे रोपता है।

सङ्गठनका कार्यक्षेत्र :—

कृषिमे सुधार :—(१) खेतोकी सुविधा (२) बढ़िया खाद (३) सिचाई (४) सहयोगके आधारपर खेती और गल्लेकी बिक्री। कृषिकी उन्नतिके ये ही प्रधान साधन है।

(१) खेतीकी सुविधा :—कृषि-विद्या-विशारदोका मत है कि ५ व्यक्तियोंके एक परिवारके लिए २० एकड़ भूमि (पोहरीका यह ३२ बीघा हुआ) सुविधाजनक खेत है। इन गाँवोमे ३८३ परिवार रहते हैं। इनमेसे ६० परिवार नौकरी या अन्य पेशोमें है। उन्हें निकाल देनेपर ३२३ परिवार बचते हैं। इनके बीचमे ५५७३ बीघा भूमि है। इनमे बाँट देनेपर यह भूमि प्रति परिवार १७·३ बीघा पड़ती है। यदि हमलोग ६८५ बीघा अच्छी तथा १००० बीघा खराब भूमिको खेतीके काममे ले आवे और समुचित खाद तथा सिचाईके प्रबन्धसे उन्हे कामके

लायक बना लें तो उन गाँवोके लिए हमें ५५७४+६८५+१००० अर्थात् ७२५९ बीघा भूमि मिल जाती है। इस भूमिको यदि हम उन परिवारोमे ३२ बीघा प्रति परिवारके हिसाबसे बॉट दें तो इतनी भूमि २०७ परिवारके लिए पर्याप्त होगी। बाकी बच जाते हैं १७६ परिवार। इनकी जीविकाका प्रबन्ध होना चाहिए। उन्हें हमे उद्योगधन्धो तथा नौकरीके काममे लगाना होगा ताकि कृषि और उद्योगधन्धोको मिलाकर उनका काम पूरा हो जाय और कृषि तथा उद्योगधन्धोसे सबको बराबर आमदनी होने लगे।

इसके साथ ही खेतोका बॅटवारा उपभोगकी आवश्यकताके अनुसार होना चाहिए। अन्न, दाल, तेलहन, फल, ऊख, कपास तथा तरकारी उपजाने योग्य भूमि सबके पास होनी चाहिए। इस समय जो भूमि लोगोके पास है वह इसी हिसाबसे है, इसलिए व्यवस्था उचित कही जा सकती है। केवल बागके लिए जमीन उनके पास नही है और पशुओके हरे चारेके लिए भी खेत नहीं है। जो नयी भूमि जोतमे लायी जायगी उसमे एक साल तेलहन और दूसरे साल बाजरेकी फसल बोयी जा सकती है।

(२) बढ़िया खाद :—३६०० पशुओंकी खाद यदि सम्हालकर रखी जाय तो जोतके खेतके एक चौथाईके लिए उत्तम खादका काम कर सकती है। यदि इस क्षेत्रमे तेलहनकी खेती बढ़ा दी जाय और तेल पेरनेका काम वहीं होने लगे तो १/८ खेतोंके लिए खलीकी खाद भी तैयार हो सकती है। खेतोको उर्वरा बनानेके लिए सनई भी बोयी जानी चाहिए। आचार्यके बतलाये तरीके-

के अनुसार छोटे छोटे गड्ढो या फर्शपर ही खाद तैयार करनेका तरीका इन्हें सिखलाना चाहिए। पशुओंके मूत्रसे भीगी मिट्टीका भी खादकी तरह उपयोग इन्हे बतलाया जाना चाहिए।

(३) सिचाई:—सिचाईके काम लायक आसपासमें दो तालाब हैं, एक जखनादमे और दूसरा बरईपुरामे। इन गॉवमे ६० कुएँ भी इस काम लायक हैं। लेकिन सिचाईके काममे इनका बहुत ही कम प्रयोग किया जाता है। आलस्य, अज्ञानता, साधनोका अभाव तथा जनतामे सहयोगकी भावनाका अभाव इसके रास्तेमे बाधक है। सिचाईके जो साधन मौजूद है उनसे भी वे लाभ नही उठा सकते और नया साधन भी वे तैयार नही कर सकते। यदि दोनो तालाबोकी मरम्मत करा दी जाय तो व्यापक सिचाईके लिए उनमे काफी पानी टिक सकता है। यदि इनकी मरम्मत करा दी जाय और नीचेसे मिट्टी निकालकर बाहर कर दी जाय तो इनमे इतना पानी ठहर सकता है कि ४०० बीघोकी सिचाई हो सकती है। तालाबको और गहरा खोद देनेसे तथा उसके चारो ओर एक फुटका बॉध बॉध देनेसे पानी जमा होनेकी उसकी परिधिको बहुत बढ़ाया जा सकता है। इतना कर देनेपर उसमे आजकी अपेक्षा तिगुना जल ठहर सकता है और १२०० बीघे खेतकी सिचाई उससे हो सकती है। इस तरह चार गॉवो—जखनाद, बरई पुरा, नयागॉव तथा किसनगञ्जके अधिकांश खेत सीचे जा सकते है।

६० कुओंमेसे केवल उनका अंशतः प्रयोग सिचाई के कामके लिए होता है। उनमे लगातार प्रचार करनेसे तथा स्थानीय पंचायतकी प्रेरणासे गॉवके लोग उत्साहित किये जा सकते है

और वे सुधार कर सकते है। सबसे पहले तो उन्हे गॉवके साठो कुओंके पूर्ण प्रयोगके लिए प्रेरित किया जाना चाहिये। इन गॉवोंकी सिचाईके कामके लिए सुविधाजनक जगहोपर ६० कुएँ और खोदे जाने चाहिए। इस तरह नये और पुराने मिलाकर १५० कुएँ हो जायँगे। यदि एक कुँआसे औसत १२ बीघाकी सिंचाई हो तो १८०० बीघा खेत इन कुओंसे सींचे जायँगे। यदि १२०० बीघेकी सिचाईका प्रबन्ध उन तालाबोंसे हो जाय तो दोनोको मिलाकर प्रायः ३००० बीघा खेत सींचे जायँगे अर्थात् आज जितने खेत सीचे जाते है उनका बीस गुना उस हालतमे सींचे जायँगे। सिचाईकी इस तरह सुव्यवस्था हो जानेपर पैदावार मे शत प्रतिशतकी वृद्धि हो जायगी। बड़े पैमानेपर सिचाईकी व्यवस्था तो राज द्वारा ही सम्भव है।

(४) सामूहिक खेती:—इस क्षेत्रमे सम्प्रति सामूहिक खेतीका प्रचार करना सम्भव नही है। लेकिन कानून द्वारा इस बातपर रोक लग जानी चाहिए कि २० बीघासे कम खेत जिसके पास हो, उसका बँटवारा न हो सके। लोगोको इस बातके लिए भी प्रोत्साहित करना चाहिये कि वे अपने छोटे छोटे टुकड़ोको बदलकर अपने खेतोका चक बना ले।

जिस परती जमीनको खेतीके काममें लाना है उसमे सामूहिक खेतीका प्रबन्ध किया जा सकता है। सहयोग-समिति द्वारा गल्ला, बीज तथा गल्ला खरीदनेका काम भी यहाँ सिलसिला जाना चाहिये। इस तरह जहाँतक सम्भव हो उन्हे सहयोग द्वारा काम करनेकी शिक्षा दी जानी चाहिये।

यदि पूर्ण उत्साहसे काम किया जाय और कृषिमे सुधारकी जो योजना ऊपर बनायी गयी है उसे पूर्ण रूपसे काममें लायी जाय तो यह आशा की जा सकती है कि १० सालमें इन गाँवोकी पैदावारमे १५० प्रतिशतकी वृद्धि हो सकती है। इन दसो गाँवोकी कुल आमदनी इस समय १,९६,६६९ रु० है। १० सालके बाद यह आमदनी बढ़कर ४,९१,६७२ रु० अर्थात् ५ लाखके करीब हो जायगी और खर्च जो इस समय ९१,६०० रु० है वह बढ़कर दो लाखके लगभग हो जायगा। उपर्युक्त योजनाको पूरी तरह काममे लानेपर उस समयका खर्च तथा वर्तमान खर्चका व्योरा इस प्रकार होगा :—

मद	वर्तमान खर्च	खर्चमे बढ़ती
मालगुजारी	९,१००	१,८००
हरौत	९००	२००
मजूरी	१०,०००	१०,०००
बीज	२०,०००	१०,०००
पशुव्यय	५०,०००	२५,०००
औजार	६००	२,०००
बाजार	१,०००	१,०००
खाद	.	३०,०००
सिंचाई	..	२०,०००
	९१,६०० रु०	१,००,००० रु०

अर्थात् खेतीके काममे प्रतिवर्ष कुल व्यय १,९१,६०० होगा। कुल आमदनी ४,९१,६७२ खेतीसे होगी। उस आमदनी-मेंसे खर्च घटा देनेपर खेतीसे किसानोको ३,००,०७२) रु० की

सालाना बचत होगी। खेती करनेवाले २०७ परिवारोंपर यह आमदनी बराबर बॉट देनेसे प्रतिवार २४) रु० माहवारीकी आमदनी भी १० सालके अन्तमे होने लगेगी।

४—पशुपालन तथा गोशाला :—

पशुओंको उपयुक्त चारा, अच्छी नसलकी पैदावार तथा उनकी ठीक तरहसे देखभाल इन्हीं तीनो बातोंपर गोशालाकी उन्नति निर्भर है। यदि इन तीन बातोंपर ध्यान दिया जाय तो किसानोंको गोशालासे लाभ हो सकता है।

चारा :—गाँवमें तथा आस-पासके जङ्गलोंमे पर्याप्त चरागाह भूमि है। लेकिन केवल बरसातके चार महीनोंमे ही यहाँ पर्याप्त चारा मिल सकता है। शेष आठ महीनोंके लिए जो चारा किसान जमा करके रखते है वह पूरा नहीं है। मिलावटकी खेतीकी चलन यहाँ नहीं है इसलिए कोई भी किसान चारा नहीं बोता। पशुओंको अन्न या खली नहीं खिलायी जाती। दूध देनेवाली गायों तथा खेतोंमे काम करनेवाले बैलोंको भी नहीं। किसान पशुओंपर बहुत कम खर्च करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि आज उससे काम भी कम ही होता है। पशुपालनसे पूरा लाभ उठानेके लिए कई तरहके चाराकी व्यवस्था होनी चाहिये।

पशुओंके चारामे सूखी घास, बीज, खली, मूँगफली, तीसी, बेनउल आदि दिया जाना चाहिये। दूध देनेवाली गायोंको ऐसा चारा दिया जाना चाहिये जो दस्तावर हो और उन्हे थोड़ा बहुत खली और कराई नित्यप्रति दिया जाना चाहिये।

किसानोंको दो गाड़ी प्रति पशुके हिसावसे चारा रखना चाहिये। जहाँतक सम्भव हो सालभर तक हरा चारा दिया जाना चाहिये। चाराके लिए गड्ढा खोदकर उसमे चारा रखनेका प्रवन्ध करना चाहिये। इस उपायसे हरा चारा भी ताजा और स्वादिष्ट बना रहता है। हरा चारा न मिलनेपर यह चारा पूरा काम दे देता है।

नस्ल :—अनुभवसे यह पाया गया है कि दूधमे वृद्धिका कारण जितना अच्छी जातिके सॉडका सहयोग होता है उतना बड़ी गाये नहीं। इसलिए बड़े बछड़ोंको चुनकर सॉड़ छोड़ना चाहिये। छोटे सॉड़ गॉवमे नही रहने देना चाहिये। पशु चिकित्साके लिए जानवर अस्पतालका होना नितान्त आवश्यक है।

५०० गायोंके लिए १० सॉड़ पर्याप्त है और ३०० भैसके लिए ८ भैसा काफी होगा। आदर्श खेतीमे २ सॉड़ और २ भैसा अलग पाला जाना चाहिये।

इस वक्त दसो गॉवोंको मिलाकर ५११ गाये है। उनमे १३० दूध देती हैं। ३६१ भैसमेसे केवल ९० दूध देती है। इनके अलावा दसो गावोंको मिलाकर ८७५ वकरियॉ, २१० भेंड़े, ७८३ वैल तथा ८५६ बछड़े हैं। सुधार-संघने जो ऑकड़े जमा किये है उनसे प्रकट होता है कि गॉववालोंकी कुल आमदनी की ६५% फी सदी तो खेतीसे होती है और १५% फी सदी पशुपालन तथा गोशालासे। खेतीमे सुधार हो जानेसे १० साल के अन्तमे खेतीसे प्रतिपरिवार २४) रु० मासतक की आमदनी होने लगेगी। यह ऊपर दिखलाया जा चुका है। पशुपालनमें सुधार हो जानेसे तथा गोशालाको व्यवस्थित ढङ्गसे चलानेसे

उसी अनुपातमें इस तरहसे भी आमदनी बढ़ जायगी अर्थात् खेतीसे आमदनीका पाँचवाँ हिस्सा यानी करीब ५) रु० मासिक। लेकिन किसान और गैर-किसान दोनो गायें रखते है इसलिए इस मदकी आमदनीको १६१३ की समस्त जन-संख्यापर बाँटा जायगा। इस हिसाबसे इस मदसे प्रति परिवार प्रतिमास केवल ३) रु०की आय होगी।

५—गृह-उद्योग

ऊपर बतलाया जा चुका है कि इस इकाईके ३८३ परिवार-मेसे १७६ परिवारको गृह-उद्योग तथा नौकरी आदि पेशोमें लगाना होगा। इन १७६ परिवारके लिए निम्न योजना बनायी गयी है। यह योजना स्थानीय साधन तथा जनताकी आवश्यकताके आधारपर ही तैयार की गयी है।

क्रमसंख्या पेशा		परिवार
१—पुरोहित या पण्डिताई	...	५
२—शिक्षक	...	१०
३—ग्रामसुधार कार्यकर्ता	...	२०
४—डाक्टर, धाई, वैद्य	...	२
५—बनिया या दूकानदार	...	१०
६—हलुआई	...	२,
७—साबुन, तेल बनानेवाले	...	२
८—पान बेचनेवाले	...	१
९—रङ्गसाज छपहारा	...	२
१०—सोनार	...	४

११—लोहार	...	५
१२—कसेरा	...	२
१३—दर्जी	...	४
१४—जुलाहे, कत्तिन	...	२५
१५—धुनिया	...	२
१६—बढ़ई	...	८
१७—गज (पेशराज)	...	५
१८—सन्तरास	...	४
१९—कुम्हार	...	६
२०—तेली	...	८
२१—गड़ेरिया	...	५
२२—हज्जाम	..	४
२३—कागदी, कागज बनानेवाले	...	४
२४—धोबी	..	४
२५—मोची या चमार	...	१४
२६—धरकार	...	३
२७—भङ्गी, मेहतर	...	५
२८—डाकिया वगैरह	..	१०
	जोड़	१७६

गृह-उद्योगकी चीजोंकी खपतकी व्यवस्था करनी चाहिये। गृह-उद्योगमे जो वस्तु तैयार की जाय उसके मूल्यका नियन्त्रण होना जरूरी है, ताकि उसका मूल्य बड़े-बड़े कारखानोंकी बनी वस्तुओंसे कम हो। इसके लिए दो उपाय काममे लाये जा सकते

हैं। बहुत अधिक चुङ्गी बैठाकर मिलोंमें तैयार मालका मूल्य बढ़ाया जा सकता है अथवा राजसे सहायता या रियायत द्वारा गृह-उद्योगके मालका मूल्य कम किया जा सकता है।

इस तरहकी राजकीय सहायताकी जरूरत कपड़ा, कागज, तेल तथा चमड़ेके माल तथा पीतलके बर्तनोंके लिए हो सकती है।

कपडे की आवश्यकताकी पूर्ति :—इस इकाईकी २००० जनसंख्याके लिऐ ६०,००० गज कपड़ोंकी जरूरत होगी। यदि इतने कपड़े वहीं गाँवोंमें तैयार कर लिये जायँ तो इनकी वस्त्रकी आवश्यकता स्थानीय उत्पादनसे पूरी हो सकती है। इतना वस्त्र तैयार करनेके लिए ७५० मन कपासकी जरूरत होगी। इस समय केवल ६० बीघा खेतमें कपासकी खेती की जाती है। इससे कुल १२० मन कपास पैदा की जाती है। इस तरह अभी प्रतिवर्ष यहाँकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए ६३० मन कपासकी कमी है। इस कमीको पूरा करनेके लिए कम-से-कम ३०० बीघा नये खेत कपासकी खेतीमें लाने होंगे अर्थात् ३०० बीघा नये खेतमें कपासकी खेती करनेसे इनकी वस्त्रकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए कपास पैदा होने लगेगी।

इस इकाईके पञ्चायतका यह कर्तव्य होना चाहिये कि प्रचार द्वारा तथा लोगोंको समझा-बुझाकर घरकी प्रत्येक महिलाको इतना सूत कातनेके लिए तैयार करें जितनेसे उस परिवारके वस्त्रकी आवश्यकता पूरी हो सके। ५ व्यक्तिके एक परिवारके वस्त्रकी आवश्यकता पूरा करनेके लिए २० सेर सूतकी जरूरत होगी। इतना सूत तैयार करनेमें जो कमी हो उसकी पूर्ति उन लोगोंकी कमाईसे की जानी चाहिए जो कताईके कामको पेशेके रूपमें

ग्रहण करेंगे। प्रत्येक जुलाहा केवल बुनाईका काम करके सालभरमे २००० गजके लगभग कपड़ा बुन सकता है। इस तरह प्रायः ३० जुलाहोसे इस इकाईके सालभरके लिए कपड़े तैयार हो जायँगे।

तेलका धन्धा :—इस क्षेत्रमे मूँगफलीको मिलाकर करीब ३०० मन तेलहन पैदा होता है। जो नये खेत जोतमे लाये जायँगे, वे ऐसे है कि उनमे केवल तेलहन और बाजरा उत्पन्न हो सकता है। इसके बाद यहाँ तेलहनकी पैदावार दूनी हो जायगी और इन गाँवोको २०० मन तेल तथा ३०० मन खली मिलने लगेगी। इस समयतक यहाँका समूचा तेलहन तथा मूँगफली पोहरीसे बाहर भेज दिया जाता है। इससे तेलहन नुकसान होता है। पशुओको खली नही मिलती, खेतोको खाद प्राप्त नही होता तथा वहाँके तेलियोको काम नहीं मिलता। तेल तथा उससे होनेवाले साबुनके व्यवसायके विकासके लिए तथा खेतोकी पैदावार बढ़ानेके लिए खेतोमे खलीकी खाद देनेके निमित्त इस क्षेत्रके विकासके लिए इस उद्योगका बहुत बड़ा महत्व है।

जगलका उद्योगधन्धा तथा पैदावार :—इन गाँवोके आसपास बड़े-बड़े जङ्गल हैं। यहाँकी अनेक जङ्गली जातियाँ, जैसे भील, केवल जङ्गली फलोसे अपना गुजर करते है। ईंधन, कोयला फूँकना तथा शहद गारना आदि उनका पेशा है। लेकिन कामके विस्तारकी बहुत ज्यादा सम्भावना है। यहाँके उद्योगसे बहुतोको काम दिया जा सकता है।

ग्रामोद्योग व्यवस्थाकी योजनाके अनुसार अनेक परिवारोको खेतीके कामसे हटाकर उद्योगधन्धोमे लगाना होगा।

ग्रामोंके उत्थानके काममें यह सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रमे क्रान्तिकारी परिवर्तन होगा। इस कार्यक्रमको पूरा करनेके लिए राजकी सहायता बहुत हदतक अपेक्षित होगी। इन क्रान्तिकारी परिवर्तनोंको स्वीकार करनेके लिए ग्राम पंचायतके सदस्यों तथा गाँवके नेताओंको भगीरथ प्रयत्न करना होगा। गाँववालोको इसकी उपयोगिता समझाकर राजी करनेके लिए कुछ परिवारोंको खेतीसे हटाकर उद्योगधन्धोमे लगाना अनिवार्य नहीं है। यह तो सुझावमात्र है। स्थानीय आवश्यकता तथा अवस्थाके अनुसार इसमे परिवर्तन हो सकता है।

निवास स्थान तथा उसके लिए नयी योजना :—

गाँवोकी वर्तमान जनसंख्या तथा आकार बहुत छोटा है। इतने छोटे केन्द्रसे सुधारकी कोई भी योजना काममे लाना कठिन काम है। १५१३ व्यक्ति दस गाँवोमे फैले हुए हैं। एक यही बात पुनर्निर्माणकी योजनाको फलीभूत करनेके लिए बहुत बड़ी बाधा है। इसलिए इन ग्रामोका नये सिरेसे निर्माण होना चाहिए और इनका आकार बढ़ाना चाहिए। जिस तरह हमलोग खेतोका चक्र कायम करना चाहते हैं। उसी तरह गाँवोके आर्थिक तथा सामाजिक जीवनके विकासके लिए इन गाँवोको नये सिरेसे बड़े आकारमें बसाना आवश्यक है। भविष्यके गाँवोके निर्माणके लिए १००० की आबादीपर ४ वर्ग मील भूमि पर्याप्त होगी। क्योंकि यदि आजकी तरह गाँव इसी तरह बिखरे रहेंगे तो उन्हें कोई सुख-साधन पहुँचाना या यातायातकी सुविधा देना असम्भव हो जायगा।

यदि गाँवोके नये सिरेसे बनानेकी यह योजना स्वीकार कर ली जाय तो इन दसों गाँवोको दो गाँवमे परणित कर देना होगा और उनका रूप तथा जनसंख्या इस प्रकार हो जायगी—

१–किशनगञ्ज या कटरा	५५९	५–ग्वालीपुरा	२६४
२–कोद	८६	६–वेहटा	१६२
३–जखनाद	४२१	७–वेहटी	१५१
४–नयागाँव	७८	८–रनधीर	६५
		९–सोनीपुरा	९१
		१०–वगादिया	३५
	११४५		७६८

दोनोका जोड़—१९१३

ग्राम्य जीवनके पुनःनिर्माणका अर्थ है नये रूपसे गाँवोका पुनःनिर्माण। गाँवोको अच्छी जगहपर बनाया जाना चाहिये। पक्की सड़कोसे उनका सम्बन्ध होना चाहिये और नये ढङ्गपर उनका निर्माण होना चाहिये। गाँवके बीचमे पञ्चायतघर तथा पुस्तकालय होना चाहिये और गाँवकी सभी उपयोगी संस्थाओ—जैसे मन्दिर, स्कूल, अस्पताल, या औषधालय, गृह-उद्योगघर, सहयोग गोदाम, वगैरहको ऐसी जगह रखना चाहिये जो समस्त आबादीके लिए सुविधाजनक हो। सड़कके दोनो ओर नाली होनी चाहिये ताकि गाँवका गन्दा पानी बाहर निकल जाया करे। सुविधाजनक स्थानोपर कुँआ खोदवाना चाहिये। घरोका निर्माण नये ढङ्गपर होना चाहिये। प्रत्येक मकानमे एक बैठक, दो शयनागार, एक तोशकखाना तथा रसोईघर एक तरफ तथा दूसरी तरफ पाखाना और स्नानघर होना चाहिये। कमरोमे रोशनी तथा

हवाके लिए खिड़कियाँ होनी चाहिये। हाता इतना लम्बा-चौड़ा होना चाहिये जिसमे फल-फूलके पेड़ तथा शाक-सब्जी लगायें जा सके। निवासस्थानसे अलग हटकर गोशाला या पशुओंके रहनेका घर बनाया जाना चाहिये। गृहिणीको घर साफ-सुथरा तथा सजाकर रखने और सफाई-स्वास्थ्यकी शिक्षा दी जानी चाहिये। साफ तथा स्वच्छ वातावरण, स्वच्छ तथा निर्मल गृहका प्रभाव मस्तिष्कपर बहुत अधिक पड़ता है। उससे मानसिक विकास होता है।

इस तरहके नये ढङ्गपर मकान बनानेमें प्रायः १२००) रुपय खर्च पड़ेगा। पशुशाला बनानेमे प्रायः ३००) रुपया लगेगा। इसका कुल खर्च १५००) रु० के लगभग होगा। यह मकान यदि १०० साल नहीं तो ५० साल अवश्य टिकेगा। इस हिसाबसे मकान बनानेका खर्च प्रतिपरिवार प्रतिवर्ष ५०) रु० होगा या प्रतिव्यक्ति प्रतिमास १) रु०।

स्वास्थ्य और औषधालय:—किशनगञ्जमें एक अस्पताल और ग्वालीपुरामें एक औषधालय होना चाहिए। किशनगञ्जमे एक डाक्टर, धातृकर्समे दक्ष एक धाय, २ कम्पाउण्डर, एक नर्स तथा २ चपरासी होने चाहिए। प्रसवके लिए ५ बिस्तर भी होना चाहिए। ग्वालीपुरामे एक वैद्य तथा एक चपरासी होना चाहिए जो उन गाँवोंकी चिकित्सा कर सके। वैद्य, एक कम्पाउण्डर तथा नर्सको प्रतिदिन एक गाँवमे जाना चाहिए। उन्हे प्रत्येक गाँवकी सफाई तथा मकानोंका निरीक्षण करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्तिके स्वास्थ्यके बारेमें घर-घर जाकर पूछताछ करना चाहिए और रोगियोंको दवा देना चाहिए। डाक्टर

को प्रतिसप्ताह एक गाँवमे जाना चाहिए और कड़ी बीमारीवाले रोगियोकी देख भाल करनी चाहिए।

स्वास्थ्य और दवाकी अर्वाचीन भावना यह है कि राजकी ओरसे प्रत्येक व्यक्तिके स्वास्थ्य तथा स्वस्थनिवासका प्रबन्ध होना चाहिए। लोगोको अपनी चिकित्साके लिए डाक्टरो और वैद्योके पास दौड़ना नही पड़े, बल्कि राजका यह कर्तव्य है कि वह प्रत्येक नागरिककी चिकित्सका प्रबन्ध करे।

अस्पताल बनवानेमे कुल व्यय १०,०००) रुपयेके करीब होगा। भवन, कुर्सी, टेबल तथा औजार वगैरह इसमे शामिल हैं। इस व्ययको यदि १० सालपर फैला दिया जाय तो यह एक मुश्त ८४) रुपया प्रतिवर्ष पड़ता है। कर्मचारियोका वेतन तथा दवाखर्च प्रतिमास इस प्रकार होगा :—

पद	वेतन
१—डाक्टर	१००)
२—लेडी-डाक्टर	६०)
३—नर्स	४०)
४—वैद्य	४०)
५—दो कम्पाउण्डर	५०)
६—चार चपरासी	६०)
७—दवा	२५०)
	६००)

अस्पताल-भवनवाली ८४) रुपयेकी रकम इसमें जोड़ देनेसे ६००+८४=६८४) रु० मासिक स्वास्थ्य और औषधिके मदमे

खर्च होगा जो कि प्रतिव्यक्ति प्रतिमास ६ आनाके करीब होगा। मान लीजिए कि प्रसूतिगृह तथा अस्पतालमे रहनेवाले रोगियोंपर १५०) रु० महीना खर्च पड़ा तो इसे भी इसमें जोड़ देनेपर १०००) रु० वार्षिक व्यय हुआ जो करीब आठ आना प्रतिव्यक्ति प्रतिमास होगा।

शिक्षा:—इस योजनाकी चर्चा करते हुए यह बतलाया जा चुका है कि इस इकाईमे पुरुषोमे ४.५ और स्त्रियोमें ३ फीसदी शिक्षाका प्रचार है। शिक्षाके पुनरुत्थानका मतलब होगा प्रत्येक गॉवसे निरक्षरता दूर कर प्रत्येक नर और नारीको साक्षर बनाना। निःशुल्क प्रारम्भिक अनिवार्य शिक्षाको आधार बनाकर चलनेसे जनसंख्या के १५ फी सदीको—यह संख्या ६ से १५ सालके भीतरके लड़को और लड़कियो की है—प्रारम्भिक और उच्च शिक्षाकी सुविधा मिल जाती है। २०००की जनसंख्यामे स्कूल जाने लायक लड़को और लड़कियोकी तायदाद ३०० के लगभग होगी। इनमेसे प्राय. १०० तो आदर्श विद्यालयमे शिक्षा पा रहे है। बाकी दो सौ लड़को और लड़कियोंकी शिक्षाकी व्यवस्था हो सकती है यदि उन्हे स्कूल भेजनेका प्रबन्ध हो। आदर्श-विद्यालय सभी गॉवोके बीचमें स्थापित है। इसलिए इस क्षेत्रको शिक्षा-केन्द्रके लिए वह सबसे उपयुक्त स्थान है। यहॉसे कोई भी गॉव डेढ़ मीलसे ज्यादा दूर नही है। इसलिए प्रत्येक गॉवके लड़के और लड़कियॉ सुविधाके साथ यहॉ शिक्षा पा सकते हैं। आदर्श विद्यालयने इन गॉवोके सभी लड़को और लड़कियोको स्कूल भेजनेकी दिशामे प्रयत्न भी किया है। यहॉ सिर्फ इतना

ही करना होगा कि छात्रोंकी बढ़ती संख्याके लिए प्रायः आध दर्जन नये शिक्षक और शिक्षिकाओंकी नियुक्ति कर देनी होगी ।

बालकोंके लिए गाँवोंमे रात्रि-पाठशालाएँ स्थापित कर दी जायँ और इसी आदर्श विद्यालयके शिक्षक उन्हे साक्षर बनानेका काम करें । इसके लिए उन्हे ५) रु० से १०) रु० तक अतिरिक्त मासिक वेतन दिया जाय । इसी तरह तीसरे पहर स्त्रियोंकी शिक्षाकी व्यवस्था की जाय । महिला-शिक्षिकाएँ लिखना-पढ़ना सिखानेके अतिरिक्त सूत कातना तथा अन्य कारीगरियाँ स्त्रियों-को सिखलाये । इसके लिए उन्हे भी शिक्षकोंकी भाँति अतिरिक्त भत्ता दिया जाय ।

आदर्श विद्यालय शिक्षापर प्रति वर्ष ६०००) रु० से ८०००) तक खर्च करता है । शिक्षकोंकी संख्या बढ़ाकर तथा अतिरिक्त कामके लिए अतिरिक्त वेतन देकर वह इस क्षेत्रकी शिक्षाकी आवश्यकताको पूरा कर सकता है । इस कामको पूरा करनेके लिए अतिरिक्त व्यय ३००० से ४००० रु० तक होगा । दोनों रकम मिलाकर १०००० रु० के करीब होगी अर्थात् आठ आना प्रति व्यक्ति प्रतिमास ।

सहयोग :—ग्राम-विकासकी किसी भी योजनाकी सफलता शिक्षा और सहयोगपर निर्भर है । किश्त किश्त करके ग्रामोंके पुनः सङ्गठनका काम सफल नहीं हो सकता । इसलिए गाँवोंको सहयोगके दायरेमे लाकर उनकी आर्थिक तथा सदाचारिक विकासके लिए हर तरफसे एक साथ ही प्रयत्न होना चाहिये । उत्तम खेती तथा उत्तम व्यवसायके लिए सङ्गठित प्रयत्न होना

चाहिये और साथ ही गाँववालोंकी सहायता करनी चाहिये कि वे उन कठिनाइयोंपर विजय पा सके जो उनके रास्तेमे बाधक होकर खड़ी है। गाँवके आर्थिक जीवनपर पूरा नियन्त्रण रखनेके लिए विविध उद्देश्यपूर्ण सङ्गठित संस्थाओंकी स्थापना की जानी चाहिये। सहयोगसङ्गठन द्वारा उनके ऊपरका कर्जका बोझ पटा दिया जाना चाहिये। सुविधेकी किश्त द्वारा वह रकम उनसे वसूल की जानी चाहिये। वे जो माल तैयार करें उसे बेचनेका प्रबन्ध भी सहयोग-समितियों द्वारा होना चाहिये ताकि उन्हे धनका नफा मिल सके और उनकी जरूरत-की चीजे भी सहयोग-समितियाँ उन्हे दिया करे।

सहयोग-समितियोंको चाहिये कि वे किसानोंको किफायत-सारी तथा बेकार खर्चको कम करना सिखावे। सहयोग-समितियाँ तभी फलफूल सकती है जब किसान फले और फूलेंगे। यह तभी सम्भव है जब सहयोग-समितियाँ दूरदर्शिता और बुद्धिमानीसे काम लेकर किसानोंको काममे लगावे और उनके श्रमका उचित मावजा उन्हे मिलता रहे। कहनेका मतलब यह कि गाँवका हर तरहका आर्थिक तथा सामाजिक काम सहयोगके आधारपर होना चाहिये और इन कामोंकी देखरेख करनेके लिए उचित सहयोग-समितियोंका सङ्गठन होना चाहिये।

प्रत्येक ग्राम इकाईमे ग्राम सहयोग बैंक, सहयोग गल्ला गोदाम, माल बेचने तथा खरीदनेके लिए संस्था, ग्राम सहयोग भण्डार होना चाहिये। गाँववालोंकी आवश्यकता ज्यों-ज्यों बढती जायगी, त्यों-त्यों इस तरहकी संस्थाएँ अधिकाधिक खुलती जायँगी। सहयोग समितिके अध्यक्षका यह कर्तव्य होगा कि

वह इस बातकी देख-रेख करता रहे कि ये संस्थाएँ अपना काम योग्यता तथा निपुणताके साथ सम्पन्न करती जा रही है।

गरीब तथा असङ्गठित गाँवके निवासियोकी मुक्ति सहयोग-पर ही निर्भर है। इसलिए ग्राम-जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमे सहयोग-की भावनाको जागृत करनेका पूरा प्रयत्न करना चाहिए। गाँवकी आर्थिक तथा सामाजिक दशा सुधारनेके लिए निःशुल्क काम करनेकी आदत गाँववालोमे डाली जानी चाहिए और गृह, सड़क, कुँआ, बाँध आदिका निर्माण इसी उपायसे होना चाहिए।

७—ग्राम तथा दलपञ्चायत :—

इस योजनाकी चर्चा करते हुए यह भी कहा गया है कि छोटे छोटे गाँवोको एकमे मिलाकर बडा गाँव बसाना उचित होगा। इसलिए इस ग्राम इकाईमे एक ही दल-पञ्चायत रखना उचित होगा। अथवा ऊपर जिन दो-दल ग्रामोका उल्लेख किया गया है, उनमेसे प्रत्येक दलके लिए एक-एक पञ्चायत।

इन पञ्चायतोका सङ्गठन चुनाव द्वारा होन चाहिए। बालिग मताधिकारके आधारपर सदस्योका चुनाव हर साल होना चाहिए। दल या इकाई पञ्चायतके लिए गाँवसे कम-से-कम दो सदस्य चुने जाने चाहिए। इन मेम्बरो द्वारा चुने गये तीन सदस्य किसनगञ्ज यूनिट डेवलपमेण्ट असोसिएशनकी कार्य-समितिके सदस्य होने चाहिए।

जो गाँव इन पञ्चायतोके अधीन हो उनकी आर्थिक, सामा-जिक तथा नागरिक विकासकी पूरी जिम्मेदारी इनके ऊपर होगी। इसलिए उन्हे कामकी पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इन्हें

कानूनी अधिकार होना चाहिए ताकि वे कर लगा सकें, फण्ड उठा सकें और गाँवके नागरिक व्यवस्थापक तथा आर्थिक विषयोंका प्रबन्ध कर सकें। इन पञ्चायतोंके कामको सार्थक और उपयोगी बनानेके लिए उनके ऊपर उस क्षेत्रके शासनकी सारी जिम्मेदारी रहनी चाहिये ताकि वे उनका उचित रीतिसे सुधार कर सकें। इस तरहके उपायके मार्गमें जो बाधाएँ, कठिनाइयाँ और असफलताएँ हैं उनके बावजूद भी इस प्रकार अधिकार हस्तान्तरित करनेसे ही लोग जिम्मेदार और आत्म-निर्भर हो सकते हैं। प्रबन्धके इन सारे कामोंको पूरा करनेके लिए उस क्षेत्रकी आमदनीका ५० सैकड़ा पञ्चायतके हाथमें रहना चाहिये और जरूरत पड़नेपर अधिक रुपया एकत्र करनेका उसे अधिकार होना चाहिये।

यूनिट डेवलपमेण्ट असोसिएशनकी कार्यसमितिके पञ्चायतके सदस्योंको सङ्गठनके जिम्मेदार व्यक्तियों द्वारा रहनुमाई और शिक्षा मिलनी चाहिये कि गाँवोंमें उत्थानके लिए जो योजनाएँ चालू की जायँ उनमें सहयोग प्रदान करें और दिलचस्पी लें। उन्हें केवल तटस्थ दर्शक होकर तमाशा देखनेके लिए नहीं रहने देना चाहिये और सारा आरम्भिक काम वैतनिक कार्यकर्ता करें। कार्यकर्ताओंको सदा यही चेष्टा करनी चाहिये कि पञ्चायतके लोग ही सब काम करें और जहाँतक सम्भव हो वे ही लोग योजनाएँ भी बनावें क्योंकि अन्तमें तो सारा बोझ उन्हें ही सम्हालना होगा। इसलिए उनके लिए जो कुछ किया जा रहा है उसमें उनकी रुचि उत्पन्न करना आवश्यक है।

—योजनाको कार्यान्वित करनेके लिए जन और धनकी जरूरत :—

२००० की जन-संख्याकी इस इकाईमे योजनाकी पूरी सफलताके लिए १० सालकी अवधि मान लेनेपर खर्च का तखमीन ५ लाख या ५० हजार प्रतिवर्ष किया जा सकता है। पूरी योजनाको काममें लानेके लिए ५० व्यक्तियोंकी निरन्तर सेवाकी जरूरत पड़ेगी। उस क्षेत्रकी वर्तमान दशाका पूरा मुआइना किये बिना कोई निश्चित अन्दाजा लगाना सम्भव नहीं है। योजना कार्यान्वित होनेपर और काम चालू कर देनेपर ऊपरके ऑकड़ोंमें रद्दोबदलकी सम्भावना है।

तोभी काम चालू करनेके लिए यह मानकर ही आगे बढ़ना पड़ेगा कि योजनाको कार्यान्वित करनेके लिए प्रतिवर्ष ५० हजार रुपयेकी जरूरत होगी। खर्चकी मदे निम्न लिखित होगी :—

संख्या खर्चकी मदे	रकम
१—सिचाई और खेतीकी उन्नति	१५,०००
२—सहयोग-समिति तथा उद्योगधन्धोका विकास	५,०००
३—मकान और सड़क	१०,०००
४—सफाई, स्वास्थ्य तथा दवा	१०,०००
५—शिक्षा	१०,०००
प्रतिवर्ष	५,००००

आमदनीका जरिया :—व्यापक और सर्वतोमुखी विकासके लिए राजसे प्रोत्साहन, राजकी सहायता तथा आवश्यकतानुसार कानूनका निर्माण अपेक्षित है। क्योकि राज ही कर्ज उठा सकता

है, लोगोपर कर लगा सकता है और निःशुल्क कामके लिए बाध्य कर सकता है। योजनाकी आर्थिक सहायता तथा प्रयोगके लिए इन सब तरीकोंसे काम लेना आवश्यक होगा।

उपसंहार :—वर्तमान युग योजनाका युग है। समाज तथा विश्वका नये रूपसे निर्माण होने जा रहा है। जिस नयी सृष्टिकी कल्पना की जा रही है, वह ऐसी है जो उन लोगोंके साथ न्याय करेगी और सुखका साधन तैयार करेगी जो अबतक सदियोंसे वंचित रहे हैं। यदि भविष्यकी दुनियाका सबसे बड़ा उद्देश्य साधारण व्यक्तिको दैनिक आवश्यकताओंकी चिन्तासे मुक्त करना है तो इसका एकमात्र उपाय प्राकृतिक साधनोंका बड़े पैमानेपर विकास है, जो अबतक अछूता बना रहा है। इसलिए बहुत धन तथा जनकी जरूरत होगी ताकि प्रकृतिके वरदानोंका उपयोग मनुष्यके लाभके लिए किया जाय।

ज्ञानमण्डल पुस्तक-भण्डारके प्रकाशन

- स्वराज्यकी सरकारी मसविदा ।।।=)
- अब्राहम लिंकन ।।)
- प्राचीन भारत (अप्राप्य) ३।।।-)
- इटलीके विधायक महात्मागण २।।।-)
- यूरोपके प्रसिद्ध शिक्षण सुधारक २)
- बनारसके व्यवसायी ।।।=)
- बिहारीकी सतसई (अप्राप्य) २)
- गृह शिल्प ।।।)
- वैज्ञानिक अद्वैतवाद २)
- जापानकी राजनीतिक प्रगति ४)
- रूसका पुनर्जन्म १=)
- रोम साम्राज्य ३=)
- खादका उपयोग १।)
- सारनाथका इतिहास १।।।=)
- ब्रिटिश भारतका आर्थिक इतिहास १।।=)
- राजनीति शास्त्र ३)
- राष्ट्रीय आय-व्यय शास्त्र ४)
- भारतवर्षका इतिहास ३।।)
- कल्याणमार्गका पथिक १।।।=)
- अशोकके धर्म लेख ३।।)
- पृथ्वी प्रदक्षिणा—अप्राप्य १५)
- अन्ताराष्ट्रिय विधान ४)
- पश्चिमी यूरोप I ३।।)
- विज्ञानके चमत्कार १।)
- पुनर्जीवन—अप्राप्य २।।)

- अपराध और दण्ड १।।)
- भारतकी आ० उन्नतिकी योजना I, II १=)
- चिद्विलास ३।।)
- ब्राह्मण सावधान ।।)
- सामयिकी ३।।)
- विक्रमांकदेव चरितम् (अप्राप्य) २।)
- संसारके व्यवसायका इतिहास ।।।)
- तैरनेकी कला ।।-)
- पत्र और पत्रकार ५)
- हमारी खूराक ।।।)
- समाजवाद, लक्ष्य तथा साधन ।।।)
- जेलके वे दिन २)
- आज़ाद हिन्द फौज तथा उसके तीन अफसरोंका मुकदमा २)
- हिन्दी शब्द संग्रह अजि० ७), सजि० ७।।)
- खण्डित भारत ८)
- चीन और भारत १।)
- देशभक्त और देशद्रोही २।)

नोट—ज्ञानमण्डल डायरी, सौर रोज़नामचा, सौर पञ्चाङ्ग तथा भविष्यफलका प्रकाशन प्रतिवर्ष नियमित रूपसे होता है।

- हिन्दुत्व १२।।)
- बुद्धचर्या ६।)